# इस्लाम के मूल सिद्धान्त

## आयतुल्लाह मिस्बाह यज़्दी

अनुवादक : क़मर अब्बास आले हसन

अहलुलबैत विश्व परिषद

क़ुम ईरान

## बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

*''आरंभ करता हूँ उस ईश्वर के नाम से जो अत्यन्त कृपालु व दयावान है।''*

*पैग़म्बरे इस्लाम का कथन है:*

**मैं तुम लोगों के मध्य दो भारी वस्तुएं छोड़ कर जा रहा हूँ अल्लाह की किताब और अपने घर वालों को , जब तक तुम लोग इन दोनों को पकड़े रहोगे कदापि पथभ्रष्ट नहीं होगे और वह दोनों कभी भी एक दूसरे से अलग नहीं होगें यहाँ तक कि मेरे पास हौज़ तक साथ पहुँचेंगे।**

;सहीह मुस्लिमः जिल्द 7 : 122, सुननुद्दारमी : जिल्द 2 : 432, मुसनद अहमद : जिल्द 3 : 14 ,17, 26, जिल्द 4: 182, 189। मुस्तदरकुल हाकिमः जिल्द 3 : 109,148, 533 आदि स्रोत द्व

# इस्लाम के मूल सिद्धान्त

आयतुल्लाह मिस्बाह यज़्दी

*अनुवादक : क़मर अब्बास आले हसन*

*अहलुलबैत विश्व परिषद*

*कुम ईरान*

سرشناسه : عباس، قمر، ۱۳۵۰ - مترجم
عنوان قراردادی : آموزش عقاید، هندی
عنوان و پدیدآور : آموزش عقاید / محمد تقی مصباح یزدی؛ مترجم قمر عباس آل حسن.
مشخصات نشر : قم: مجمع جهانی اهل البیت(ع)، ۱۳۸۶.
مشخصات ظاهری : ۶۳۶ ص.
شابک : 978-964-529-244-5
وضعیت فهرست نویسی : فیپا
آوانویسی عنون : اسلام ک مول سی دانت
موضوع : کلام شیعه امامیه.
موضوع : شیعه -- عقاید.
موضوع : شیعه -- اصول دین.
شناسه افزوده : مجمع جهانی اهل بیت(ع).
رده بندی کنگره : BP۲۱۱/۵/م۵آ۸۰۴۹۵۸ ۱۳۸۵
رده بندی دیویی : ۲۹۷/۴۱۷۲
شماره کتابخانه‌ملی : ۱۰۲۹۱۷۳

**पुस्तक का नाम** : इस्लाम के मूल सिद्धान्त

**लेखन**: आयतुल्लाह मिस्बाह यज़्दी

**अनुवाद**: क़मर अब्बास आले हसन

**संशोधन**: ज़हरा ज़ैदी

**प्रस्तुति**: विश्व अहलुलबैत परिषद, संस्कृति व अनुवाद विभाग

**प्रकाशन** : विश्व अहलुलबैत परिषद

**संस्करण**: प्रथम

**प्रेस** : लैला

**प्रकाशन वर्ष** : 2007

**संख्या** : 3000

**ISBN:978-964-529-244-5**
**info@ahl-ul-bayt.org**
**www.ahl-ul-bayt.org**

# सूचि

# पहली बात

जब सूर्य क्षितिज पर प्रकट होता है, संसार की हर वस्तु अपनी क्षमता व योग्यता के अनुसार उस से लाभ उठाती है, यहाँ तक कि नन्हे–नन्हे पौधे उस की किरणों से हरियाली प्राप्त करते हैं और कलियों में रंग भरते हैं, अधंकार लुप्त और रास्ते प्रकाशमय हो जाते हैं । जैसा कि सभ्य संसार से दूर , अरब के सुलगते मरुस्थल में जब ईश्वरीय कृपा से इस्लाम का सूर्योदय हुआ तो विश्व की हर वस्तु ने अपनी योग्यता व क्षमता के अनुसार उस से लाभ उठाया।

इस्लाम के प्रचारक व संस्थापक हज़रत मोहम्मद मुस्तफा सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम हिरा नामक गुफा से सत्य की मशाल लेकर आए और ज्ञान व चेतना की प्यासी इस दुनिया को सत्य व सत्यता के समुद्र से तृप्त कर दिया, आप के समस्त ईश्वरीय संदेश, प्रत्येक कार्य और विचार, मानव प्रकृति से समन्वित और मानव विकास के लिए आवश्यक थे इसी लिए 23 वर्ष की अल्प अवधि में ही इस्लाम की प्रकाशमयी किरणें हर ओर फैल गयीं और तत्कालीन विश्व पर शासन करने वाली प्राचीन रोमी व ईरानी सभ्यताएं इस्लामी मान्यताओं के सामने क्षीण दिखाई देने लगीं। सभ्यताओं के वह प्रतीक जो देखने में तो अच्छे लगते थे किंतु व्यवहारिकता से दूर होने और मानव दिशा निर्देशन की क्षमता न रखने के कारण बुद्धि व तर्क से सामना करने का साहस उन में नहीं था यही कारण है कि एक चौथाई से भी कम समय में इस्लाम ने समस्त धर्मों व सभ्यताओं की चमक दमक समाप्त कर दी ।

यद्यपि पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की यह धरोहर, जिस की सुरक्षा उन के निकटम् परिजनों ने अपने प्राणों की आहूति देकर की है , स्वंय अपने अनुयाईयों की उपेक्षा के कारण एक लंबे समय तक , समस्याओं से जूझती रही है जिस से उस की उपयोगिता पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ा किंतु ऐसी स्थिति में भी सरकारों व शासनों के आक्रोश व दंडों की

परवाह किये बिना अहलेबैत अलैहिमुस्सलाम की शिक्षाओं पर आधारित धर्म ने गत् चौदह सौ वर्षो के दौरान ऐसे बहुत से दिग्गज बुद्धिजीवी व विद्वान, इस्लामी जगत को प्रदान किये जिन्हों ने इस्लाम को बाहर से किये जाने वाले सांस्कृतिक धावों से बचाया और साथ ही क़ुरआन की जीवनदायक शिक्षाओं के विरूद्ध चलने वाले कुछ पांखडियों की वास्तविकता को भी सब के सामने प्रकट किया। ऐसे बुद्धिजीवी हर काल में रहे हैं विशेषकर वर्तमान काल में ईरान में इस्लामी क्रांति की सफलता के पश्चात विश्व की नज़रें एक बार फिर इस्लाम, क़ुरआन और अहलेबैत की शिक्षाओं की ओर उठी हुई हैं। इस्लाम के शत्रु , इस वैचारिक व आध्यात्मिक ध्रुव को तोड़ने और इस्लाम में रुचि रखने वाले इस सांस्कृतिक व धार्मिक लहर से स्वंय को जोड़ने के लिए व्याकुल हैं। यह काल वैचारिक टकराव का काल है जो धर्म प्रचार व प्रकाशन के सही ढंग को प्रयोग करते हुए अपनी बात लोगों तक तर्कसंगत रूप में और अधिक प्रभावशाली शैली में पहुँचाएगा वही इस मैदान में आगे निकलेगा अहलुलबैत विश्व परिषद ने इस्लाम की प्रकाशमय शिक्षाओं को सार्वाजनिक करने और लोगों को पैग़म्बरे इस्लाम के परिजन अर्थात अहले बैत की शिक्षाओं से परिचित कराने के लिए इस मार्ग में क़दम बढ़ाए हैं ताकि अहले बैत की संस्कृति सही रूप में लोगों तक पहुँचाई जा सके जिस से साम्राज्यवादी प्रगति की चमक दमक से थकी हुई मानवता इस्लाम की ठंडी छाँव में शांति प्राप्त कर सके और इस प्रकार से इस विश्व को अंतिम मागर्दशक इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम के प्रकटीकरण के लिए तैयार किया जा सके। हम इस संदर्भ में अध्ययन के लिए समस्त बुद्धिजीवियों के आभारी हैं और स्वंय को उन का साधारण सेवक समझते हैं । यह किताब भी हमारे इन्हीं प्रयासों की श्रखंला की एक कड़ी है। हम इस इस किताब के अनुवादक और उन सभी लोगों के आभारी हैं जिन्हों ने किसी न किसी प्रकार इस किताब के प्रकाशन में हमें अपना सहयोग दिया है।

**सांस्कृतिक महानिदेशक**

**विश्व अहुलबैत परिषद**

# भूमिका

मूल आस्थाएं और विश्वास हर मत व आइडियालॉजी का आधार होते हैं और जाने अन्जाने में मानव व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इस दृष्टि से इस्लाम की प्रशिक्षण व आस्था संबधी व्यवस्था के आधारों को मज़बूत करने के लिए कि जो वास्तव में इस विशालकाय वृक्ष की जड़ें हैं इन मूल्यों और मान्यताओं को दिलों में बैठाना होगा ताकि यह वृक्ष हमेशा फलता–फूलता रहे और विश्व में सफलता व मोक्ष की भूमिका प्रशस्त रहे।

इसी लिए इस्लामी बुद्विजीवियों ने इस्लाम के उदय से ही इस्लामी आस्थाओं और सिद्वान्तों का विभिन्न रूपों और शैलियों में वर्णन किया है । नये युग में भी नयी नयी शंकाओं के दृष्टिगत इस्लाम के मूल सिद्धान्तों और आस्थाओं के बारे में बहुत सी किताबें लिखी गयी हैं किंतु इस प्रकार की सभी पुस्तकों का स्तर भिन्न रहा है। कुछ पुस्तकों में साधारण सी बातों की बहुत अधिक व्याख्या की गयी है और विस्तार पूर्वक उस पर चर्चा की गयी है जब कि कुछ अन्य पुस्तकों में विभिन्न विषयों का वर्णन अत्यन्त गूढ़ और कठिन शब्दों में किया गया है जिस से साधारण लोगों के लिए उन का समझना सरल नहीं था ।

यही कारण है मैं ने इस विषय पर यह किताब लिखी है जिस में कुछ एसी विशेषताएं हैं जो इस किताब को अन्य पुस्तकों से भिन्न करती हैं :

1. यह प्रयास किया गया है कि किताब के विषयों को तार्किक कम के साथ संकलित किया जाए और यथासंभव किसी विषय के वर्णन के समय आगे आने वाली बातों का हवाला न दिया जाए।

2. हमारा प्रयास है कि किताब में सरल भाषा का प्रयोग किया जाए और जटिल परिभाषा व भाषा से जहॉ तक हो सके बचा जाए तथा साहित्य के सिद्धान्तों पर बहुत अधिक ध्यान देकर विषय के अर्थ को प्रभावित न किया जाए।

3. हमने प्रयास किया है कि अपनी बात सिद्ध करने के लिए ठोस प्रमाण पेश करें और आवश्यकता से अधिक और कमज़ोर प्रमाणों से बचें ।

4. हमारा प्रयास है कि अतिरिक्त स्पष्टीकरण आदि से बचा जाए ताकि छात्रों को थकन का आभास न हो।

5. चूँकि यह किताब पाठ्यक्रम का भाग है हमारा प्रयास है कि किसी भी बात को सिद्ध करने के लिए ऐसे तथ्यों और प्रमाणों को पेश न किया जाए जिन्हें समझने के लिए दर्शन व तर्क शास्त्र जैसे विषयों का ज्ञान आवश्यक हो और आवश्यकता पड़ने पर केवल ज़रूरी बातों का ही उल्लेख किया है और बाकी चीजों के लिए दूसरी पुस्तकों का हवाला दिया है ताकि रुचि रखने वाले ज्ञान की प्यास बुझा सकें।

6. किताब को अलग अलग पाठों के रूप में लिखा गया है ।

7. कुछ पाठों के महत्वपूर्ण विषयों को आगामी पाठों में दोहराया गया है ताकि छात्र को बात अच्छी तरह समझ में आ जाए।

8 . हर पाठ के अंत में कुछ प्रश्न भी किए गये हैं जो छात्रों की सहायता करते हैं।

9. निश्चित रूप से इस किताब में भी बहुत सी कमज़ोरियाँ हो सकती हैं हमें आशा है कि पाठकों की आलोचनाओं और टिप्पणियों द्वारा हम इसे अधिक बेहतर रूप में प्रस्तुत करने में सफल होगें।

**कुम – मुहम्मद तक़ी मिस्बाह यज़्दी**

# पहला भाग

# ईश्वर की पहचान

पहला पाठ

# धर्म क्या है

- धर्म का अर्थ
- उसूल और फुरूए दीन क्या है
- इस में मत और आइडियालॉजी ...
- ईश्वरीय व भौतिक दृष्टिकोण ...
- ईश्वरीय धर्म और उन के सिद्धान्त शामिल हैं।

## धर्म का अर्थ

इस किताब का उद्‌देश्य इस्लामी सिद्धान्तों और आस्थाओं का वर्णन है जिसे उसूले दीन अर्थात धर्म की जड़ें कहा जाता है। इस आधार पर किसी भी अन्य विषय से पूर्व दीन अर्थात धर्म के बारे में थोड़ी सी चर्चा आवश्यक होगी।

दीन अरबी शब्द है जिस का अर्थ आज्ञापालन पारितोषिक आदि बताया गया है किंतु दीन अथवा धर्म की परिभाषा होती है सृष्टि के रचयता और उस के आदेशों पर विश्वास व उस के प्रति आस्था रखना इस आधार पर जो लोग किसी रचयता के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते और इस सृष्टि के अस्तित्व को संयोग का परिणाम मानते हैं उन्हें बे दीन अर्थात नास्तिक कहा जाता है किंतु जो लोग इस दुन्या के पैदा करने वाले को मानते हैं तो फिर भले ही उन के विश्वास उन की आस्थाएं और उन के सिद्धान्तों में बहुत सी अनुचित बातें शामिल हों किंतु उन्हें धार्मिक या आस्तिक कहा जाता है। इस प्रकार से इस दुनिया में मौजूद धर्मों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है सत्य व असत्य इस आधार पर सच्चा धर्म वही होता है जिस के सिद्धान्त तार्किक और वास्तविकताओं से मेल खाते हों और जिन कामों को करने का आदेश दिया गया हो उस के लिए उचित व तार्किक प्रमाण मौजूद हों।

## उसूल व फुरूए दीन

हम ने धर्म की जो परिभाषा बताई है उस के बाद अब यह स्पष्ट हो जाता है धर्म कम से कम दो भागों पर आधारित होता है ।

1. विश्वास व आस्था जो जड़ और आधारशिला का स्थान रखती है।

2. व्यवहारिक सिद्धान्त अर्थात वह आदेश जिन का पालन उसी विशेष आस्था व विश्वास के अंर्तगत आवश्यक होता है।

## मत या आइडियालॉजी

आयडियालॉजी का एक अर्थ है मनुष्य व विश्व के बारे में कुछ विशेष प्रकार के विश्वास व मत और सामूहिक रूप से पूरी सृष्टि के बारे में समन्वित विचारों को आयडियालॉजी कहा जाता है। आयडियालॉजी का एक अन्य अर्थ, मानवीय व्यवहार के बारे में समन्वित विचार धाराएं भी है।

इन दो अर्थों के अनुसार हर धर्म के मताधारों व आस्थाओं तथा उस धर्म की विचार धारा और उस की शिक्षाओं व सिद्धान्तों को आयडियालॉजी कहा जाता है किंतु इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि आयडियालॉजी में आंशिक सिद्धान्त शामिल नहीं होती इसी प्रकार से विचार धारा में आंशिक आस्थाएं भी शामिल नहीं होतीं । इस संदर्भ में आगे के पाठों में अधिक ब्योरा दिया गया है ।

## ईश्वरीय व भौतिक विचार धाराएं

मनुष्यों में विभिन्न प्रकार की विचारधाराएं पाई जाती हैं किंतु भौतिक व अध्यात्मिक दृष्टि से उसे दो भागों में बॉटा जा सकता है अर्थात कुछ विचारा धाराएं ऐसी होती हैं जिन में इस भौतिक संसार से परे भी किसी भी लोक व

संसार के अस्तित्व को स्वीकारा गया है जब कि कुछ विचारधाराएं ऐसी होती हैं जिन में केवल इसी संसार को सब कुछ समझा गया है। इस प्रकार से विश्व की समस्त विचार धाराएं दो प्रकार की होती हैं ईश्वरीय या अध्यात्मिक विचार धारा और संसारिक या भौतिक विचार धारा।

भौतिक विचार धारा रखने वालों को भौतिकतावादी नास्तिक व अधर्म जैसे नामों से याद किया जाता है। यद्यपि वर्तमान युग में उन्हें भौतिकवादी या मेटीरियालिस्ट कहा जाता है ।

भौतिकतावाद में भी विभिन्न प्रकार के मत पाए जाते हैं किंतु हमारे युग में सब से अधिक प्रसिद्ध मत मेटीरियालिज़्म डियालक्टिक है जो मार्कसिस्ट दर्शन का आधार है।

इस के साथ हमारी इतनी बातों से यह भी स्पष्ट हो गया कि विचार धारा का अर्थ धार्मिक आस्थाओं से अधिक विस्तृत है क्योंकि विचार धारा नास्तिक व भौतिकतावाद को भी कहते हैं इसी प्रकार आयडियालॉजी भी केवल धार्मिक सिद्धान्तों से ही विशेष नहीं है।

## ईश्वरीय धर्म और उन के सिद्धान्त

विभिन्न धर्मों के अस्तित्व में आने के बारे में बुद्धिजीवियों और धर्म के इतिहास के जानकारों तथा समाज शास्त्रियों के मध्य मतभेद पाए जाते हैं । किंतु इस्लामी दृष्टिकोण से जो बातें समझ में आती हैं वह यह हैं कि धर्म के अस्तित्व में आने का इतिहास, मनुष्य के अस्तित्व के साथ ही है और पृथ्वी पर आने वाले सर्वप्रथम मनुष्य अर्थात हज़रत आदम ईश्वरीय दूत और एकीश्वरवाद की ओर बुलाने वाले थे और अनेकिश्वरवादी धर्म वास्तव में सच्चे ईश्वरीय धर्म का बिगड़ा हुआ रूप है अर्थात कुछ लोगों ने स्वार्थ और राजा महाराजाओं को प्रसन्न करने के लिए ईश्वरीय धर्मों में कुछ बातें मिला दीं या कुछ बातों को कम कर दिया।

एकीश्वरवादी धर्म जो वास्तव में सच्चे धर्म हैं उन सब में तीन संयुक्त सिद्धान्त पाए जाते हैं :

1. एक ईश्वर में विश्वास

2. परलोक में हर मनुष्य के एक अनंत जीवन में विश्वास।

3. और इस संसार में किए गये कर्मों के फल तथा मानवजाति के मार्गदर्शन के लिए ईश्वरीय दूतों के आगमन पर विश्वास।

यह तीन सिद्धान्त वास्तव में हर आदमी के इस प्रकार के प्रश्नों के आंरभिक उत्तर हैं कि सृष्टि का आंरभ कहा से हुआ जीवन का अंत क्या होगा और किस मार्ग पर चल कर सही रूप से जीवन व्यतीत करना सीखा जा सकता है।तो इस प्रकार से ईश्वरीय संदेश अर्थात वहि द्वारा मनुष्य को जीवन यापन का जो कार्यक्रम प्राप्त होता है उसे ही धार्मिक आयडियालॉजी कहते हैं जिस का आधार ईश्वरीय विचार धारा होती है।

मुख्य सिद्धान्त व आस्था के लिए बहुत सी चीजों की आवश्यकता होती है जो एक साथ मिल कर किसी मत अथवा विचार धारा को अस्तित्व प्रदान करती हैं और इन्हीं बातों में मतभेद के कारण ही विभिन्न प्रकार के धर्मों और मतों का जन्म होता है। उदाहरण स्वरूप कुछ ईश्वरीय दूतों के बारे में मतभेद और ईश्वरीय किताब के निर्धारण में अलग अलग मत ही यहूदी ईसाई और इस्लाम धर्म के मध्य मतभेद का मूल कारण हैं कि जिस के आधार पर शिक्षाओं की दृष्टि से इन तीनों धर्मों में बहुत अंतर हो गया है और कभी कभी तो यह अंतर इतना अधिक हो जाता है कि इस से मूल आस्था व विश्वास को भी नुकसान पहुॅचता है। उदाहरण स्वरूप ईसाई त्रीश्वर को मानते हैं जो उन की एकीश्वरवादी विचार धारा से मेल नहीं खाता यद्यपि ईसाई धर्म में विभिन्न प्रकार से इस विश्वास का औचित्य दर्शाने का प्रयास किया गया है इसी प्रकार इस्लाम में पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के उत्तराधिकारी के निर्धारण की शैली के बारे में मतभेद, अर्थात यह कि पैगम्बरे

इस्लााम के उत्तराधिकारी का निर्धारण ईश्वर करता है या जनता शीआ व सुन्नी मुसलमानों के मध्य मतभेद का मुख्य व मूल कारण है ।

तो फिर निष्कर्ष यह निकलता है कि समस्त ईश्वरीय धर्मो में एकीश्वरवाद, ईश्वरीय दूत और प्रलय मूल सिद्धान्त व मान्यता के रूप में स्वीकार किया जाता है किंतु इन सिद्धान्तों की व्याख्या के परिणाम में जो अन्य विश्वास व आस्थाएं सामने आई हैं उन्हें मुख्य शिक्षा व सिद्धान्त का भाग मात्र कहा जा सकता है। उदाहरण स्वरूप ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास को आधार और एकीश्वर वाद को उस का एक भाग माना जा सकता है जैसा कि बहुत से शीआ बुद्धिजीवियों ने न्याय को उसूले दीन अर्थात धर्म के मुख्य सिद्धान्तों में गिना है और इमामत अर्थात पैगम्बरे इस्लाम के उत्तराधिकार को भी इस में शामिल किया है।

## प्रश्न :

1. धर्म की परिभाषा कीजिए।
2. विचार धारा व आयाडियालॉजी क्या है ?
3. दो प्रकार की आयडियालॉजी को स्पष्ट करें ।
4. उसूल दीन अर्थात धर्म की आधार शिला क्या हैं ?
5. वह कौन से सिद्धान्त व विश्वास हैं जो सभी ईश्वरीय धर्मो में समान रूप से पाए जाते हैं ?

पाठ 2

# धर्म की खोज

- **अध्ययन की भावना**

*अर्थात*

- **धर्म की खोज का महत्व**
- **एक शंका का निवारण**

## अध्ययन के कारक

मनुष्य में स्वाभाविक रूप से वास्तविकता की खोज और सत्य तक पहुॅचने की इच्छा होती है जो बालावस्था से ही उस में प्रकट हो जाती है। यही भावना जिसे कभी जिज्ञासा भी कहा जाता है मनुष्य को उन विषयों के बारे में भी विचार व अध्ययन करने पर प्रोत्साहित कर सकती है जो धर्म के रूप और नाम से उस के सामने पेश किए जाते हैं उदाहरण स्वरूप इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिए मनुष्य विचार व अध्ययन करने पर प्रोत्साहित हो सकता है जैसेः

क्या किसी ऐसी शक्ति का अस्तित्व है जिस का आभास नहीं किया जा सकता और भौतिक विशेषताओं से परे है ?

क्या लोक परलोक के मध्य कोई संबधं है ?

और यदि कोई संबधं है तो क्या कोई ऐसी शक्ति है जिस का आभास नहीं किया जा सकता किंतु उसी ने इस भौतिक संसार की रचना की है ?

क्या मनुष्य का अस्तित्व इसी भौतिक शरीर तक और उस का जीवन इसी संसारिक जीवन तक सीमित है या फिर यह कि कोई अन्य जीवन भी है ?

अगर कोई अन्य जीवन है तो क्या उस जीवन और संसारिक जीवन के मध्य कोई संबधं है ?

यदि कोई संबधं है तो फिर किस प्रकार के संसारिक काम उस परलोक में लाभदायक हो सकते हैं ?

जीवन यापन के सही कार्यक्रम की पहचान के लिए कौन सा मार्ग अपनाया जाए कि जिस से मनुष्य लोक परलोक दोनों में सफलता तक पहुँच सके ?

वह कार्यक्रम क्या है जो किसी मनुष्य को दोनों लोकों में सफल बना सकता है।

इस प्रकार से मनुष्य में वास्तविकता को जानने की जो स्वाभाविक जिज्ञासा होती है वह उसे हर प्रकार की वास्तविकता जान लेने और उस के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करती है और धर्म के बारे में जानकारी भी उस से अलग नहीं है।

मनुष्य में स्वाभाविक रूप से सत्य व वास्तविकता की खोज की जो भावना होती है उस के अतिरिक्त भी बहुत से कारक होते हैं जो मनुष्य को अध्ययन व वास्तविकता की खोज के लिए प्रेरित करते हैं क्योंकि बहुत सी चीज़ें ऐसी होती हैं जो किसी विशेष जानकारी पर ही निर्भर होती हैं उदारहण स्वरूप विभिन्न प्रकार की भौतिक च संसारिक सुविधाओं के लिए वैज्ञानिक शोध आवश्यक होते हैं आज विभिन्न प्रकार की सुविधाएं,जो इस युग में हमें प्राप्त हैं वह इसी प्रकार के वैज्ञानिक प्रयास का परिणाम हैं दूसरे शब्दों में मनुष्य जिस वस्तु को आवश्यक समझता है उस तक पहुँचने के लिए प्रयास करता है और इस मार्ग में आवश्यक साधन भी जुटाता है तो फिर अगर यह विश्वास हो जाए कि धर्म भी मनुष्य के हितों की रक्षा कर सकता है और उसे बहुत से खतरों से बचा सकता है तो मनुष्य में अपने हितों की रक्षा और खतरों से बचने की जो भावना होती है वह उसे धर्म के बारे में अध्ययन व शोध पर प्रेरित करेगी इस प्रकार यह भावना धर्म के बारे में अध्ययन का एक कारक मानी जाती है।

किंतु जानकारियों के इतने बड़े समूह में लोगों के पास मौजूद कम समय के कारण ऐसा हो सकता है कि बहुत से लोग अध्ययन के लिए ऐसे विषयों का चयन करें जिन का परिणाम सरलता और शीघ्रता से सामने आ जाए

और धर्म के बारे में यह सोच कर कि इस संदर्भ में अध्ययन कठिन होगा और उस के परिणाम महत्वहीन होंगे लोग धर्म के बारे में अध्ययन न करें । इस दृष्टि से यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि धर्म का बहुत अधिक महत्व है और यह कि धर्म के बारे में अध्ययन से अधिक महत्व किसी और अध्ययन का नहीं है ।

यहॉ पर हम यह भी स्पष्ट करना चाहेगें कि मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि ईश्वर में चिश्वास एक स्वाभाविक इच्छा है जो किसी अन्य इच्छा से संबंधित नहीं है इस रुझान को धर्म बोध कहा जाता है और इसे जिज्ञासा , भलाई और सुन्दरता जैसे बोधों के साथ मानव आत्मा का चौथा पहलू समझा जाता है।

यह लोग इतिहासिक प्रमाणों के आधार पर कहते हैं कि ईश्वर की उपासना सदैव ही किसी न किसी रूप में मानव समाज में मौजूद रही है और यही तथ्य धर्म के स्वाभाविक व सदैव से होने का ठोस प्रमाण है।

हॉ हम जो यह कहते हैं कि धर्म की खोज एक स्वाभाविक बात है तो इस का अर्थ यह नहीं है कि यह भावना सदैव सब लोगों में समान रूप से पाई जाती है बल्कि संभव है कि बहुत से लोगों में यह भावना विशेष परिस्थितियों और गलत प्रशिक्षण के कारण निष्क्रिय रूप में हो या यह कि अपने सही मार्ग से हट जाए जैसा कि मनुष्य की अन्य स्वाभाविक इच्छाओं के लिए भी ऐसा कहा जा सकता है ।

इस विचार धारा के अंतर्गत धर्म की खोज की भावना पूर्ण रूप से स्वाभाविक है और उसे सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

हम अपनी इस बात को कुरआन की आयतों और कथनों से सिद्ध कर सकते हैं किंतु चूंकि इस स्वाभाविक रुझान को स्पष्ट रूप से महसूस नहीं किया जा सकता इस लिए संभव है कि बहस के दौरान कोई अपने भीतर इस प्रकार की भावना होने का ही इन्कार कर दे इसी लिए हम इस मार्ग को न अपनाते हुए

मात्र तर्कों और बौद्धिक तथ्यों द्वारा ही धर्म की खोज के महत्व को दर्शाने का प्रयास करेगें ।

## धर्म की खोज का महत्व

यह तो स्पष्ट हो ही चुका है कि वास्तविकता की खोज और अपने हितों की रक्षा जैसी स्वाभाविक भावनाएं अध्ययन व चिंतन तथा ज्ञान प्राप्ति के लिए शक्तिशाली कारक होती हैं । इस आधार पर जब किसी को यह पता चले कि पूरे इतिहास में ऐसे लोग रहे हैं जो दावा करते थे कि हम इस सृष्टि के रचयता की ओर से मानव जाति के मार्गदर्शन के लिए चुने गये हैं और हमारा ईश्वरीय कर्तव्य है कि हम लोगों के लोक परलोक को संवारे इस के साथ ही यह भी पता चले के इन लोगों ने अपने उद्देश्य के लिए बहुत सी कठिनाइयां उठाई है , कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपनी बात पर अड़े रहे यहाँ तक कि इस प्रकार के बहुत से लोगों को अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ा तो फिर स्वाभाविक रूप से मनुष्य के भीतर इस प्रकार के लोगों के बारे में जानकारी प्राप्त करने की भावना पैदा होगी वह अवश्य यह देखना चाहेगा कि क्या इन ईश्वरीय दूतों के दावे सही थे और उन के पास तार्किक प्रमाण मौजूद थे ? विशेष कर जब उसे यह पता चलेगा कि इन ईश्वरीय दूतों ने मनुष्य के कल्याण व लोक व परलोक में सफलता दिलाने का वचन दिया है और कहा है कि उन का मार्ग न अपनाने की स्थिति में मनुष्य को ऐसा दंड मिलेगा जो कभी भी समाप्त नहीं होगा। अर्थात उन का यह कहना है कि यदि उन की बात मान ली जाए तो संभावित रूप से मनुष्य को अत्याधिक लाभ प्राप्त होगा और उन के विरोध की स्थिति में संभावित रूप से बहुत बड़े बड़े नुकसान उठाना पड़ सकते हैं तो फिर इस बात को जानने के बाद कोई भी जानकार और चेतित मनुष्य अपने आप को इन ईश्वरीय दूतों और उन के लाए हुए संदेशों के बारे में अध्ययन व जानकारी इकटठा करने से कैसे रोक सकता है ?

जी हाँ यह भी हो सकता है कि कुछ लोग आलस्य के कारण अध्ययन व जानकारी प्राप्त करने का कष्ट न उठाना चाहें या फिर यह सोच कर कि धर्म ग्रहण करने के बाद उन पर कुछ प्रतिबंध लग जाएगें और उन से बहुत से कामों को न करने की मॉग की जाएगी, इस संदर्भ में अध्ययन न करें।

किंतु ऐसे लोगों को यह सोचना चाहिए कि कहीं उन का यह आलस्य उन के लिए सदैव रहने वाले दंड और प्रकोप का कारण न बन जाए।

ऐसे लोगों की दशा उस अबोध रोगी बच्चे से भी अधिक बुरी है जो कड़वी दवा के डर से डाक्टर के पास जाने से बचता है और अपनी निश्चित मृत्यु की भूमिका प्रशस्त करता है क्योंकि इस प्रकार के बच्चे की बुद्धि पूर्ण रूप से विकसित नहीं होती जिस के कारण वह अपने हितों और अपने लिए खतरों को भली भॉति समझ नहीं सकता और डाक्टर के सुझाव का पालन न करने से तो मनुष्य इस संसार में जीवन यापन के कुछ दिनों से ही वंचित होगा किंतु एक जानकार मनुष्य जो परलोक में सदैव रहने वाले दंड के बारे में सोचने व चिंतन करने की क्षमता रखता है उस को संसारिक सुखों और परलोक के दंडो और सुखों की एक दूसरे से तुलना करनी चाहिए।

यही कारण है कि कुरआन मजीद ने लापरवाह लोगों को पशुओं से भी बुरा बताया है जैसा कि कुरआने मजीद के सूरए आराफ की आयत नंबर 179 में आया है:

वह लोग पशुओं की भॉति बल्कि उन से भी अधिक पथभ्रष्ट हैं।

इसी प्रकार सूरए अनफाल की 22 वीं आयत में आया है :

निश्चित रूप से ईश्वर के निकट सब से बुरे प्राणी वह गूंगे और बहरे लोग हैं जो वास्तविकताओं को समझते नहीं।

## एक शंका का समाधान

संभव है कुछ लोग यह बहाना बनाएं कि किसी समस्या का समाधान खोजना उस समय सही होता है जब मनुष्य को उस के समाधान तक पहुॅचने

की आशा होती हो किंतु हमें धर्म के बारे में चिंतन व अध्ययन से किसी परिणाम की आशा ही नहीं है । इस लिए हम समझते हैं कि ईश्वर ने हमें जो योग्यताऐं, क्षमताऐं और शक्ति दी है उसे हमें ऐसे कामों के लिए प्रयोग करें जिस के परिणाम व फल हमें सरलता से मिल जाएं और जिस के परिणामों की हमें अधिक आशा हो ।

ऐसे लोगों के उत्तर में कहना चाहिए :

पहली बात तो यह कि धर्म संबधी समस्याओं के समाधान की आशा अन्य विषयों से किसी भी प्रकार कम नहीं है और हमें पता है कि विज्ञान की बहुत सी समस्याओं के समाधान के लिए वैज्ञानिकों ने दसियों वर्षों तक अनथक प्रयास किए हैं ।

दूसरी बात यह है कि समाधान की आशा के प्रतिशत पर ही नजर नहीं रखनी चाहिए बल्कि उस के बाद मिलने वाले लाभ की मात्रा को भी दृष्टिगत रखना चाहिए उदाहरण स्वरूप अगर किसी व्यापार में लाभ प्राप्त होने की आशा पॉच प्रतिशत हो और दूसरे किसी व्यापारिक कार्य में लाभ प्राप्त होने की आशा दस प्रतिशत हो किंतु पहले वाले काम में अर्थात जिस में लाभ मिलने की आशा पॉच प्रतिशत हो लाभ की मात्रा एक हजार रूपये हो और दूसरे काम में अर्थात जिस में लाभ प्राप्त होने की आशा दस प्रतिशत हो लाभ की मात्रा सौ रूपये हो तो पहला काम दूसरे काम से पॉच गुना अधिक लाभदायक होगा ।

अब चूँकि धर्म के बारे में अध्ययन और उस में चितंन व खोज का संभावित लाभ ,किसी भी अन्य क्षेत्र में अध्ययन व खोज से अधिक होगा, भले ही खोज का लाभ प्राप्त होने की संभावना कम हो , क्योंकि किसी भी अन्य क्षेत्र में खोज का लाभ चाहे जितना अधिक हो किंतु सीमित होगा परंतु धर्म के बारे में खोज के बाद जो लाभ प्राप्त होगा वह मनुष्य के लिए अनंत व असीमित होगा । तार्किक रूप से धर्म के बारे में खोज न करने का औचित्य केवल उसी दशा में सही हो सकता है जब मनुष्य को धर्म और उस से संबंधित विषयों के गलत

होने का विश्वास हो जाए , किंतु यह विश्वास भी अध्ययन व खोज के बिना कैसे होगा ?!

## प्रश्न

1. वास्तविकता की खोज के लिए मनुष्य में कैसी भावना है ?

2. मनुष्य समस्त वास्तविकताओं का पता लगाने के लिए क्यों खोज नहीं करता ?

3. धर्म बोध का क्या अर्थ है ,और उस के होने का क्या प्रमाण है?

4. उसूले दीन के बारे में अध्ययन क्यों आवश्यक है ?

5. धार्मिक मामलों के अध्ययन के ठोस परिणाम न होने की आशा के कारण क्या इस संदर्भ में अध्ययन छोड़ जा सकता है ? क्यों ?

तीसरा पाठ

# मनुष्य की भाँति जीने की शर्त

- भूमिका
- मनुष्य , परिपूर्णता का खोजी है
- मनुष्य की परिपूर्णता बुद्धि में निहित है
- बौद्धिक कार्यों के लिए वैचारिक आधार आवश्यक हैं
- निष्कर्ष

## भूमिका

पिछले पाठ में हम ने धर्म की खोज की आवश्यकता और सही धर्म की पहचान के लिए प्रयास के बारे में चर्चा की और बताया कि मनुष्य में लाभ प्राप्ति और खतरों से बचने की जो भावना है उस के अंतर्गत तार्किक रूप से धर्म के बारे में खोज उस के लिए आवश्यक होती है और इस भावना को कोई भी अपने अस्तित्व में खोज सकता है ।

इस पाठ में हम अपनी उसी बात को दूसरे र्माग से सिद्ध करने का प्रयास करेगें जिस के लिए कुछ अधिक सूक्ष्म भूमिकाओं की आवश्यकता है और उस का परिणाम यह है कि जो भी धर्म के बारे में चिंतन नहीं करेगा और सही मत व आइडियालॉजी में विश्वास नहीं रखेगा वह एक परिपूर्ण मनुष्य नहीं बन सकता बल्कि मूल रूप से उसे वास्तविक मनुष्य ही नहीं कहा जा सकता । दूसरे शब्दों में मनुष्य की भाँति जीवन व्यतीत करने के लिए सही आयडियालॉजी व विचार धारा का होना आवश्यक है।

इस तर्क के लिए सर्वप्रथम तीन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है:

1. मनुष्य परिपूर्णता की खोज करने वाला प्राणी है ।

2. मनुष्य परिपूर्णता तक कुछ ऐसे कामों द्वारा पहुँचता है जो बुद्धि से मेल खाते हों और जिनका करना या न करना उस के अधिकार में हो ।

3. बुद्धि के व्यवहारिक आदेश विशेष प्रकार की वैचारिक पहचान के अंतर्गत ही संभव होते हैं जिन में सब से अधिक महत्वूर्ण सृष्टि के आंरभ अर्थात एकेश्वरवाद की पहचान,जीवन का अंत अर्थात प्रलय सफलता तक पहुँचाने वाले मार्ग की पहचान अर्थात ईश्वरीय दूत हैं या दूसरे शब्दों में सृष्टि की पहचान , मनुष्य की पहचान , और मार्ग की पहचान ।

अब हम इन तीनों के बारे में विस्तार से चर्चा करेगें ।

## मनुष्य परिपूर्णता का खोजी है

जो भी अपनी भावनाओं और स्वाभाविक इच्छाओं पर विचार करेगा उसे पता चल जाएगा कि इस प्रकार की बहुत सी इच्छाओं का कारण वास्तव में परिपूर्णता तक पहुँचने की भावना होती है । मूल रूप से कोई भी व्यक्ति यह नहीं चाहता कि उस के अस्तित्व में किसी प्रकार की कमी रहे वह सदैव यह प्रयास करता है कि जितना हो सके अपनी कमियों और बुराईयों को दूर करे ताकि परिपूर्णता तक पहुँच सके और जब तक यह कमियाँ उस में रहती हैं वह उन्हें दूसरों से छिपाए रखने का प्रयास करता है।

यह इच्छा अगर सही दिशा पा जाए तो फिर भौतिक व आध्यात्मिक विकास व उन्नति का कारण बनती है किंतु अगर विशेष परिस्थितियों के कारण अपने सही मार्ग से भटक जाए तो फिर अहंकार , दिखावा , आत्ममुग्धता आदि जैसे अवगुणों का कारण बन जाती है।

प्रत्येक दशा में परिपूर्णता व अच्छाई की ओर रुझान मनुष्य के अस्तित्व में निहित एक स्वाभाविक कारक है जिस के चिन्हों को प्रायः चेतित रूप से ध्यान देकर समझा जा सकता है किंतु अगर थोड़ा सा विचार किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इस का मुख्य स्रोत मनुष्य में परिपूर्णता की खोज है।

## मनुष्य की परिपूर्णता बुद्धि के अनुसरण पर निर्भर है

पेड़ पौधों की परिपूर्णता परिस्थितियों पर निर्भर होती है और जब उस के लिए आवश्यक परिस्थितियां बन जाती हैं तो फिर बिना किसी इच्छा व अधिकार के पेड़ पौधे उगते और बढ़ते हैं । कोई भी वृक्ष न तो अपनी इच्छा से बढ़ता है न फल देता है क्योंकि उस के पास बोध व आभास नहीं होता।

यद्यपि पशुओं के बारे में स्थिति थोड़ी भिन्न होती है। उन में इरादा और चयन की कुछ शक्ति होती है जो वास्तव में उन की प्राकृतिक इच्छाओं से प्रेरित होती है। पशुओं की सीमित बोध शक्ति उन के शरीर के इन्द्रीय ज्ञान पर निर्भर होती है।

किंतु मनुष्य को अपने इरादे और एक प्राणी होने के नाते उसे जो योग्यताएं प्राप्त हैं उन के अलावा आत्मिक रूप से भी दो विशिष्टताएं प्राप्त हैं । एक ओर स्वाभाविक आवश्यकताओं के दायरे में उस की स्वाभाविक इच्छाएं सीमिति नहीं होतीं और दूसरी ओर उसे बुद्धि जैसी शक्ति भी प्राप्त है जिस की सहायता से वह अपने ज्ञान को असीमित रूप से बढ़ा सकता है और इन्हीं विशिष्टताओं के कारण मनुष्य के संकल्प व इरादा की सीमा भौतिकता को पार करते हुए अनन्त तक फैल जाती है।

जिस प्रकार से पेड़ पौधे उसी समय परिपूर्ण होते हैं जब उन्हें विशेष प्रकार की ऊर्जा व शक्ति के प्रयोग का और उस से लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हो जाए और किसी पशु की परिपूर्णता उसी समय संभव होती है जब वह अपनी इन्द्रियों और स्वाभाविक इच्छाओं का पूरी तरह से पालन करे इसी प्रकार मनुष्य से विशेष परिपूर्णता भी उसी समय संभव है जब मनुष्य अपनी विशेष शक्तियों अर्थात ज्ञान व बुद्धि का सही प्रयोग करे भलाई और बुराई के विभिन्न स्तरों को पहचाने और अपनी बुद्धि द्वारा भले कामों में सब से अच्छे काम का चयन कर सके।

इस आधार पर एक व्यवहार उसी समय मानवीय हो सकता है जब बुद्धि के प्रयोग के साथ और विशेष मानवीय इच्छाओं के अंर्तगत हो और जो काम पशुओं की विशेषताओं के साथ अर्थात बुद्धि व बोध को प्रयोग में लाए बिना किए जाएगें वह निश्चित रूप से पशुओं वाले व्यवहार कहलाएगें भले ही उसे करने वाला विदित रूप से मनुष्य दिखाई दे । इसी प्रकार मनुष्य का वह काम जो स्वभाव या किसी प्रतिक्रिया के रूप में बिना किसी इरादे के किया गया हो वह केवल शारीरिक प्रकिया होती है।

## बुद्धि के व्यवहारिक आदेश और वैचारिक आधार शिला

सकंल्प व इरादे के साथ किया जाने वाला काम इच्छित परिणाम तक पहुँचने का एक मार्ग होता है और उस का महत्व, परिणाम के महत्व और आत्मा की परिपूर्णता में उस के प्रभाव पर निंभर करता है तो फिर अगर कोई काम किसी आत्मिक विशेषता से हाथ धोने का कारण बने तो वह नकारात्मक काम होगा।

इस प्रकार बुद्धि इरादे के साथ किए जाने वाले कामों के बारे में तभी निर्णय ले सकती और उस के महत्व को उसी समय समझ सकती है जब उसे मनुष्य के परिपूर्णता के मानदंडो और चरणों का ज्ञान हो। उसे पता हो कि मनुष्य किस प्रकार का प्राणी है और उस के जीवन की परिधि कहाँ तक है और एक मनुष्य अध्यात्मिक दृष्टि से कितनीं उँचाईयों को छू सकता है दूसरे शब्दों में बुद्धि यह समझ ले कि मनुष्य के अस्तित्व के आयाम क्या हैं और उस के जन्म का उद्देश्य क्या है ?

इस आधार पर सही आयडियालॉजी तक उसी समय पहुँचा जा सकता है जब विचार धारा स्वस्थ हो और विचार धारा के अनुसरण के समय उसे जिन समस्याओं का सामना करना पड़े उस के समाधान की उस में शक्ति हो क्योंकि जब तक इस प्रकार की समस्याओं के समाधान की शक्ति मनुष्य में नहीं होगी उस समयतक व्यवहार अथवा किसी काम के महत्व का बोध प्राप्त

करना उस के लिए कठिन होगा। इसी प्रकार  जब तक लक्ष्य स्पष्ट नहीं होगा उस समय तक उस लक्ष्य तक पहुँचने के मार्ग का पता लगाना संभव नहीं हो सकता ।

## निष्कर्ष

अब इतनी भूमिका के बाद धर्म की खोज की आवश्यकता और सही आयडियालॉजी और विचार धारा तक पहुँचने के प्रयास की आवश्यकता को इस प्रकार से सिद्ध कर सकते हैं:

मनुष्य स्वाभाविक रूप से स्वंय को मानवीय परिपूर्णता अर्थात समस्त अच्छाइयों से सुसज्जित करना चाहता है। वह चाहता है कि ऐसे काम करे जो उसे एक परिपूर्ण मनुष्य बना दें  किंतु इस बात को जानने के लिए कि कौन से काम उसे उस गंतव्य तक पहुँचाएगें सब से पहले उसे अपनी परिपूर्णता की सीमाओं का ज्ञान प्राप्त करना होगा। मानवीय परिपूर्णता का ज्ञान और पहचान मनुष्य के अस्तित्व की वास्तविकता और उस के आंरभ व अंत के ज्ञान पर र्निभर होती है। उस के बाद मनुष्य के लिए विभिन्न व्यवहारों की अच्छाई व बुराई को जानना और परिपूर्णता के विभिन्न चरणों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक होगा ताकि अपने आप को परिपूर्ण मनुष्य बनाने के लिए सही रास्ते को चुन सके क्योंकि मनुष्य जब तक इस रास्ते पर नहीं चलेगा वह सही आयडियालॉजी और मत को स्वीकार नहीं कर सकता।

इस लिए सही धर्म की खोज  की दिशा में प्रयास आवश्यक है और उस के बिना मानवीय परिपूर्णता तक पहुँचना संभव नहीं होगा। क्योंकि जो काम इस प्रकार के मूल्यों व मान्यताओं के अंतर्गत नहीं किए जाएगें वह वास्तव में मानवीय व्यवहार ही नहीं होगें और जो लोग सच्चे धर्म को पहचानने का प्रयास नहीं करते या फिर पहचान लेने के बाद भी हठ धर्मी व ज़िद के कारण उस का इन्कार करते हैं वे वास्तव में आनन्द भोग की पाशविक भावना का

अनुसरण करते हैं इस लिए उन्हें इन्सान नहीं कहा जा सकता । जैसा कि कुरआन मजीद के सूरए मुहम्मद की आयत बारह में आया है:

**वह सुख भोग रहे हैं और खा रहे हैं पशुओं की भाँति।**

इस के साथ यह भी है कि चूँकि ऐसे लोग अपनी मानवीय योग्यताओं को जो वास्तव में ईश्वरीय कृपा होती है ,नष्ट करते हैं इस लिए उन्हें दंड भी मिलता है जैसा कि कुरआन के सूरए हिज्र की आयत 3 में आया है:

**उन्हें खाने और सुख भोगने दो संसार की इच्छाओं में उन्हें व्यस्त रहने दो शीघ्र ही उन्हें पता चल जाएगा।**

## प्रश्न

1. धर्म की खोज के दूसरे तर्क की क्या भूमिकाएं हैं ?

2. मनुष्य में परिपूर्णता की खोज की भावना को स्पष्ट करें ।

3. मनुष्य की मूल विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।

4. इन विशेषताओं और मनुष्य की वास्तविक परिपूर्णता में क्या संबधं है ?

5. आयडियालॉजी किस प्रकार से विचार धाराओं पर निर्भर होती है?

चौथा पाठ

# मूल समस्याओं का समाधान

- भूमिका
- पहचान की श्रेणियाँ
- आयडियालॉजी की श्रेणियाँ
- समीक्षा
- परिणाम

## भूमिका

जब मनुष्य आयडियालॉजी तथा धर्म के मूल सूत्रों के मुख्य विषयों व समस्याओं का समाधान करना चाहता है तो सब से पहले उस के सामने यह प्रश्न आता है कि इन समस्याओं का समाधान किस मार्ग से होगा ? और किस प्रकार से इस के संबधं में मूल व सही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है ? और मूल रूप से पहचान व बोध के कौन से रास्ते मौजूद हैं ? और ज्ञान व पहचान प्राप्त करने के उन रास्तों में से किस से रास्ते का चयन करना चाहिए ?

इस विषय पर तकनीकी और विस्तार के साथ चर्चा दर्शन शास्त्र के एपिस्टोमोलॉजी विषय से संबंधित होती है जहॉ मनुष्य की विभिन्न प्रकार की पहचानों के बारे में चर्चा की जाती है किंतु यहॉ पर अगर इस संबधं में चर्चा की गयी तो हम अपने मुख्य उद्देश्य से दूर हो जाएगें इसी लिए हम ने केवल कुछ आवश्यक भागों के उल्लेख को ही पर्याप्त समझा और अधिक जानकारी के लिए हम ने उचित स्थान पर दूसरी किताबों का उल्लेख किया है।

## पहचान के प्रकार

मानवीय पहचान को एक दृष्टि से चार क़िस्मों में बॉटा जा सकता है:

**1. व्यवहारिक व वैज्ञानिक पहचान**; विशेष परिभाषा मेंद्ध इस प्रकार की पहचान इन्द्रियों द्वारा संभव होती है अर्थात शरीर के उन अंगों द्वारा जिन से आभास करके ज्ञान प्राप्त करते हैं हॉलाकि बुद्धि भी अनुभव और बोध में अपनी

भूमिका निभाती है। व्यवहारिक व प्रयोगिक पहचान भौतिक व रसायन शास्त्र जैसे व्यवहारिक विज्ञान में प्रयोग की जाती है ।

2. **बौद्धिक पहचान** , इस प्रकार की पहचान निष्कर्ष निकाल कर प्राप्त की जाती है और इस प्रकार की पहचान प्राप्त करने में मुख्य भूमिका बुद्धि की होती है यद्यपि यह भी संभव है कि इस प्रकार के ज्ञान व पहचान को प्राप्त करने के लिए कभी कभी अनुमान का भी सहारा लेना पड़े। इस प्रकार के ज्ञान व पहचान को तर्क व दर्शन शास्त्र तथा गणित जैसे विषयों में प्रयोग किया जाता है ।

3. **अनुकरणीय पहचान** ,यह पहचान दूसरे चरण की होती है और विश्वस्त सूत्र के बारे में पहले से ज्ञान रखने के आधार पर सच्चे स्रोत द्वारा प्राप्त होती है । ईश्वरीय धर्म के मानने वाले ईश्वरीय दूतों की बातों पर इसी प्रकार के ज्ञान के अंतर्गत विश्वास करते हैं और कभी कभी तो उन का विश्वास पहले की दो प्रकार की पहचानों से भी अधिक होता है ।

4. **दर्शनीय पहचान** इस प्रकार की पहचान पहले वाली सभी पहचानों व ज्ञानों के विपरीत सीधे रूप से प्राप्त होती है और इस प्रकार की पहचान साक्षात रूप से मस्तिष्क में अपना स्थान बना लेती है और इस में गलती का कोई स्थान नहीं होता किंतु यहाँ पर यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा इस प्रकार की पहचान के बारे में बहुत से लोगों को गलतफहमी होती है और देखी हुई बहुत सी वस्तुओं की अपने मन से व्याख्या करके कोई अर्थ निकाल लिया जाता है । ऐसी पहचान को दर्शनीय पहचान कदापि नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस में गलती की संभावना रहती है । इस बारे में आगे अधिक चर्चा की जाएगी।

## आयडियालॉजी की क़िस्में

ज्ञान व पहचान की हम ने जो व्याख्या की उस के आधार पर आयडियालॉजी को इस प्रकार से बॉटा जा सकता है:

1. वैज्ञानिक विचारधारा, अर्थात मनुष्य व्यवहारिक विज्ञान के आधार पर इस सृष्टि के बारे में कोई विचार धारा रखता हो।

2. दार्शनिक विचारधारा, यह तर्क व बौद्धिक परिश्रम के परिणाम में प्राप्त होती है ।

3. धार्मिक विचारधारा , यह धर्मगुरूओं पर आस्था और उन के कथनों पर विश्वास द्वारा प्राप्त होती है ।

4. आध्यात्मिक विचार धारा , यह आध्यात्मिक मार्गों और तपस्या आदि से प्राप्त होती है । अब हम को यहाँ पर यह देखना है कि विचार धारा की जो मूल समस्याएं हैं क्या उन्हें इन चार मार्गों द्वारा हल किया जा सकता है ।

इस के बाद फिर हम यह देखेगें कि इन मार्गों में से कोई मार्ग दूसरे से अच्छा है या नहीं ?

## समीक्षा

शारीरिक बोध व व्यवहारिक ज्ञान के सीमित होने के कारण इस प्रकार के ज्ञान द्वारा केवल भौतिक व संसारिक वस्तुओं के प्रति ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और विज्ञान द्वारा विचार धारा के सिद्धान्तों की पहचान संभव नहीं है क्योंकि इस प्रकार के विषय भौतिक ज्ञान से परे हैं और कोई भी भौतिक ज्ञान इस संदर्भ में कुछ नहीं कह सकता।

उदाहरण स्वरूप ईश्वर के अस्तित्व को किसी भी प्रकार से वैज्ञानिक मार्गों या प्रयोग शालाओं में परीक्षणों द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता और न ही उस के अस्तित्व को नकारा जा सकता है क्योंकि विज्ञान चाहे जितना विकास कर ले किंतु सीमित होता है और वह किसी भी प्रकार से इस संसार से हट कर अर्थात भौतिकता से दूर किसी विषय के बारे में कुछ नहीं कह सकता क्योंकि वह भौतिकता के जाल में फँसा होता है।

इस आधार पर वैज्ञानिक व भौतिक विचार धारा के जो अर्थ हम ने बताए हैं उन अर्थों में केवल एक धोखा है और उसे सही रूप में विचार धारा नहीं कहा जा सकता अधिक से अधिक उसे भौतिक संसार की पहचान का नाम दिया जा सकता है और इस प्रकार की पहचान विचार धारा के मूल विषयों को स्पष्ट नहीं कर सकती।

किंतु वह ज्ञान और पहचान जो अनुसरण द्वारा प्राप्त होती है वह दूसरी श्रेणी की पहचान होती है जैसा कि हम पहले भी बता चुके हैं इस प्रकार की पहचान व ज्ञान के लिए जिस के अनुसरण द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जा रहा है उस के बारे में ज्ञान प्राप्त होने से पूर्व विश्वास और उस पर आस्था का होना आवश्यक है अर्थात पहले आवश्यक है कि किसी ईश्वरीय दूत अथवा पैगम्बर की पैगम्बरी और ईश्वरीय दूत होना सिद्ध हो ताकि उस के संदेश पर विश्वास किया जा सके और उस से पहले संदेश देने वाले अर्थात ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणित होना आवश्यक है और स्पष्ट सी बात है कि ईश्वर के अस्तित्व को उस के भेजे हुए पैगम्बरों और दूतों के कथनों से सिद्ध नहीं किया जा सकता उदाहरण स्वरूप यह नहीं कहा जा सकता कि चूँकि कुरआन कहता है कि ईश्वर है इस लिए ईश्वर का अस्तित्व है । बल्कि यह प्रकिया इस के विपरीत होगी अर्थात सब से पहले ईश्वर के अस्तित्व को तर्क व बुद्धि के आधार पर सिद्ध करना होगा फिर पैगम्बरों के अस्तित्व को और कुरआन के अस्तित्व को और जब यह सारी बातें सिद्ध हो जाऐं तो पैगम्बरों के कथनों और कुरआन की शिक्षाओं का अनुसरण किया जा सकता है और इस मामले में सच्चे स्रोत के रूप में उस पर विश्वास करके उन का पालन किया जा सकता है किंतु मूल विषयों को दूसरे मार्गों से सिद्ध करना आवश्यक होगा ।

तो इस प्रकार से यह बात स्पष्ट हो गयी कि अनुकरणीय अर्थात विश्वस्त सूत्र की बात मान कर जो पहचान व ज्ञान प्राप्त किया जाता है वह सृष्टि की वास्तविकता को समझने के लिए उपयोगी नहीं होगा और उस के द्वारा सृष्टि के बारे में विचारधारा नहीं बनाई जा सकती।

किंतु पहचान प्राप्त करने का आध्यात्मिक व तपस्या आदि का जो मार्ग है उस के बारे में कुछ बातों को पहले स्पष्ट करना आवश्यक है।

पहली बात तो यह कि विचार धारा एक चिंतन व वैचारिक तथ्य है किंतु आध्यात्मिक मार्गो से प्राप्त की जाने वाली पहचान और ज्ञान को इस गुट में नहीं रखा जा सकता है इस आधार पर इस प्रकार की पहचान पर भरोसा करना वास्तव में लापरवाही होगी ।

दूसरी बात यह है कि आध्यात्म द्वारा मनुष्य को जो ज्ञान प्राप्त होता है उस के वर्णन और उस को समझने के लिए एक विशेष प्रकार की मानसिकता व ज्ञान की आवश्यकता होती है जो दर्शन व तर्क शास्त्र में दक्षता के बिना संभव नहीं होती और जो लोग इस क्षेत्र में दक्ष नहीं हैं वह उस के वर्णन के समय ऐसे शब्दों व परिभाषाओं का प्रयोग करते हैं जिन से भ्रांति उत्पन्न होती है जो वास्तव में पथभ्रष्टता का एक मूल कारण है ।

तीसरी बात यह है कि आध्यात्म द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है उस में और मनुष्य के मस्तिष्क की उपज में इतनी अधिक समानता होती है कि कभी कभी स्वंय इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने वाला मनुष्य ही धोखा खा जाता है ।

चौथी बात यह कि ऐसी वास्तविकताओं तक पहुॅचना और उन को समझना कि जिन्हें विचार धारा का नाम दिया जा सके वर्षो की तपस्या व उपासना के बाद ही संभव होता है इस लिए इस मार्ग पर चलने से पूर्व सारी बातों का स्पष्ट होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में आध्यात्म के क्षेत्र में कोई अगर इतना आगे निकल चुका है कि ईश्वर ने उसे विशेष शक्तियॉ प्रदान कर दी हैं और वह भौतिक साधनों के प्रयोग के बिना वस्तुओं की वास्तविकता को समझ जाता है तो इस के लिए उसे ईश्वर पर विश्वास और उस पर आस्था की चरम सीमा पर होना चाहिए तभी उस के ज्ञान व पहचान पर भरोसा किया जा सकता है। इस लिए कोई भी आध्यात्म द्वारा इस सृष्टि के बारे में विचार धारा नहीं बना सकता क्योंकि ईश्वर की सही पहचान के बिना उस में वह शक्ति ही नहीं आएगी और जब वह शक्ति आएगी तो उस समय तक वह ईश्वर की पूर्ण

पहचान प्राप्त कर चुका होगा इस स्थिति में उस के लिए ईश्वर की पहचान के लिए इस मार्ग की आवश्यकता नहीं रह जाएगी।

## परिणाम

इस पूरी चर्चा के बाद जो निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि वास्तविकता के खोजी के सामने सृष्टि के बारे में विचार धारा बनाने और उसे समझने का जो एक मात्र मार्ग बचता है वह चिंतन व बुद्धि ही है इस आधार पर सृष्टि के बारे में सही विचार धारा को दार्शनिक विचार धारा समझना चाहिए ।

यद्यपि इस ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि इन समस्याओं के समाधान को बुद्धि पर और सृष्टि के बारे में विचार धारा को दर्शन शास्त्र पर निर्भर करने का यह अर्थ नहीं है कि सृष्टि के बारे में सही विचारधारा व दृष्टिकोण तक पहुँचने के लिए दर्शन व तर्क शास्त्र के सभी सिद्धान्तों का स्पष्ट होना आवश्यक है बल्कि ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए दर्शन शास्त्र के कुछ साधारण व आरंभिक सिद्धान्त ही पर्याप्त होते हैं। यद्यपि इस क्षेत्र में जितना अधिक ज्ञान और दक्षता प्राप्त की जाए उतना ही शंकाओं का निवारण सरल होता है । इस के अतिरिक्त भी इन विषयों को बुद्धि द्वारा स्पष्ट करने की सिफारिश का अर्थ यह नहीं है कि इस संदर्भ में किसी और मार्ग का प्रयोग न किया जाए बल्कि दर्शन व तर्क के आधार पर जो प्रमाण लाए जाते हैं उन में से बहुत से प्रमाणों के लिए ऐसी भूमिकाओं से भी लाभ उठाया जा सकता है जो देखकर , सुन कर या किसी अन्य मार्ग से प्राप्त होने वाले ज्ञान पर आधारित हों अर्थात ज्ञान प्राप्ति के अन्य मार्गों से हों कुल मिलाकर यह कहना चाहिए कि सृष्टि की रचना के बारे में बुद्धि व तर्क द्वारा एक विचार धारा बना लेने के बाद आध्यात्म के उच्चतम् चरणों पर भी पहुँचा जा सकता है और फिर उस के बाद बहुत से ज्ञान और पहचान को बिना भौतिक चरणों और साधनों के प्राप्त किया जा सकता है।

## प्रश्न

1. मनुष्य की विभिन्न पहचानों और उन में से प्रत्येक के कार्य प्रभाव के बारे में बताएं।

2. कितने प्रकार की विचार धारा हो सकती है?

3. सृष्टि के बारे में विचार धारा से संबंधित बातों को किस प्रकार प्रमाणित किया जा सकता है ?

4. सृष्टि के बारे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करें ?

5. सृष्टि के बारे में विचार धारा से संबंधित बातों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा किस प्रकार वर्णन किया जा सकता है ?

6. आस्था व विश्वास से संबंधित बातों को सिद्ध करने के लिए अनुकरणीय पहचान से किस प्रकार लाभ उठाया जा सकता है?

7. आध्यात्मिक विचार धारा किया है ? और किया सृष्टि के बारे में विचार धारा से सबंधित बातों को इस मार्ग से प्रमाणित किया जा सकता है ? क्यों ?

पॉचवॉ पाठ

# ईश्वर की पहचान

- भूमिका
- उपस्थिति व प्राप्ति द्वारा पहचान
- स्वाभाविक पहचान

# भूमिका

हमें यह पता चल चुका है कि धर्म का आधार इस सृष्टि के रचयता के अस्तित्व पर विश्वास है और भौतिक वादी व ईश्वरीय विचार धारा के मध्य मुख्य अंतर भी इसी विश्वास का होना और न होना है ।

इस आधार पर सत्य के खोजी के सामने जो पहली बात आती है और जिस का उत्तर उस के लिए किसी भी अन्य बात से अधिक आवश्यक होता है वह यह है कि किसी ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं ? और इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए जैसा कि इस से पहले के पाठ में हमने बताया है सत्य के खोजी को अपनी बुद्धि का प्रयोग करना होगा ताकि निश्चित परिणाम तक पहुँच सके , चाहे वह परिणाम सकारात्मक हो या नकारात्मक।

परिणाम अगर सकारात्मक होगा तो उस दशा में ईश्वर के बाद के विषयों पर विचार व चिंता की बारी आएगी अर्थात फिर उस के बाद उस के गुणों के बारे में सोचना होगा कि अगर ईश्वर है तो कैसा है ? उस की विशेषतएं क्या हैं ? किंतु अगर उत्तर नकारात्मक रहा अर्थात सत्य का खोजी चिंतन व विचार के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि इस सृष्टि का कोई रचयता नहीं है तो भौतिकवादी विचार धारा प्रमाणित होगी और फिर धर्म से संबंधित अन्य विषयों पर विचार अथवा चिंतन की कोई आवश्यकता नहीं होगी ।

# आध्यात्मिक पहचान और प्राप्त की जाने वाली पहचान

ईश्वर के बारे में दो प्रकार से पहचान व ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है स्वाभाविक रूप से और अन्य स्थान से प्राप्त करके ।

स्वाभाविक पहचान का आशय यह है कि मनुष्य चिंतन व समीक्षा के बिना विशेष प्रकार की मनोस्थिति व आध्यात्मिक शक्ति द्वारा यह विश्वास प्राप्त कर ले कि ईश्वर है और यह भी जान ले कि वह कैसा है।

स्पष्ट है कि अगर किसी को इस प्रकार से ईश्वर की पहचान और उस के बारे में ज्ञान प्राप्त हो जाए , जैसा कि कुछ लोग दावा करते हैं , तो फिर उसे चिंतन व विचार के चरणों से गुज़रने की आवश्यकता नहीं होगी किंतु जैसा कि हम पहले बता चुके हैं इस प्रकार का ज्ञान किसी साधारण मनुष्य के लिए संभव नहीं है और आध्यत्म के इस स्थान तक पहुँचने के लिए बहुत तपस्या करनी पड़ती है और अगर कुछ साधारण लोगों में इस प्रकार की शक्ति अत्यन्त क्षीण रूप में मौजूद भी हो तो चूँकि उन्हें उस की जानकारी नहीं होती और उस के साथ ज्ञान भी नहीं होता इस लिए इस प्रकार के परिणाम और धार्मिक विचार धारा तक पहुँचने के लिए उसे पर्याप्त नहीं समझा जा सकता है।

प्राप्त की जाने वाली पहचान का अर्थ यह है कि मनुष्य आवश्यकता मुक्त रचयता , ज्ञानी , सक्षम जैसे अर्थों की सहायता से एक अदृष्य शक्ति के बारे में एक विचार धारा बना ले और केवल इतना विश्वास पैदा कर ले कि इस प्रकार की कोई शक्ति हैं जिस ने इस संसार की रचना की है फिर इस संदर्भ में अधिक विचार करके अन्य प्रकार की बातों व ईश्वर की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करे तो फिर विचारों और विश्वासों के इस समूह को धार्मिक विचार धारा का नाम दिया जा सकता है ।

तार्किक दलीलों और दार्शनिक विचारों के बाद अपरोक्ष रूप से जो वस्तु प्राप्त होती है उसे प्राप्त की जाने वाली पहचान व ज्ञान का नाम दिया जाता है और जब इस प्रकार की पहचान प्राप्त हो जाए तो फिर उस के बाद

मनुष्य स्वाभाविक व आध्यात्मिक पहचान प्राप्त करने का भी प्रयास कर सकता है ।

## स्वाभाविक पहचान

हम प्रायः यह सुनते रहते हैं कि ईश्वर की पहचान मनुष्य की प्रवृत्ति में है और मनुष्य स्वाभाविक रूप से ईश्वर की पहचान रखता है । इस प्रकार के वाक्यों के अर्थ को अधिक समझने के लिए प्रवृत्ति और स्वाभाव के बारे में हम कुछ चर्चा करेगें ।

प्रवृत्ति व स्वभाव से आशय वह दशा व स्वभाव होता है जो किसी भी प्राणी के जन्म के साथ ही उस में पाया जाता है और उस प्रकार के सभी प्राणियों में यह विशेषता व स्वभाव समान होता है। इस प्रकार से प्रवृत्ति व स्वभाव के लिए तीन विशेषताओं पर ध्यान दिया जा सकता है:

1. प्रवृत्ति हर प्राणी में उस के जैसे अन्य प्राणियों की भाँति होती है भले ही किसी में प्रबल और किसी में क्षीण हो।

2. प्रवृत्ति सदैव एक जैसी होती है और इतिहास से भी यह सिद्ध होता कि प्रवृत्ति में कभी भी परिवर्तन नहीं आता आज मनुष्य की जो प्रवृत्ति है वह हजार वर्ष पहले भी थी ।

3. प्रवृत्ति से संबंधित विशेषताओं को सीखने सिखाने की आवश्यकता नहीं होती यद्यपि उसे सजाया संवारा जा सकता है और इस के लिए प्रशिक्षण व सीखने की आवश्यकता हो सकती है।

मनुष्य की प्रवृत्ति व फितरत को दो भागों में बाँटा जा सकता है :

1. प्रवृत्ति व स्वभाव संबधी पहचान जो हर मनुष्य में बिना किसी प्रशिक्षण व शिक्षा के पाई जाती है ।

2. व्यक्तिगत स्वभाव व इच्छाएं जो हर मनुष्य में अलग अलग भी हो सकती हैं ।

इस आधार पर किसी प्रकार की ईश्वरीय पहचान अगर प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक प्रमाणित विषय हो और उस के लिए उसे कुछ सीखने की आवश्यकता न हो तो फिर इस प्रकार की पहचान को ईश्वर की स्वाभाविक पहचान का नाम दिया जा सकता है और अगर मनुष्य में ईश्वर और उस की उपासना की ओर स्वाभाविक रूप से रुझान पाया जाता हो तो फिर उसे स्वाभाविक उपासना का नाम दिया जा सकता है ।

दूसरे पाठ में हम ने बताया था कि बहुत से बुद्धिजीवी ईश्वर व धर्म की ओर इन्सान के रुझान को स्वाभाविक व मनोवैज्ञानिक विषय मानते हैं और उसे धर्म बोध या धर्म भावना का नाम देते हैं । यहॉ पर हम यह कहेगें कि ईश्वर की पहचान भी मनुष्य के लिए स्वाभाविक बताई गयी है। किंतु जिस प्रकार ईश्वर की उपासना की प्रवृत्ति जाना बूझा रुझान नहीं है उसी प्रकार ईश्वर की पहचान की प्रवृत्ति भी जाना बूझा रुझान नहीं होता कि साधारण लोगों को इस संदर्भ में चिंतन व विचार की आवश्यकता ही न पड़े । अर्थात हमने जो यह कहा है कि ईश्वर की पहचान हर मनुष्य में स्वाभाविक रूप से होती है तो इस का अर्थ यह नहीं होगा कि मनुष्य को ईश्वर की पहचान प्राप्त करने की दिशा में प्रयास की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि उस में यह पहचान स्वाभाविक रूप से मौजूद होती है।

किंतु इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए कि हर व्यक्ति जिसे कम ही सही किंतु ईश्वर की आध्यात्मिक पहचान होती है वह थोड़ा सा चिंतन और विचार करके ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार कर सकता है और धीरे धीरे अपने बोध , ज्ञान और पहचान में वृद्धि करके चेतना व ज्ञान के चरण में पहुँच सकता है।

परिणाम यह निकला कि ईश्वर की पहचान व बोध के स्वाभाविक होने का यह अर्थ हैं कि मनुष्य का ह्रदय ईश्वर को पहचानता है और उस की आत्मा की गहराईयों में ईश्वरीय पहचान का प्रकाश मौजूद होता है जिसे बढ़ाया भी

जा सकता है किंतु साधारण लोगों में यह स्थिति ऐसी नहीं होती कि उन्हें चिंतन व विचार की आवश्यकता ही न रहे।

## प्रश्न

1. सृष्टि के बारे में विचारधारा का सब से मुख्य विषय क्या है ? क्यों
2. ईश्वर के बारे में पहचान के दोनों प्रकारों का वर्णन करें ।
3. क्या आध्यात्मिक पहचान को तर्कों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है ? क्यों ?
4.प्राप्त की जाने वाली पहचान आध्यात्मिक पहचान के बारे में क्या भूमिका निभा सकती है?
5. प्रवृत्ति व फितरत का क्या अर्थ होता है?
6. स्वभाविक व फितरती कार्यों की विशेषताएं बताएं ?
7. स्वाभाविक बातों की क़िस्में बताएं ।
8. कौन सा स्वाभाविक काम ईश्वर से संबंधित है ?
9. ईश्वर की स्वाभाविक पहचान का वर्णन करें ।
10. स्वाभाविक रूप से ईश्वर की पहचान होने के कारण मनुष्य इस संदर्भ में सोचने व चिंतन से मुक्त हो जाता है ? क्यों ?

छठॉ पाठ

# ईश्वर को पहचानने का सरल मार्ग

- ईश्वर को पहचानने के मार्ग
- सरल मार्ग की विशेषताएं
- जाने पहचाने चिन्ह

## ईश्वर की पहचान के मार्ग

ईश्वर को पहचानने के लिए असंख्य और विभिन्न मार्ग हैं जिन का बुद्धिजीवियों की किताबों में ,धर्मगुरूओं द्वारा और ग्रंथों में उल्लेख किया गया है । ईश्वर की पहचान के लिए जो प्रमाण प्रस्तुत किए जाते हैं, वह कई पहलुओं से एक दूसरे से अलग हैं । उदहरण स्वरूप कुछ दलीलों व प्रमाणों में अनुभव , प्रयोग और बोध से संबंधित तथ्यों का सहारा लिया गया है जब कि कुछ अन्य में केवल बौद्धिक तर्कों का ही प्रयोग किया गया है ।कुछ दलीलों में सीधे रूप से ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित किया गया है जब कि कुछ अन्य दलीलों में बौद्धिक तर्कों का सहारा लेकर किसी ऐसे अस्तित्व को प्रमाणित किया गया है जिस की उपस्थिति के लिए किसी अन्य अस्तित्व की आवश्यकता नहीं होती और जिस को पहचानने के लिए दूसरे प्रकार की दलीलें लानी होती हैं ।

एक पहलू से ईश्वर को पहचानने की दलीलों को ऐसी राहों के समान बताया जा सकता है जो नदी को पार करने के लिए होती हैं । नदी पार करने के लिए कभी साधारण लकड़ी के पुल होते हैं जो नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक बनाए जाते हैं और जिस पर चल कर राही दूसरी ओर पहुँच जाता है जब कि कुछ पुल पत्थर के बने होते हैं जो अधिक मज़बूत होते हैं किंतु इस से रास्ता लंबा हो जाता है जब कि नदी के भीतर से रेल की पटरी भी बिछाई

जाती है जो टेढ़ी मेढ़ी होती है और जहॉ से भारी भरकम रेलगाड़ियों गुज़रती हैं ।

जो लोग सरलता से तथ्यों को स्वीकार करते हैं वह बड़े ही साधारण मार्ग से अपने ईश्वर को पहचान और उस की उपासना कर सकते हैं किंतु जिन के मस्तिष्क पर शंकाओं का बोझ होता है उन्हें पत्थर से बने हुए पुल का मार्ग अपनाना चाहिए और जो लोग सदैव ही शंकाओं और संदेहों के भंवर में फॅसे रहते हैं उन्हें ऐसे मार्ग का चयन करना होगा जो अधिक मज़बूत हो भले ही उस में मोड़ व जटिलता भी अधिक ही क्यों न हो ।

हम यहॉ पर सब से पहले तो ईश्वर को पहचानने के साधारण व सरल मार्ग का उल्लेख करेगें उस के बाद मध्यमार्ग का वर्णन करेगें किंतु मोड़ों से भरे जटिल मार्ग पर उन्हीं लोगों को चलना चाहिए जिन के मन में शंकाओं का अंधकार हो क्योंकि इस मार्ग पर चलने के लिए दर्शन शास्त्र जैसे बहुत से जटिल व गूढ़ ज्ञान की आवश्यकता होती है।

## साधारण मार्ग की विशेषताएं

ईश्वर को पहचानने के सरल मार्ग की कुछ विशेषताएं हैं जिन में कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं इस प्रकार हैं :

1. इस मार्ग पर चल कर ईश्वर को पहचानने के लिए जटिल व गूढ़ और कठिनाई से समझी जाने वाली भूमिकाओं की आवश्यकता नहीं होती बल्कि अत्यन्त सरल शब्दों में ईश्वर को पहचनवा दिया जाता है जिस का समझना हर वर्ग और स्तर से संबधं रखने वाले व्यक्ति के लिए बिल्कुल सरल होता है ।

2. यह मार्ग सीधे रूप से बुद्धिमान व विश्व के रचयता ईश्वर की ओर जाता है और यह मार्ग दर्शन शास्त्र व वाद शास्त्र के विपरीत है कि जिन में पहले किसी ऐसे अस्तित्व की उपस्थिति सिद्ध की जाती है जिस को अपनी

उपस्थिति के लिए किसी अन्य अस्तित्व की आवश्यकता नहीं होती और फिर उस के गुणों और विशेषताओं को अन्य मार्ग से सिद्ध किया जाता है।

3. यह मार्ग किसी भी वस्तु से अधिक प्रवृत्ति की चेतना और स्वाभाविक ज्ञान को जगाने का काम करता है और उस के विभिन्न चरणों पर चिंतन व विचार द्वारा मनुष्य आध्यात्म के उच्च स्थान पर पहुँच जाता है और वह संसारिक परिवर्तनों और रचनाओं के पीछे ईश्वर के हाथ देखता है जिसे उस की प्रवृत्ति भी पहचान रही होती है।

इन्हीं विशेषताओं के कारण धर्मगुरूओं और ईश्वरीय मार्गदर्शकों ने इस मार्ग को आम लोगों के लिए चुना है और उन्हीं इस पर चलने का निमंत्रण दिया है और दूसरे मार्गों को विशेष प्रकार के लोगों के लिए विशेष किया है या फिर नास्तिक बुद्धिजीवियों और ईश्वर का इन्कार करने वाले दर्शन शास्त्रियों से बहस के दौरान उस का प्रयोग किया है।

## जाने पहचाने चिन्ह

ईश्वर को पहचानने का सब से सरल मार्ग पृथ्वी पर मौजूद उस के चिन्हों के बारे में चिंतन करना है और कुरआन के शब्दों में ईश्वर के चिन्हों के बारे में चिंतन करना है । अर्थात ब्रहमाण्ड की सभी चीज़ें चाहे वह पृथ्वी पर हों या आकाश पर या फिर मनुष्य के शरीर में एक जाने पहचाने अस्तित्व को दर्शाती हैं और दिल की सूईयों को सृष्टि के केन्द्र व रचयता की ओर घुमाती हैं जो हर समय हर स्थान पर उपस्थित रहता है।

यही किताब जो आप के हाथों में है उस का चिन्ह है क्योंकि आप इस को पढ़ कर एक जानकार व उद्‌देश्य रखने वाले लेखक का पता पाते हैं । क्या कभी आप यह सोच सकते हैं कि यह किताब कुछ भौतिक परिवर्तनों द्वारा बिना किसी उद्‌देश्य के यूँही लिख गयी हो ? और इस का कोई लेखक नहीं है और न ही इस किताब के लिखने का कोई उद्‌देश्य है ? क्या यह मूखर्ता नहीं

होगी अगर कोई यह सोचे कि कई भागों पर आधारित एक बड़ी पुस्तक किसी खान में विस्फोट के परिणाम में लिख गयी हो , कुछ इस प्रकार से कि विस्फोट के बाद उठने वाले कण शब्द बनें हों और कुछ कागज़ के टुकड़ों से टकराने के बाद उस पर चिपक कर वाक्य बन गये हों और फिर कागज़ संयोग से एक दूसरे से जुड़ गये हों और उस ने एक बड़ी किताब का रूप धारण कर लिया हो ?

तो फिर अगर यह सोचना मूर्खता है तो फिर एक महान ब्रहाण्ड की उत्पत्ति को संयोग वश मानना ,जिस में इतने सारे रहस्य छुपें हुए हैं, अधिक मूर्खता पूर्ण कार्य होगा।

जी हॉं कोई भी उद्देश्य पूर्ण व्यवस्था, उद्देश्य रखने वाले व्यवस्थापक का चिन्ह होती है और पूरी सृष्टि में इस प्रकार की सूक्ष्म व्यवस्थाएं बड़ी संख्या में नज़र आती हैं जो मिल कर एक परिपूर्ण व्यवस्था की रचना करती हैं जिसे एक बुद्धिमान रचयता ने जन्म दिया है और वही उसे सही रूप से चला रहा है।

बाग में मिट्टी और खाद व पानी की सहायता से उगने वाले फूल, अपने विभिन्न आर्कषक रंगों और सुगंधों के साथ और सेब का पेड़ जो एक छोटे से बीज से इतना बड़ा होता है और हर वर्ष ढेरों फल देता है इसी प्रकार सारे पेड़ पौधे सब कुछ किसी का पता बताते हैं ।

इसी प्रकार फूलों की डालियों पर बैठी बुलबुल जो मीठी आवाज़ में बोलती है और अंडो से जो बच्चे बाहर आते हैं और अपनी चोंच ज़मीन पर मारते हैं और जनम लेते ही अपनी मॉं का दूध पीने वाला बछड़ा और गाय के थन में दूध का होना यह सब कुछ उसी के चिन्ह तो हैं ।

यदि सोचा जाए तो स्तनों में दूध का होना कितनी आश्यर्च की बात है जो बच्चे को जन्म देते ही स्तन में आ जाता है ।

वह मछिलयॉं , जो हर वर्ष अंडा देने के लिए , सैंकड़ों किलोमीटर यात्रा करती हैं और समुद्री पंछी जिन्हें समुन्द्र के आसपास मौजूद हजा़रों अन्य

पंछियों के घोंसलों में से अपने घोंसले का सही पता होता है और एक बार भी वह दूसरे के घोंसले में नहीं जाते और मधुमख्खियां जो प्रतिदिन प्रातः अपने छत्ते से बाहर निकलती हैं और दूर दूर जाकर फूलों का रस चूसती हैं और शाम होते ही दोबारा अपने छत्तों में लौट जाती हैं यह सब कुछ उसी का तो चिन्ह है ।

इन सब से अधिक आश्चर्य की बात है कि मधु मख्खियां और गाय अपनी आवश्यकता से कई गुना अधिक शहर और दूध देती हैं ताकि मनुष्य, यह श्रेष्ठ प्राणी, उस से लाभ उठाए ।

किंतु अकृतज्ञ मनुष्य, अपने स्वामी को अन्जाना अस्तित्व समझता है और उस के अस्तित्व को लेकर बहस करता है।

इसी मानव शरीर में ईश्वर की महान व सूक्ष्म रचनाओं के अनेकों उदाहरण मिलते हैं । शरीर के विभिन्न अंगों में सामंजस्य, प्रत्येक अंग की विशेष प्रकार की करोड़ों जीवित कोशिकाओं से रचना यद्यपि सारी कोशिकाएं एक ही कोशिका से अस्तित्व में आई हुई होती हैं किंतु प्रत्येक कोशिका आवश्यक पदार्थों की निर्धारित मात्रा के साथ होती है इस के अतिरिक्त शरीर का प्रत्येक अंग अपने सही स्थान पर रहता है और विभिन्न अंगों के उद्देश्यपूर्ण व संतुलित काम उदाहरण स्वरूप फेफड़ों द्वारा आक्सीजन शरीर के भीतर जाती है और फिर लाल रक्त कणों द्वारा शरीर के विभिन्न भागों तक पहुँचती है, यकृत आवश्यक मात्रा में शर्करा बनाता है, घाव या कटने की स्थिति में नयी कोशिकाएं स्वयतः जन्म लेती हैं सफेद ग्लोब्यूल अथवा कणों द्वारा रोगाणुओं के विरूद्ध लड़ाई और इसी प्रकार शरीर के एक–एक अंग एक एक कोशिका की क्रियाएं सब की सब उसी ईश्वर के चिन्ह ही तो हैं ।

यह विचित्र व्यवस्था जिस के सारे रहस्य सैकड़ों वर्षों से हजारो वैज्ञानिक भी जान पाने में विफल रहे हैं किस के द्वारा स्थापित की गयी है ?

प्रत्येक कोशिका एक सूक्ष्म व उददेश्यपूर्ण व्यवस्था है और कोशिकाओं का एक समूह एक अंग बनाता है जो एक बड़ी उददेश्यपूर्ण व्यवस्था होती है और इस प्रकार की जटिल व उददेश्पूर्ण व्यवस्थाओं के समूह को शरीर कहा जाता है किंतु बात यही पर समाप्त नहीं होती बल्कि इस ब्रहमाण्ड के कोने कोने में प्राण धारी और बिना प्राण की ऐसी लाखों करोड़ों व्यवस्थाएं मौजूद हैं जो मिल कर इस ब्रमहाण्ड की रचना करती हैं जिस का कोई छोर नहीं है और जो एक तत्वदर्शी व सूझबूझ वाले व्यवस्थापक की देखरेख में संतुलित रूप से चल रहा है।

**तुम्हारा ईश्वर वही है तो फिर कहाँ जा रहे हो।**[1]

स्पष्ट है कि मानव ज्ञान जितना बढ़ता जाएगा प्रकृति के रहस्यों से उतना ही अधिक पर्दा उठता जाएगा और इस सृष्टि के रहस्य उतने ही जग ज़ाहिर होते जाएगें किंतु अब तक जिन रहस्यों से पर्दा उठ चुका है उन्हीं पर चिंतन और विचार पवित्र व स्वच्छ मन रखने वालों को इस संसार के बनाने वाले तक पहुँचा देगा ।

## प्रश्न :

1. ईश्वर को पहचानने के विभिन्न मार्ग और उन की विशेषताएं बताइए ।
2 . ईश्वर की पहचान प्राप्त करने का सरल मार्ग क्या है ? और उस की विशेषता क्या है ?
3. विभिन्न रचनाओं के उददेश्यपूर्ण होने के चिन्हों का वर्णन करें ।
4. ब्रहमाण्ड की संतुलित व्यवस्था का तर्कसंगत कारण बताएं ।

[1] अनआम आयत 95

सातवाँ पाठ

# आत्मभू या वाजिबुल वूजूद का प्रमाण

- भूमिका
- तर्क
- संभावना व अनिवार्यता
- कारण व परिणाम
- कारणों की एक दूसरे पर निर्भरता असंभव है
- तर्क की व्याख्या

## भूमिका

पिछले पाठ में हम ने संकेत किया था कि ईश्वरीय दर्शन शास्त्रियों और धर्म गुरूओं ने ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए बहुत सारे तर्क और प्रमाण पेश किए हैं जिन्हें इस विषय से संबंधित पुस्तकों में देखा जा सकता है । हम ने यहॉ पर एक ऐसे तर्क और प्रमाण को आप के लिए चुना है जिस के लिए अपेक्षाकृत कम भूमिकाओं की आवश्यकता है और इस के साथ ही उसे समझना भी सरल है किंतु यह याद रखना चाहिए कि यह तर्क ईश्वर को एक अनिर्वाय अस्तित्व के रूप में प्रमाणित करता है अर्थात ऐसे अस्तित्व के रूप में जिस का होना आवश्यक है और जिसे किसी जन्मदाता की आवश्यकता नहीं है और उस अनिवार्य अस्तित्व अर्थात ईश्वर के अन्य अपरिहार्य गुणों, जैसे ज्ञान , शक्ति और शरीर का न होना आदि को अन्य तर्कों से प्रमाणित करेगें ।

## तर्क

प्रत्येक अस्तित्व बुद्धि के अनुसार या तो अनिवार्य होगा या फिर संभव और कोई भी अस्तित्व इन दो बौद्धिक दशाओं से हट कर नहीं हो सकता । किंतु सारे अस्तित्व संभव व निर्भर की श्रेणी में नहीं रखे जा सकते क्योंकि संभव व निर्भर अस्तित्व को अपने अस्तित्व के लिए किसी जन्मदाता की आवश्यकता होती है और अगर सारे जन्मदाताओं के अस्तित्व संभव व निर्भर अस्तित्व की श्रेणी में आते हों तो फिर हर एक को एक कारक की आवश्यकता

होगी और इस प्रकार से यह कम कभी न समाप्त होने वाला हो जाएगा । दूसरे शब्दों में कारकों का एक दूसरे पर निर्भर होना बुद्धि के अनुसार संभव नहीं है इस लिए इस प्रकार के सभी अस्तित्वों के लिए किसी एक ऐसे कारक और जन्मदाता की आवश्यकता है जो स्वंय किसी कारक या जन्मदाता पर निर्भर न हो और उसे अपने अस्तित्व के लिए किसी अन्य कारक की आवश्यकता न हो अर्थात उस का अस्तित्व अनिवार्य हो।

यह ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने का सरलतम् दार्शनिक मार्ग है जो कुछ बौद्धिक भूमिकाओं से बना हुआ है और इसे किसी अन्य भूमिका अर्थात प्रयोगात्मक भूमिका की भी आवश्यकता नहीं है किंतु चूंकि इस तर्क में दार्शनिक तर्कों व सिद्धान्तों का प्रयोग किया गया है इस लिए इन दार्शनिक नियमों और सूत्रों को स्पष्ट करने के लिए कुछ भूमिकाओं की आवश्यकता है

## संभावना और अनिवार्यता

कोई बात चाहे जितनी सरल हो कम से कम दो मूल विषयों पर आधारित होती है विषय और विशेषता । उदाहरण स्वरूप यह वाक्य कि सूर्य प्रकाश देता है इस वाक्य में सूर्य के लिए प्रकाश को सिद्ध किया गया है यहॉ सूर्य विषय है और प्रकाश देना विशेषता है।

विषय के लिए विशेषता सिद्ध करना केवल तीन दशाओं में सीमित है या विषय के लिए विशेषता असंभव होगी उदाहरण स्वरूप यह कहा जाए कि तीन की संख्या चार से बड़ी है या विषय के लिए विशेषता अनिवार्य हो उदाहरण स्वरूप यह कहा जाए कि दो की संख्या चार की संख्या की आधी है या फिर न असंभव हो न अनिवार्य हो उदाहरण स्वरूप यह कहा जाए कि सूर्य हमारे सिर के ऊपर है ।

तर्कशास्त्र के नियमों के अनुसार पहली दशा में विषय व विशेषता का संबधं असंभव है और दूसरी दशा में यह संबधं आवश्यक है या अनिवार्य है और तीसरी दशा में संभव है यद्यपि संभव के विशेष अर्थ के साथ ।

किंतु इस बात के दृष्टिगत कि दर्शन शास्त्र में अस्तित्व के बारे में चर्चा की जाती है और जिस वस्तु का अस्तित्व अंसभव हो उस का स्वाभाविक रूप से कोई अस्तित्व नहीं होता इस लिए दर्शनशास्त्रियों ने अस्तित्व को बौद्धिक रूप से वाजिबुल वूजूद अर्थात आवश्यक अस्तित्व और मुमकेनुल वूजूद अर्थात संभव अस्तित्व जैसे दो प्रकारों में बॉटा है। वाजिबुल वूजूद या आवश्यक अस्तित्व उस अस्तित्व को कहते हैं जो स्वंय ही अस्तित्व में आया हो और उसे किसी अन्य अस्तित्व की आवश्यकता न हो और स्वाभाविक रूप से इस प्रकार का अस्तित्व अनन्त व निरंतर होगा क्योंकि किसी काल विशेष में किसी वस्तु का नष्ट हो जाना इस बात का चिन्ह होता है कि उस का अस्तित्व स्वंय उस से नहीं है और उसे अस्तित्व में आने के लिए किसी दूसरे अस्तित्व की आवश्कता होती है कि जो उस का कारक होता है और उस विशेष कारक के अस्तित्व पर उस का अस्तित्व और उस के न होने पर उस का न होना निर्भर है । मुमकिनुल वूजूद या संभव व निर्भर अस्तित्व उस अस्तित्व को कहते हैं जिस का अस्तित्व स्वंय उस के उपर टिका नहीं होता बल्कि उस के लिए किसी दूसरे कारक की आवश्यकता होती है ।

इस प्रकार की दशाओं को कल्पना के आधार पर वर्णित किया गया है बौद्धिक दृष्टि से अंसभव अस्तित्व का होना तो संभव नहीं है उसी प्रकार से जैसे तीन की संख्या चार से बड़ी नहीं हो सकती । किंतु कोई कारण नहीं है कि सृष्टि के अन्य अस्तित्वों में से अनिर्वाय व संभव अस्तित्व की पहचान हो सके दूसरे शब्दों में इस के लिए तीन दशाएं ही हो सकती हैं या यह कि जितने अस्तित्व हैं सब के सब आवश्यक और अनिवार्य हों या यह कि सारे अस्तित्व संभव हों और तीसरे यह कि कुछ अस्तित्व संभव हों और कुछ अनिवार्य ।

पहली व तीसरी दशा के आधार पर अनिवार्य अस्तित्व का होना सिद्ध होता है तो इस लिए अब इस दशा पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या यह संभव है कि सारे अस्तित्व संभव हों या नहीं ? या फिर इस विचार को रदद करने के बाद एक अनिवार्य अस्तित्व होना सिद्ध होता है भले ही उस के अन्य गुणों और विशेषताओं के लिए दूसरे तर्कों की आवश्यकता हो।

इस आधार पर दूसरी दशा को गलत सिद्ध करने के लिए हमें एक अन्य भूमिका का वर्णन करना होगा और वह यह है कि सारे अस्तित्व का मुमकेनुल वूजूद अर्थात संभव व निर्भर अस्तित्व होना बौद्धिक दृष्टि से असंभव है । क्योंकि संभव अस्तित्व के लिए किसी कारक की आवश्यकता होती है कारकों में कभी न समाप्त होने वाला क्रम बौद्धिक दृष्टि से अस्वीकारीय है तो फिर यह कारकों का क्रम किसी ऐसे अस्तित्व पर जाकर समाप्त होना चाहिए कि जो संभव अस्तित्व न हो और उसे अपने अस्तित्व के लिए किसी कारक की आवश्यकता न हो अर्थात वाजिबुल वूजूद या अनिवार्य अस्तित्व हो । जब चर्चा यहॉं तक पहुॅंचती है तो फिर दर्शन शास्त्र के कुछ दूसरे विषयों का उल्लेख भी आवश्यक हो जाता है।

## कारक व परिणाम

अगर किसी अस्तित्व को दूसरे की आवश्यकता हो और उस का अस्तित्व एक प्रकार से उस दूसरे अस्तित्व पर ही टिका हो तो दर्शन शास्त्र में जरूरत रखने वाले अस्तित्व को परिणाम और दूसरे को कारक कहते हैं किंतु कारक के लिए यह भी संभव है कि वह बिल्कुल से ही आवश्यकता मुक्त न हो बल्कि स्वंय भी उसे किसी अन्य कारक की आवश्यकता हो किंतु अगर कोई ऐसा कारक हो जिसे किसी अन्य कारक की आवश्यकता न हो तो वह महाकारक होगा और उसे किसी भी अन्य अस्तित्व की आवश्यकता नहीं होगी।

यहाँ तक तो आप कारक और परिणाम के आशय से परिचित हुए अब यहाँ से आगे हमें इस बात को स्पष्ट करना है कि प्रत्येक संभव अस्तित्व के लिए एक कारक की आवश्यकता होती है।

इस बात के दृष्टिगत कि संभव अस्तित्व स्वयतः अस्तित्व में नहीं आता बल्कि उस का अस्तित्व किसी एक अस्तित्व या कई अस्तित्वों पर निर्भर होता है क्योंकि यह बात स्पष्ट है कि जो भी गुण किसी विषय के लिए दृष्टि में रखा जाएगा तो उस का प्रमाण या तो वह स्वंय होगा या फिर किसी अन्य के द्वारा उसे प्रमाणित किया जाएगा उदाहरण स्वरूप हर वस्तु या तो स्ंवय प्रकाशमय है या किसी अन्य के प्रकाश से प्रकाशमय हुई है , या उदाहरण स्वरूप हर वस्तु या तो स्वयं तैलीय होती है या उसे दूसरी वस्तु अर्थात तेल द्वारा तैलीय किया जाता है । इस लिए यह संभव नहीं है कि कोई वस्तु न तो स्वंय प्रकाश व चिकनाहट रखती हो और न ही किसी अन्य वस्तु ने उसे प्रकाश व चिकनाहट प्रदान की हो किंतु फिर भी वह प्रकाशमय व चिकनी हो !

तो फिर किसी वस्तु का अस्तित्व या तो स्वंय उस पर निर्भर होता है या फिर उसे अस्तित्व देने वाला कोई दूसरा होता है इस आधार पर हर संभव अस्तित्व जो स्वयतः अस्तित्व में नहीं आया होता है वह किसी दूसरे अस्तित्व द्वारा अस्तित्व में आता है और उस कारक का परिणाम होता है और वास्तव में यह वही सिद्धान्त है कि हर संभव अस्तित्व के लिए एक कारक की आवश्यकता होती है।

किंतु कुछ लोगों ने यह समझ लिया कि कारक के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि हर अस्तित्व को कारक की आवश्यकता होती है तो फिर इस आधार पर उन का कहना है कि ईश्वर भी एक अस्तित्व है इस लिए उस का कारक भी कोई होना चाहिए ! यद्यपि उन्हों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि कारक सिद्धान्त में अस्तित्व के सभी प्रकारों की बात नहीं की गयी है बल्कि इस सिद्धान्त के अंतर्गत संभव व निर्भर अस्तित्व ही आते हैं जिन्हें किसी कारक की

आवश्यकता होती है बल्कि दूसरे शब्दों में हर निर्भर व आवश्यकता रखने वाले अस्तित्व को कारक की आवश्यकता होती है न कि हर अस्तित्व को ।

## कारकों की एक दूसरे पर निर्भरता संभव नहीं है

इस तर्क में यह विषय भी स्पष्ट होना आवश्यक है कि कारकों की श्रंखला को एक ऐसे अस्तित्व पर जाकर समाप्त होना चाहिए जो किसी कारक का परिणाम न हो अर्थात अनन्त तक कारकों की श्रंखला बौद्धिक रूप से संभव नहीं है इस प्रकार से अनिवार्य अस्तित्व की उपस्थिति जो स्वयतः अस्तित्व में आया हो और जिसे किसी कारक की आवश्यकता न हो सिद्ध हो जाती है।

दार्शनिकों ने कारकों में चक्रबद्ध निर्भरता को गलत सिद्ध करने के लिए बहुत से तर्क दिए हैं किंतु वास्तविकता यह है कि कारकों के संदर्भ में चक्रबद्ध निर्भरता का गलत होना लगभग एक स्पष्ट विषय है और थोड़े से विचार के बाद यह विषय स्पष्ट हो जाता है अर्थात इस बात के दृष्टिगत कि परिणाम का अस्तित्व कारक की उपस्थिति पर निर्भर होता है तो अगर हम यह मान लें कि यह स्थिति सारे अस्तित्वों के लिए है तो फिर कभी भी किसी भी अस्तित्व को सिद्ध करना संभव नहीं होगा क्योंकि ऐसे परिणामों के एक समूह की कल्पना जो एक दूसरे के कारक भी हों बौद्धिक दृष्टि से संभव ही नहीं है।

उदाहरण स्वरूप धावकों की एक टीम दौड़ने के लिए तैयार खड़ी है किंतु सब ने यह सोच रखा है कि जब तक दूसरा नहीं दौड़ेगा वह दौड़ना आंरभ नहीं करेगें तो अगर सारे धावक ऐसा ही सोच लें तो फिर उन में से कोई भी दौड़ना आरंभ नहीं करेगा ! इसी प्रकार अगर समस्त अस्तित्व की उपस्थिति किसी दूसरे अस्तित्व की उपस्थिति पर ही निर्भर हो तो फिर कोई भी अस्तित्व होगा ही नहीं किंतु हम अपनी आंखों से इतने सारे अस्तित्वों को देख रहे है तो फिर यह सिद्ध हुआ कि कोई एक ऐसा अस्तित्व है जो अन्य

समस्त अस्तित्वों से भिन्न है और उसे अपनी उपस्थिति के लिए किसी अस्तित्व की आवश्यकता नहीं है।

## तर्क की व्याख्या

अब इतनी सारी भूमिकाओं के बाद एक बार फिर हम ईश्वर के अनिवार्य अस्तित्व के लिए अपने तर्क पर पुनः विचार करेगें । जिस वस्तु को भी अस्तित्व का नाम दिया जा सकता हो उस के लिए दो ही दशाओं की कल्पना की जा सकती है। या अस्तित्व उस के लिए आवश्यक व अनिवार्य होगा और वह बिना किसी कारक की उपस्थिति के होगा जिसे वाजिबुल वूजूद या अनिवार्य व आत्मभू अस्तित्व कहा जाता है। या फिर उस के लिए अस्तित्व अनिवार्य नहीं होगा अर्थात वह हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है और ऐसे ही अस्तित्व को संभव व निर्भर अस्तित्व कहा जाता है। विदित है कि किसी वस्तु का होना असंभव हो तो फिर उस के अस्तित्व का प्रश्न ही नहीं उठता और उसे किसी भी स्थिति में अस्तित्व का नाम नहीं दिया जा सकता । इस लिए हर उपस्थित वस्तु या तो अनिवार्य अस्तित्व है या फिर संभव अस्तित्व । संभव व निर्भर अस्तित्व के अर्थ पर थोड़ा सा विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस वस्तु पर भी यह शब्द यर्थाथ होता है उस के लिए निश्चित रूप से किसी कारक की आवश्यकता होगी क्योंकि अगर कोई अस्तित्व स्वंयतः उपस्थित होने में सक्षम न हो तो फिर अनिवार्य रूप में उसे किसी कारक की आवश्यकता होगी और कारक व परिणाम के सिद्धान्त का मूल अर्थ भी यही है कि हर संभव अस्तित्व अर्थात जो स्वंय अस्तित्व में आने में सक्षम न हो उसे किसी कारक की आवश्यकता होती है न कि हर अस्तित्व को कारक की आवश्यकता होती है। इस लिए यह कहना कदापि सही नहीं है कि ईश्वर को भी किसी कारक की आवश्यकता होती है या यह भी कहना सही नहीं होगा कि ईश्वर पर विश्वास कारक व परिणाम के सिद्धान्त को तोड़ने के

समान है। दूसरी ओर यह भी स्पष्ट है कि अगर प्रत्येक अस्तित्व संभव अस्तित्व का स्वामी हो और सब को किसी कारक की आवश्यकता हो तो किसी भी अस्तित्व को सिद्ध करना संभव नहीं होगा ठीक उसी प्रकार जैसे कुछ लोगों का एक गुट हो और उस गुट का हर व्यक्ति कुछ करने के लिए दूसरे की प्रतीक्षा करे तो निश्चित रूप से सारे के सारे लोग प्रतीक्षा ही करते रह जाएगें इस प्रकार से इतने सारे अस्तित्व की उपस्थिति इस बात को सिद्ध करती है कि एक ऐसा अस्तित्व भी है जिसे अपने अस्तित्व के लिए किसी अन्य कारक अस्तित्व की आवश्यकता नहीं है और उस का अस्तित्व अनिवार्य है अर्थात वह वाजिबुल वुजूद व आत्मभू है।

## प्रश्न

1. स्वयंभू और संभव व निर्भर अस्तित्व की दाशार्निक व तार्किक परिभाषा करें ।

2. अनिवार्य और संभव अस्तित्व से आप क्या समझते हैं ।

3. अस्तित्व को संभव और अनिवार्य जैसी क़िस्मों में बॉटने की बौद्धिक रूप से कितनी दशाएं हो सकती है।

4. कारक और परिणाम की परिभाषा करें ।

5. कारक व परिणाम के सिद्धान्त का वर्णन करें ।

6. क्यों हर संभव अस्तित्व को कारक की आवश्यकता होती है ?

7. कारक व परिणाम के सिद्धान्त का क्या यह अर्थ है कि ईश्वर के लिए भी किसी कारक की आवश्यकता है ? क्यों ?

8 . क्या ऐसे ईश्वर पर विश्वास जिसे किसी ने जन्म न दिया हो कारक व परिणाम के नियम का उल्लंग्घन है ?

9 . कारकों में क्रम बद्ध चक्र क्यों असंभव है ?

10. इस तर्क का विस्तार पूर्वक वर्णन किजीए और यह बताइए कि इस से क्या सिद्ध होता है ।

आठवॉ पाठ

# ईश्वर के गुण

- भूमिका
- ईश्वर का अनन्त व सदा रहने वाला होना
- सृष्टि का मूल कारक
- सृष्टि के मूल कारक की विशेषताएं

## भूमिका

पिछले पाठों में यह बताया गया कि बहुत से दार्शनिक तर्कों का उद्देश्य अनिवार्य अस्तित्व को सिद्ध करना है और कुछ अन्य तर्कों द्वारा उस अनिवार्य अस्तित्व के लिए कुछ गुण आवश्यक और कुछ अवगुणों से उस की दूरी को सिद्ध किया जाता है जिस के बाद ईश्वर अपने विशेष गुणों के साथ पहचाना जाता है क्योंकि केवल उस का अनिवार्य अस्तित्व होना ही ईश्वर की पहचान के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि यह भी संभव है कि कोई यह सोचे कि उदाहरण स्वरूप कोई पदार्थ और ऊर्जा भी अनिवार्य अस्तित्व हो सकती है इस लिए एक ओर तो ईश्वर में कुछ अवगुणों का न होना सिद्ध करना आवश्यक है ताकि यह पता चल जाए कि अनिवार्य अस्तित्व अथवा सृष्टि का रचयता अपनी सृष्टि में पाए जाने वाली कमियों से दूर है और वह अपनी बनाई हुई किसी भी वस्तु के समान नहीं है और दूसरी ओर, उस में कुछ सदगुणों की उपस्थिति भी सिद्ध होना चाहिए ताकि यह स्पष्ट हो सके कि वह उपासना योग्य है और इस के साथ ही ईश्वरीय दूत प्रलय आदि जैसे दूसरे विश्वासों की भूमिका भी प्रशस्त हो सके ।

पिछले तर्क से यह समझ में आता है कि अनिवार्य अस्तित्व को , कारक की आवश्यकता नहीं होती और वह समस्त ब्रहमाण्ड का मूल कारक है। दूसरे शब्दों में : दो गुण अनिवार्य अस्तित्व के लिए सिद्ध हुए प्रथम उस का

समस्त अस्तित्वों से आवश्यकता मुक्त होना , क्योंकि अगर उसे किसी भी अन्य अस्तित्व की थोड़ी सी भी आवश्यकता होगी तो वह अन्य अस्तित्व उस का कारक हो जाएगा और हम यह कह चुके हैं कि दर्शनशास्त्र में कारक का अर्थ यह होता है कि उस की दूसरे अस्तित्व को आवश्यकता होती है । और दूसरा गुण यह सिद्ध हुआ कि संभव व निर्भर अस्तित्व रखने वाले अस्तित्व , उस अनिवार्य व स्वंयभू अस्तित्व का परिणाम होते हैं और सब को उस की आवश्यकता होती है और वह सारी सृष्टि की रचना का मूल कारक होता है ।

अब हम इन दोनों निष्कर्षों को दृष्टि में रखते हुए , उन के लिए आवश्यक वस्तुओं पर चर्चा करेगें और ईश्वर में कुछ विशेष गुणों की उपस्थिति और कुछ अवगुणों से उस की दूरी के बारे में चर्चा करेगें। यद्यपि इस प्रकार से सभी गुणों और अवगुणों के लिए दर्शन शास्त्र की किताबों में विभिन्न प्रकार से तर्को का वर्णन किया गया है किंतु यहॉ पर हम केवल उन्हीं तर्को का उल्लेख करेगें जिन को समझना अपेक्षाकृत सरल हो और जो हमारे प्राथमिक तर्क से अधिक निकट भी हों ।

## ईश्वर अनन्त है और सदैव से है

अगर कोई अस्तित्व किसी दूसरे अस्तित्व का परिणाम हो और उसे किसी अन्य अस्तित्व की आवश्यकता हो तो उस का अस्तित्व उस दूसरे अस्तित्व पर निर्भर होगा और उस के कारक के न होने की स्थिति में उस का अस्तित्व नहीं हो सकता और किसी भी कालखंड में किसी अस्तित्व का न होना इस बात का चिन्ह है कि उस अस्तित्व को दूसरे की आवशकता है और उस का अस्तित्व संभव व निर्भर अस्तित्व के दायरे में आता है और चूँकि अनिवार्य व स्वयंभू अस्तित्व स्वयतः अस्तित्व में आता है और उसे किसी अन्य कारक व अस्तित्व की आवश्यकता भी नहीं होती इस लिए वह सदैव रहेगा ।

इस प्रकार से , अनिवार्य अस्तित्व के लिए दो अन्य गुण सिद्ध हुए एक उस का अनन्त होना अर्थात अतीत में कभी भी ऐसा कोई क्षण नहीं था जब अनिवार्य अस्तित्व अर्थात ईश्वर उपस्थित नहीं था और दूसरा यह गुण कि वह सदैव रहेगा अर्थात भविष्य में भी कोई ऐसा क्षण नहीं आएगा कि जब वह न रहे इन दोनों गुणों को मिलाकर ईश्वर को सदा से और सदा रहने वाला अस्तित्व कहा जाता है ।

इस आधार पर जो भी अस्तित्व अतीत में न रहा हो या जिस के बारे में भविष्य में न होना सोचा जा सकता हो वह अनिवार्य अस्तित्व कदापि नहीं हो सकता और इस प्रकार से समस्त भौतिक अस्तित्वों का अनिवार्य अस्तित्व न होना सिद्ध होता है।

## अवगुणों का न होना

अनिवार्य अस्तित्व के लिए एक अन्य आवश्यक विशेषता यह है कि वह मिश्रण नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्येक मिश्रण को अपने अंशों की आवश्यकता होती है और अनिवार्य अस्तित्व अर्थात ईश्वर हर प्रकार की आवश्यकता से मुक्त है।

और यदि यह सोच लिया जाए कि अनिवार्य अस्तित्व के अंश , वर्तमान समय में उपस्थित नहीं होते बल्कि दो काल्पनिक रेखाओं की भॉति वास्तव में एक रेखा में हैं तो भी यह सोचना सही नहीं होगा , क्योंकि जिस वस्तु के कल्पना में ही सही, भाग या टुकड़े हों वह बौद्धिक दृष्टि से विभाजन योग्य होती है भले ही व्यवहारिक रूप से ऐसा संभव न हो और विभाजन की संभावना का अर्थ , अंत व विनाश होता है जैसा कि अगर एक मीटर की रेखा को काल्पनिक रूप से दो आधी आधी मीटर की रेखाओं में विभाजित कर दिया जाए तो फिर एक मीटर की रेखा का अस्तित्व ही नहीं रह जाएगा और हम पहले कह चुके हैं कि अनिवार्य अस्तित्व के लिए विनाश व अंत नहीं होता है ।

और चूँकि अंशों के मिश्रण से बनना, चाहे व अंश वर्तमान में हों या भविष्य में , पदार्थ की विशेषता होती है इस लिए यह सिद्ध होता है कि पदार्थ व भौतिकता के दायरे में आने वाला कोई भी अस्तित्व आत्मभू या अनिवार्य अस्तित्व नहीं हो सकता , और दूसरे शब्दों में , ईश्वर का शरीर व पदार्थ न होना सिद्ध होता है और यह भी स्पष्ट होता है कि महान ईश्वर आँखों से देखे जाने योग्य और किसी भी इंद्रियों से महसूस किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि महसूस किये जाने योग्य होना पदार्थ और शरीर की विशेषता है।

दूसरी ओर , पदार्थ व शरीर को नकारने से शरीर व पदार्थ के लिए आवश्यकता वस्तुओं जैसे स्थान , समय आदि की शर्त भी अनिवार्य अस्तित्व के लिए समाप्त हो जाती है क्योंकि स्थान उस वस्तु के लिए होता है जिस घनफल, विस्तार और आकार हो और इसी प्रकार समय की आवश्यकता रखने वाली हर वस्तु के लिए आयु और समय की दृष्टि से विभाजन संभव होता है जो एक प्रकार से मिश्रण और अंश होने के अर्थ मे है । इस आधार पर ईश्वर के लिए समय व स्थान की कल्पना नहीं की जा सकती और समय व स्थान की आवश्यकता रखने वाली कोई भी वस्तु अनिवार्य या स्वयंभू अस्तित्व अथवा ईश्वर नहीं हो सकती ।

अन्ततः अनिवार्य अस्तित्व के लिए समय की शर्त नकारने के साथ ही गतिशीलता , परिवर्तन और परिपूर्णता जैसी दशाएं भी उस के लिए समाप्त हो जाती हैं क्योंकि कोई भी गतिशीलता व परिवर्तन, समय के बिना संभव नहीं है।

इस आधार पर जो लोग ईश्वर के लिए स्थान जैसे आकाश आदि में विश्वास रखते हैं या ईश्वर के संबध में गति और आकाश से पृथ्वी पर उतरने जैसी बातें करते हैं या यह समझते हैं कि उसे आँखों से देखा जा सकता है ,

वह लोग वास्तव में ईश्वर को परिवर्तन व परिपूर्णता योग्य समझते हैं और उन्हों ने ईश्वर को ठीक से पहचाना ही नहीं है।[1]

कुल मिलाकर हर वह विशेषता जो कमी , सीमा और आवश्यकता का प्रतीक हो महान ईश्वर की विशेषता नहीं हो सकती और ईश्वर से अवगुणों को अलग रखने का अर्थ यही है।

## सृष्टि का मूल कारक

पिछले तर्क से दूसरा जो परिणाम सामने आता है वह यह है कि आत्मभु अस्तित्व , सभंव अस्तित्व की उत्पत्ति का कारक है। अर्थात आत्मभु अस्तित्व के बिना उस की कल्पना नहीं की जा सकती ।अब हम इस निष्कर्ष की समीक्षा करेगें और सर्वप्रथम , कारकों के प्रकार के बारे में संक्षिप्त सी चर्चा करेगें फिर ईश्वर के कारक होने का वर्णन करेगें ।

कारक का साधारण अर्थ हर उस अस्तित्व पर यथार्थ हो सकता है जिस के किसी पहलू पर किसी अन्य वस्तु का अस्तित्व टिका हुआ हो इसी लिए शर्तों और भूमिकाओं को भी कारक कहा जा सकता है। और ईश्वर के लिए किसी कारक के न होने का अर्थ यह है कि उस में किसी अन्य अस्तित्व पर किसी भी प्रकार की निर्भरता नहीं है और उस के अस्तित्व के लिए किसी शर्त व भूमिका की भी कल्पना नहीं की जा सकती ।

किंतु इस ब्रहमाण्ड के लिए ईश्वर के कारक होने का अर्थ यह है कि वही इस का रचयता है और वह विशेष प्रकार का कारक है। इस विषय को

---

[1] ईश्वर के लिए स्थान और आकाश से उतरने जैसे विश्वास सुन्नी समूदाय के कुछ लोगों और हेगल व बर्गसन व विलयम जोन्ज़ तथा वाइट हेड जैसे कुछ पश्चिमी दार्शनिकों द्वारा उल्लेख किये गये हैं किंतु यह जान लेना चाहिए कि ईश्वर में गतिशीलता व परिवर्तन को नकारने का अर्थ उस के लिए ठहराव को सिद्ध करना नहीं है बल्कि उस के अस्तित्व की स्थिरता के अर्थ मे है और स्थिरता परिवर्तन का विपरीत है किंतु ठहराव गतिशीलता में अक्षमता के अर्थ मे है ।

अधिक स्पष्ट करने के लिए हमें कारकों की क़िस्मों पर थोड़ी चर्चा करनी होगी।

हमें ज्ञात है कि पेड़ पौधों को उगने के लिए , बीज और अनुकूल मिट्टी व जलवायु आवश्यक होती है। इस के साथ ही एक भौतिक कारक या मनुष्य की उपस्थिति भी आवशकय है जो बीज को बोए और उस की सींचाई करे । और यह सारी चीजें कारक के परिभाषा के अनुसार पेड़ पौधों के उगने का कारक हैं ।

इन विभिन्न प्रकार के कारकों को विभिन्न आयामों के कई वर्गों में बॉटा जा सकता है। उदाहरण स्वरूप वह कारक जो परिणाम के अस्तित्व के लिए अनिवार्य होते हैं उन्हें वास्तविक कारक कहा जा सकता है और वह कारक जो परिणाम को बाक़ी रखने के लिए होते हैं उन्हें रखवाले कारक का नाम दिया जा सकता है और इसी प्रकार विकल्प वाले कारकों को वैकल्पिक कारक और अन्य कारकों को सीमित कारक का नाम दिया जा सकता है।

किंतु कारक की एक अन्य क़िस्म भी है जो पेड़ पौधे के उगने के लिए वर्णित समस्त कारकों से भिन्न होती है। इस प्रकार के कारक का उदाहरण आत्मा और उस की कुछ दशाओं में पाया जा सकता है। जब मनुष्य कोई काल्पनिक चित्र अपने मन में बनाता है या कोई काम करने का इरादा करता है तो काल्पनिक ढॉचा और इरादा नामक एक मानसिक घटना घटती है और उस का अस्तित्व आत्मा व मन के अस्तित्व पर निर्भर होता है। इस आधार पर , इरादे या संकल्प का कारक, मन व मस्तिष्क होता है। किंतु इस प्रकार का परिणाम उन परिणामों में से है जो अपने कारक से किसी भी दशा में अलग नहीं हो सकते और अपने कारक से हट कर उन की कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

इस के साथ ही मन व मस्तिष्क के कारक होने के लिए कुछ ऐसी शर्तें और दशाएं हैं जो उस के संभव अस्तित्व होने के कारण हैं । इस आधार पर , सृष्टि के लिए अनिवार्य अस्तित्व अर्थात ईश्वर का कारक होना , इरादे और

इसी प्रकार की अन्य मानसिक दशाओं के लिए आत्मा के कारक होने की तुलना में अधिक पूर्ण और श्रेष्ठ है और उस का उदाहरण अन्य कारकों में नहीं मिल सकता क्योंकि वह बिना किसी आवश्यकता के परिणाम को अस्तित्व में लाता है और उस परिणाम का पूरा अस्तित्व उसी महान कारक पर निर्भर होता है।

## रचयता कारक की विशेषताएं

उपरोक्त बातों के दृष्टिगत मूल कारक के लिए कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं पर ध्यान देना चाहिए ।

1. मूल कारक अथवा सृष्टि के रचनाकार को उन समस्त विशेषताओं का पूर्ण रूप से स्वामी होना चाहिए जो उस की सृष्टि व रचनाओं में हों ताकि प्रत्येक वस्तु को उस की क्षमता के अनुसार लाभ पहुँचा सके। यह स्थिति भूमिका प्रशस्त करने वाले और वातावरण उत्पन्न करने वाले कारकों की स्थिति से भिन्न है जो केवल परिणाम के परिवर्तन की परिस्थितियाँ तैयार करते हैं और आवश्यक नहीं होता कि उन में अपने उस विशेष परिणाम की विशेषताएं भी पाई जाती हों। उदाहरण स्वरूप आवश्यक नहीं है कि मिट्टी में पौधे की भी विशेषता मौजूद हो , या माता व पिता में अपनी संतान की विशेषताएं भी पाई जाती हों । किंतु इस सृष्टि की रचना करने वाले ईश्वर के लिए अपनी समस्त विशेषताओं के साथ साथ समस्त गुणों का सम्पूर्ण रूप में होना भी आवश्यक है। किंतु इस का अर्थ यह नहीं है कि उस में शरीर व पदार्थ जैसी विशेषताएं भी पाई जानी चाहिए क्योंकि यह सारी विशेषतायें सीमा व कमी का चिन्ह हैं और ईश्वर में कोई भी कमी नहीं हो सकती ।

## प्रश्न

1. ईश्वर की विशेषताओं की पहचान क्यों आवश्यक है?

2. इस पाठ में वर्णित तर्क के क्या परिणाम हैं?

3. ईश्वर का सदैव से सदैव तक होने का क्या अर्थ है?

4. किस प्रकार से यह सिद्ध किया जा सकता है कि ईश्वर मिश्रण नहीं है और उस के अंश नहीं हैं ?

5. ईश्वर के लिए शरीर न होने का क्या तर्क है ?

6. ईश्वर को क्यों नहीं देखा जा सकता?

7. किस तर्क के आधार पर ईश्वर के लिए स्थान व काल की कल्पना नहीं की जा सकती ?

8. क्या ईश्वर के लिए गतिशीलता व ठहराव की कल्पना की जा सकती है ? क्यों ?

9. कारकों के प्रकारों का वर्णन कीजिए ।

10. ब्रहमाण्ड के रचयता कारक की विशेषताओं का वर्णन करें ।

नवाँ पाठ

# व्यक्तिगत गुण

- भूमिका
- व्यक्तिगत व उपस्थित विशेषताएं
- जीवन
- ज्ञान
- शक्ति

## भूमिका

हम ने यह जाना कि ईश्वर कि जो इस सृष्टि का रचयता और मूल कारक है उस में सभी विशेषताएं और गुण सम्पूर्ण रूप में मौजूद हैं और वही सब को लाभ पहुँचाता है किंतु उस के गुणों और विशेषताओं में किसी प्रकार की कमी नहीं होती इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए यह उदाहरण दिया जा सकता है कि अध्यापक अपने ज्ञान से विद्यार्थियों को लाभान्वित करता है किंतु उस के ज्ञान में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं होती। यद्यपि ईश्वर द्वारा उस की रचनाओं को पहुँचने वाला लाभ इस उदाहरण से कहीं अधिक श्रेष्ठ व उच्च है और शायद इस संदर्भ में यह कहना बेहतर होगा कि यह सृष्टि ईश्वर की महानता का प्रकाश है जैसा कि कुरआन मजीद के सूरए नूर की आयत नंबर 35 में कहा गया है कि **ईश्वर आकाशों और पृथ्वी का प्रकाश है।**

ईश्वर के अनन्त गुणों के दृष्टिगत , हर वह विषय जो परिपूर्णता को दर्शाता हो और जिस के कारण किसी प्रकार की कमी की कल्पना न की जा सकती हो वह ईश्वर पर यर्थाथ होता है जैसाकि कुरआन मजीद की आयतों, ईश्वरीय दूतों और मागदर्शकों के कथनों और उन की प्रार्थनाओं में ईश्वर को प्रकाश , परिपूर्णता , सौन्दर्य , प्रेम, तेज, आदि जैसे नामों से पुकारा गया है किंतु दर्शन शास्त्र व इस्लामी वाद शास्त्र की किताबों में ईश्वरीय गुणों के नाम

से जिन विशेषताओं का उल्लेख किया जाता है वह कुछ निर्धारित विशेषताएं और गुण हैं जिन्हें दो भागों में बॉटा गया है अर्थात व्यक्तिगत गुण और तुलनात्मक गुण । इसी लिए सब से पहले हम इस विभाजन के बारे में कुछ बातें स्पष्ट करेगें फिर उन में से महत्वपूर्ण गुणों का उल्लेख करेगें ।

## व्यक्तिगत और तुलनात्मक गुण

ईश्वर के लिए जो गुण व विशेषताएं हैं वह या तो ऐसी हैं कि जो स्वंय ईश्वर से संबंधित हैं उदाहरण स्वरूव जीवन, ज्ञान व शक्ति आदि या फिर ऐसी विशेषताएं हैं जो एक प्रकार से ईश्वर और उस की रचनाओं के मध्य संबधं को दर्शाती हैं जैसे आजीविका प्रदान करने वाला , रचयता आदि । ईश्वर से संबंधित विशेषताओं को व्यक्तिगत और ईश्वर की रचनाओं और ईश्वर के मध्य संबधों को दर्शाने वाली विशेषताओं को तुलनात्मक गुण कहा जाता है।

इन दोनों प्रकारों में मुख्य अंतर यह है कि प्रथम प्रकार के गुण ईश्वर से संबंधित हैं किंतु दूसरे प्रकार के गुण ईश्वर और उस की रचनाओं के मध्य संबधं को दर्शाते हैं और इस प्रकार के सभी गुणों में ईश्वर और उस की रचनाओं दोनों को दृष्टिगत रखा गया है उदाहरण स्वरूप ईश्वर का रचयता होना । ईश्वर के इस गुण से उस की रचनाओं की उस पर निर्भरता का पता चलता है और ईश्वर व उस की रचनाएं एक साथ मिल कर इस गुण को जन्म देती हैं ।

ईश्वर की महत्वपूर्ण व्यक्तिगत विशेषताओं में जीवन , ज्ञान व शक्ति है। किंतु सुनने वाला , देखने वाला जैसी उस की विशेषताओं से अगर यह अर्थ निकाला जाए कि वह सुनने योग्य आवाजों का ज्ञाता है या यह कि वह देखने और सुनने में सक्षम है तो यह दोनों विशेषताएं उस की व्यक्तिगत विशेषताओं, ज्ञान व शक्ति से निकलती हैं और अगर सुनने और देखने का

आशय यह हो कि वह देख रहा है और सुन रहा है और इस से सुनी जाने वाली आवाज और देखी जाने वाली वस्तु तथा उस में संबधं का पता चलता हो तो फिर यह तुलनात्मक विशेषताओं का भाग होगीं ।

बहुत से बुद्धिजीवियों ने कथन और इरादे को भी ईश्वर की व्यक्तिगत विशेषताओं में गिना है किंतु इस संदर्भ में हम बाद में चर्चा करेगें ।

## ईश्वर की व्यक्तिगत विशेषताओं के प्रमाण

ईश्वर के लिए जीवन , शक्ति व ज्ञान को सिद्ध करने का सरलतम् मार्ग यह है कि जब किसी ईश्वरीय रचना के लिए इन गुणों को सिद्ध किया जाता है तो उस का अर्थ उस रचना या प्राणी की विशेषता और परिपूर्णता होता है तो फिर उस का परिपूर्ण रूप रचयता में होना चाहिए । क्योंकि ईश्वर की रचनाओं में मौजूद हर गुण ईश्वर की देन है और किसी वस्तु को देने वाला देने से पूर्व उस का स्वामी होता है तभी वह दूसरों को प्रदान करने में सक्षम होता है। यह संभव नहीं है कि वह जीवन की उत्पत्ति करे किंतु स्वंय जीवन से वंचित रहे या अपनी किसी रचना को ज्ञान व शक्ति तो प्रदान करे किंतु स्वंय अज्ञानी व शक्तिहीन रहे । इस प्रकार से ईश्वर की कुछ रचनाओं में इस प्रकार के गुणों का होना इस बात का प्रमाण है कि यह गुण उन के रचयता में सम्पूर्ण रूप से और बिना किसी कमी के पाए जाते हैं । दूसरे शब्दों में ईश्वर अनन्त जीवन , ज्ञान व शक्ति का स्वामी है । अब हम इस प्रकार के कुछ गुणों व विशेषताओं पर चर्चा कर रहे हैं।

## जीवन

जीवन का अर्थ जीवित रहना है और यह ईश्वर की रचनाओं में से दो प्रकार की रचनाओं के बारे में कहा जाता है।

एक पेड़– पौधों के बारे में जो फलते फूलते हैं और दूसरे प्राणियों व मनुष्य के बारे में कि जो बोध व इरादा रखता है किंतु पहला अर्थ जिन रचनाओं पर यथार्थ होता है उन में कमी का पता चलता है क्योंकि फलना फूलना और बढ़ना यह दर्शाता है कि जो बढ़ रहा है वह बढ़ने से पूर्व परिपूर्णता तक नहीं पहुँचा है और उस में कमी है जिसे वह बढ़ कर पूरी कर रहा है और यह परिपूर्णता की प्रक्रिया कुछ बाहरी कारकों के कारण हैं जिन के द्वारा उस में परिवर्तन आया है और धीरे धीरे वह अपने पूर्ण रूप व परिपूर्णता तक पहुँच रहा है । इस प्रकार की बातों की ईश्वर के लिए कल्पना नहीं की जा सकती जैसा कि हम ने पहले इस बारे में चर्चा की ।

जीवन का जो दूसरा अर्थ है वह वास्तव में , परिपूर्णता वाला एक अर्थ है हॉलाकि जिन रचनाओं पर यह अर्थ यर्थाथ होता है उन में कमियॉ व त्रुटियॉ भी पाई जाती हैं किंतु इस के अनन्त चरण को दृष्टिगत रखा जा सकता है उस चरण को जहॉ किसी प्रकार की कमी नहीं होगी। इसी प्रकार परिपूर्णता व अस्तित्व के बारे में सोचा जा सकता है।

मूल रूप से जीवन का वह अर्थ जिस के लिए ज्ञान और इरादे के साथ कर्ता क्षमता आवश्यक है उस के लिए पराभौतिक अस्तित्व की आवश्यकता होती है क्योंकि इस प्रकार के जीवन को यद्यपि जीवन व प्राण रखने वाले अस्तित्वों के लिए ही माना जाता है किंतु वास्तव में प्राण उन की आत्मा का विशेषण है और उन का शरीर आत्मा से संबधं के कारण , प्राणी होता है। दूसरे शब्दों में जिस प्रकार पदार्थ' व घनफल शरीर की विशेषता है उसी प्रकार से जीवन भौतिकता से अलग अस्तित्व की विशेषता है और इस विषय पर ध्यान देने से ईश्वर के जीवन का एक अन्य प्रमाण सामने आता है और वह यह है कि ईश्वर शरीर और भौतिकता से दूर है। जैसा कि पिछले पाठों में यह प्रमाणित हो चुका है और भौतिकता से दूर हर अस्तित्व अनिवार्य रूप से जीवन रखता है , तो फिर ईश्वर मूल रूप से जीवन रखता है।

## ज्ञान

ज्ञान का अर्थ अत्याधिक स्पष्ट विषयों में से है। हमारी दृष्टि में यह अर्थ जिन वस्तुओं पर यर्थाथ होता है वह सीमित और अपूर्ण हैं और इन विशेषताओं के साथ यह ज्ञान ईश्वर के लिए यर्थाथ नहीं होता । किंतु जैसा कि हम ने संकेत किया है बुद्धि इस विशेषता के लिए किसी ऐसे अस्तित्व के बारे में सोच सकती है जिस में कोई त्रृटि अथवा सीमा न हो और वह साक्षात ज्ञान हो और ईश्वर का ज्ञान ऐसा ही है ।

ईश्वर के ज्ञान को विभिन्न मार्गो से प्रमाणित किया जा सकता है जिन में एक मार्ग वही है जो ईश्वर के अन्य गुणों को प्रमाणित करने के लिए वर्णित हुआ है अर्थात चूँकि ईश्वर की रचनाओं में ज्ञान है तो फिर उस का सम्पूर्ण रूप उन रचनाओं के रचयता में होना आवश्यक है ।

दूसरा मार्ग इस सृष्टि की व्यवस्था व संतुलन पर चिंतन द्वारा संभव है और वह इस प्रकार से कि कोई भी वस्तु जितना अधिक सुव्यस्थित व सूक्ष्म होगी अपने रचयता के उतना ही अधिक ज्ञानी होने का प्रमाण होगी। जैसे कि किसी गूढ़ विषय पर लिखी गयी पुस्तक अपने लेखक के ज्ञानी होने का प्रमाण होती है। इस लिए ऐसा नहीं हो सकता कि किसी विषय पर लिखी गयी पुस्तक , जिस में भॉति भॉति की जानकारियॉ और ज्ञान हों या कोई ऐसी वस्तु जिस को बनाने के लिए अत्याधिक दक्षता व ज्ञान की आवश्यकता हो उसे देखकर कोई यह सोचे कि उस का बनाने वाला अज्ञानी है क्योंकि दर्शन शास्त्र की कोई किताब या किसी भी विषय पर लिखी गयी कोई किताब किसी अज्ञानी के बस की बात नहीं है तो फिर इस ब्रहमाण्ड के रचयता के बारे में कैसे यह सोचा जा सकता है कि उस के पास ज्ञान न हो ।

तीसरा मार्ग, दर्शन शास्त्र के गूढ़ तर्को द्वारा इस बात को सिद्ध करना है उदाहरण स्वरूप यह सिद्धान्त कि स्वाधीन व भौतिकता से परे हर अस्तित्व

ज्ञानी होता है। जैसा कि इस विषय से संबंधित पुस्तकों में इस पर विस्तार से चर्चा की गयी है ।

ईश्वरीय ज्ञान पर ध्यान वास्तव में एक महत्वपूर्ण विषय है और इस पर कुरआन मजीद में भी बार बार बल दिया गया है उदाहरण स्वरूप सूरए मोमिन की आयत नंबर 19 में वर्णित है : ईश्वर विश्वासघाती आँखों और दिलों के रहस्यों को जानता है ।

## शक्ति

वह कर्ता जो अपने काम अपने इरादे से करता है उस के बारे में कहा जाता है कि वह जो कर रहा है उस की उस में शक्ति है । इस आधार पर शक्ति का अर्थ होता है कर्ता में क्षमता का वह स्रोत जिस के आधार पर वह कोई काम कर सकता है और सृष्टि व अस्तित्व की दृष्टि से कर्ता जितना अधिक परिपूर्ण होगा उस में शक्ति भी उतनी ही अधिक होगी और निश्चित रूप से जिस अस्तित्व में अनन्त परिपूर्णताएं होंगी उस की शक्ति भी अनन्त होगी जैसा कि सूरए बक़रह की आयत नंबर 20 तथा अन्य कई आयतों में कहा गया है : ईश्वर हर काम की शक्ति रखता है ।

**यहॉ पर कुछ बातों का उल्लेख आवश्यक है :**

1. जो काम शक्ति से संबंधित होता है उस में होने की क्षमता आवश्यक है इस आधार पर जो काम स्वंय ही असंभव हो वह शक्ति व क्षमता के दायरे में नहीं आता और ईश्वर में हर काम की शक्ति होने का यह अर्थ नहीं है कि उदाहरण स्वरूप वह अपने जैसे दूसरे ईश्वर को भी जन्म दे सकता है क्योंकि जिसे कोई दूसरा जन्म दे वह ईश्वर नहीं हो सकता । या यह कि ईश्वर हर काम कर सकता है तो फिर वह 2 की संख्या को दो ही रखे किंतु

उसे 3 से बढ़ा दे या किसी की संतान को संतान ही रहने दे किंतु उसे उस के पिता से पहले जन्म दे दे ।

2. हर काम करने की शक्ति रखने का अर्थ यह नहीं है कि वह सारे काम करे भी बल्कि वह जो चाहता है उसे करता है और ईश्वर केवल अच्छे काम ही करता है जो कुछ लोगों के हित में होता है हालांकि वह गलत काम करने की भी शक्ति रखता है । आगामी पाठों में हम इस संदर्भ में अधिक विस्तार से चर्चा करेगें ।

3. यहाँ पर हम ने शक्ति की जो परिभाषा की है उस में अधिकार व इच्छा भी शामिल है और जिस प्रकार से ईश्वर में परम शक्ति होती है उसी प्रकार से उसे हर काम का परम अधिकार भी प्राप्त होता है और कोई भी कारक उसे किसी काम को करने पर विवश नहीं कर सकता और न ही उस पर दबाव डाल सकता है क्योंकि समस्त सृष्टि की शक्ति उसी की प्रदान की हुई है इस लिए वह अपनी ही प्रदान की हुई शक्ति द्वारा विवश नहीं हो सकता अर्थात उसे उसी की दी हुई शक्ति द्वारा विवश नहीं किया जा सकता और न ही उस पर दबाव डाला जा सकता है।

## प्रश्न

1. ईश्वर के बारे में कौन से विषयों को प्रयोग किया जा सकता है ?
2. ईश्वर के व्यक्तिगत और तुलनात्मक गुणों का वर्णन करें ।
3. व्यक्तिगत गुणों को सिद्ध करने का साधारण मार्ग किया है ?
4. जीवन के कितने अर्थ हैं और ईश्वर के बारे में कौन से अर्थ को प्रयोग किया जा सकता है ?
5. ईश्वर के जीवन पर कोई विशेष तर्क दीजिए ।
6. ईश्वरीय ज्ञान को तीन मार्गों से सिद्ध करें ।
7. शक्ति का अर्थ बताएं और ईश्वर की अनन्त शक्ति को सिद्ध करें ।
8. कौन से काम शक्ति के दायरे में नहीं आते ?
9. ईश्वर क्यों गलत और आलोचनीय काम नहीं कर सकता ?
10. ईश्वर के अपनी इच्छा के स्वामी होने का क्या अर्थ है ?

दसवॉं पाठ

# तुलनात्मक गुण

- भूमिका
- सृष्टि कर्ता होना
- पालनहार होना
- ईश्वर होना

## भूमिका

जैसा कि पिछले पाठ में कहा गया तुलनात्मक गुण उन गुणों को कहते हैं जो ईश्वर और मनुष्य के मध्य एक विशेष प्रकार के संपर्क को ध्यान में रख कर ईश्वर से विशेष किए जाएं उदाहरण स्वरूप सृष्टिकर्ता का अर्थ सृष्टि पर निर्भर होता है अर्थात सृष्टिकर्ता और सृष्टि के मध्य जो संबधं है उस पर ध्यान देने से सृष्टिकर्ता का अर्थ समझ में आता है और अगर ऐसा न होता अर्थात सृष्टि न होती तो सृष्टिकर्ता का क्या अर्थ होता है यह भी समझ में न आता ।

ईश्वर और उस की सृष्टि के मध्य जो संबधं हैं उस की कोई सीमा नहीं है किंतु एक दृष्टि से उन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहली क़िस्म उन संबंधों की है जो सीधे रूप से ईश्वर और इन्सानों के मध्य बनते हैं उदाहरण स्वरूप बनाना, पैदा करना आदि और दूसरी क़िस्म वह होती है जिस के लिए संबधं के प्रकार को भी ध्यान में रखना होता है उदाहरण स्वरूप आजीविका प्रदान करना। क्योंकि सब से पहले आजीविका प्राप्त करने वाले और जो चीज़ उसे मिल रही है उस में मौजूद संबंध पर ध्यान देना होगा ताकि आजीविका देने वाले का मतलब समझ में आ सके । बल्कि यह भी संभव है कि किसी विशेष काम को अल्लाह की ओर से बताने से पूर्व उसे कई अन्य वस्तुओं से संबंधित किया जाए और अंत में उसे अल्लाह से संबंधित बताया

जाए । या फिर ऐसा संबधं हो जो श्रंखला बद्ध हो और कई चरणों के बाद वह अल्लाह से संबंधित हो पाता हो उदाहरण स्वरूव पापों का क्षमा कर देना। गुनाहों को माफ कर देने वाले अल्लाह और उस के बन्दों के बीच इस प्रकार का संबधं उसी समय स्थापित हो सकता है जब उस से पूर्व यह माना जाए कि अल्लाह ने मनुष्य के लिए नियम बनाए हैं और उस पर चलने और न चलने वालों को दंड देने या न देने पर सक्षम है और नियम बनाना उस से संबंधित है जब कि उल्लंघन इन्सान की ओर से होता है जब यह सारी बातें ध्यान में रखी जाएगीं तब जाकर गुनाहों को माफ करने वाले अल्लाह और दासों के मध्य संबधं का सही अर्थ स्पष्ट होगा ।

इस चर्चा का निष्कर्ष यह निकला कि तुलनात्मक गुणों को समझने के लिए ईश्वर और उस के बन्दों के मध्य तुलना की जानी चाहिए और पैदा करने और पैदा होने वालों के मध्य जो संबंध है उस के प्रकार को भी समझना चाहिए ताकि एक ऐसा अर्थ स्पष्ट हो जो संबंधित दोनों पक्षों पर टिका हो तो फिर अगर हम इन सब बातों को ध्यान में न रखें तो ईश्वर के लिए किसी भी प्रकार का तुलनात्मक गुण समझ में नहीं आएगा और व्यक्तिगत व तुलनात्मक गुणों के मध्य यही सब से बड़ा अंतर है ।

यद्यपि जैसा कि हम ने पहले बताया संभव है तुलनात्मक गुणों को उन के स्रोतों के अनुसार दृष्टिगत रखा जाए इस स्थिति में उस का आधार व्यक्तिगत गुण ही होगें इस प्रकार कि अगर ख़ालिक़ अर्थात पैदा करने वाले का यह अर्थ निकाला जाए कि वह जो पैदा कर सकता है तो फिर इस गुण का आधार क़दीर अर्थात सक्षम होगा जो ईश्वर के व्यक्तिगत गुणों में से है । इसी प्रकार सुनने वाला और देखने वाला जैसे गुण भी यूँ तो तुलनात्मक गुणों में शामिल हैं किंतु अगर इस का मतलब यह निकाला जाए कि जो सुनने वाली वस्तुओं का ज्ञान रखता है या देखने वाले का यह अर्थ निकाला जाए कि वह देखने योग्य वस्तुओं का ज्ञान रखता है तो फिर यह दोनों गुण जानने वाले अथवा ज्ञानी में शामिल हो जाएगें ।

दूसरी ओर यह भी संभव है कि कुछ ऐसे अर्थ जो व्यक्तिगत गुणों में गिने जाते हैं तुलनात्मक गुणों में शामिल हों और अगर ऐसा होता है तो वह ईश्वर के व्यक्गित गुणों का भाग समझे जाएगें । जैसा कि कुरआन मजीद में ज्ञान विभिन्न स्थानों पर तुलनात्मक गुणों में शामिल किया गया है ।

यहाँ पर एक बात का उल्लेख आवश्यक है और वह यह कि जब ईश्वर और उस के बन्दों के बीच सपंर्क की कल्पना की जाती है और उस के आधार पर ईश्वर के लिए विशेष प्रकार के तुलनात्मक गुण निकलते हैं तो फिर वह तुलनात्मक गुण चूँकि एक ओर से भौतिक जीव से संबंधित होते हैं इस लिए उस में समय व काल जैसी भौतिक सीमाएं भी कल्पनीय होती हैं किंतु दूसरी ओर अर्थात उस का वह भाग जो ईश्वर से संबंधित होता है वह इस प्रकार की सभी सीमाओं और शर्तों से परे होता है ।

उदाहरण स्वरूप किसी को रोज़ी रोटी देने के लिए एक निर्धारित समय व स्थान की आवश्यकता होती है किंतु वास्तव में अगर देखा जाए तो यह सीमा देने वाले अर्थात ईश्वर के लिए नहीं होती बल्कि यह सीमाएं लेने वाले अर्थात भौतिक प्राणियों के कारण और उन्हीं के लिए होती है क्योंकि खुदा हर प्रकार की सीमा व पांबदी से परे है।

इस विषय पर बहुत ही अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है बल्कि यह विषय ईश्वर के कामों और गुणों की पहचान के मामले में सामने आने वाली बहुत सी समस्याओं के समाधान की कुंजी है और इस विषय पर विशेषज्ञों के मध्य मतभेद भी बहुत पाया जाता है।

## रचयता होना

इस बात के सिद्ध होने के बाद कि स्वयभूं अस्तित्व सभी अन्य अस्तित्वों का मूल कारक है और इस बात के दृष्टिगत कि पूरी सृष्टि को उस

की आवश्यकता है। स्वयंभू अस्तित्व अर्थात वाजिबुल वुजूद का रचयता होना और उस के अलावा हर वस्तु का रचना होना सिद्ध हो जाता है ।

किंतु कभी कभी उत्पत्ति या बनाना सीमिति अर्थ में भी प्रयोग किया जाता है और इस शब्द को केवल उन्हीं रचनाओं के लिए प्रयोग किया जाता है जो पहले से मौजूद किसी पदार्थ द्वारा बनाई जाती हैं और उस के विपरीत अर्थ के रूप में उन रचनाओं के लिए जिन का कोई भी रूप उन की उत्पत्ति व जन्म से पहले मौजूद नहीं था अविष्कार का शब्द प्रयोग किया जाता है तो फिर इस प्रकार से किसी वस्तु को अस्तित्व में लाने की दो क़िस्में हैं एक रचना करना दूसरे अविष्कार करना ।

प्रत्येक दशा में ईश्वर द्वारा किसी वस्तु को बनाना , साधारण मनुष्य द्वारा किसी वस्तु को बनाने की भाँति नहीं है । क्योंकि मनुष्य द्वारा किसी वस्तु की रचना के लिए गतिशीलता और हाथ पैर हिलाने की आवश्यकता होती है और शरीर के अंगों को प्रयोग करने के बाद जो प्रक्रिया होती है उसी को काम कहा जाता है । उस काम के बाद सामने आने वाली दशा को काम का परिणाम कहा जाता है। किंतु ईश्वर के लिए यह सारी भूमिकाएं नहीं होतीं क्योंकि ईश्वर गतिशीलता और भौतिक विशेषताओं से पवित्र होता है इसी लिए अगर रचना करने को ऐसा गुण मान लिया जाए जो ईश्वर में अलग से मौजूद है तो फिर वह किसी भी अन्य साधारण अस्तित्व की भाँति भौतिक हो जाएगा और भौतिक होने की दशा में स्वयं उसे बनाने वाले की आवश्यकता हो जाएगी जिस से वह अंसभव स्थिति पैदा हो जाएगी जिस का वर्णन इस से पहले हो चुका है । बल्कि जैसा कि हम ने तुलनात्मक गुणों के बारे में वर्णन के समय बताया था इस प्रकार के समस्त गुण ऐसे अर्थ होते हैं जो ईश्वर और उस की रचनाओं के मध्य संपर्क को ध्यान में रखने के बाद जन्म लेते हैं और यह संबधं बौद्धिक होता है जिस की कल्पना की जाती है ।

## पालनहार होना

ईश्वर और उस की रचना के मध्य जिन संबधों की कल्पना की जा सकती है उन में यह है कि ईश्वर की सृष्टि को न केवल यह कि अपने अस्तित्व के लिए ईश्वर की आवश्यकता होती है बल्कि उस के अस्तित्व के हर कण और आयाम को भी ईश्वर की आवश्यकता होती है और अस्तित्व को बाकी रखने के लिए उस में किसी भी प्रकार की स्वाधीनता नहीं पाई जाती, ईश्वर जिस प्रकार से चाहता है उस के अस्तित्व को प्रयोग करता और उस में बदलाव लाता है और उन के जीवन को चलाता है ।

जब हम इस संबधं को सामूहिक रूप से देखते हैं तो पालनहार का अर्थ स्पष्ट होता है जिस के लिए सूझ बूझ और सुशासन आवश्यक होता है उदाहरण स्वरूप सुरक्षा करना , जीवन व मृत्यू देना , रोज़ी रोटी देना , परिपूर्णता तक पहुँचाना , मार्गदर्शन करना और बुराईयों से रोकना तथा अच्छाईयों को बढ़ाना आदि कामों की ओर संकेत किया जा सकता है ।

ईश्वर पालन हार है उस की इस विशेषता के साथ दशाओं को दो भागों में बॉटा जा सकता है । एक यह कि वह इस सृष्टि का पालन हार है इस में पूरे ब्रहमाण्ड का प्रशासन और सब की आवश्यकताओं की पूर्ति करना बल्कि एक शब्द में विश्व का निर्देशन शामिल है और दूसरा भाग मार्गदर्शन के साथ पालन हार होना है जो वास्तव में बोध रखने वाली ईश्वरीय रचनाओं से विशेष होता है, जिस में ईश्वरीय दूतों को भेजना , ईश्वरीय ग्रंथों को भेजना तथा लोगों के लिए विशेष प्रकार के नियमों और आदेशों की रचना शामिल है ।

इस पूरी चर्चा से जो निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि ईश्वर के पालनहार होने का अर्थ यह है कि सृष्टि अपने सभी कामों के लिए ईश्वर पर निर्भर होती है और ईश्वर की रचनाओं की एक दूसरे पर जो निर्भरता नज़र आती है वह भी अन्ततः उसी एकमात्र व महान पालन हार पर जाकर समाप्त होती है और वही है जो अपनी कुछ रचनाओं को कुछ दूसरी रचनाओं द्वारा

चलाता है और रोज़ी लेने वालों को अपनी पैदा की हुई रोज़ी द्वारा जीवित रखता है और बोध रखने वाली अपनी रचनाओं को आंतरिक साधनों अर्थात बुद्धि व बोध तथा इन्द्रियों तथा बाह्य साधनों अर्थात ईश्वरीय दूतों और ग्रंथों द्वारा सही रास्ता दिखाता है।

रचनाकार और पालनहार के अर्थों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह दोनों अर्थ एक दूसरे के लिए आवश्यक हैं और यह हो नहीं सकता कि इस सृष्टि का रचनाकार कोई और हो और पालनहार कोई दूसरा बल्कि जिस ने इस सृष्टि की विभिन्न विशेषताओं के साथ रचना की है और उन्हें एक दूसरे पर निर्भर किया है वही उन की रक्षा भी करता है और वास्तव में पालनहार होने और प्रशासन व दूरदर्शिता का अर्थ ईश्वरीय रचनाओं की दशाओं और उन का एक दूसरे पर निर्भर होने से समझ में आता है ।

## ईश्वर होना

ईश्वर की ईश्वरीयता के बारे में बहुत अधिक चर्चा की गयी है इस संदर्भ में बहुत सी किताबें भी लिखी जा चुकी हैं । किंतु अरबी भाषा में इलाह या इलाह होने का अर्थ होता है वह अस्तित्व जो उपासना योग्य हो अर्थात जिस की उपासना की जा सकती हो ।

इस आधार पर उपासना योग्य होना और पूज्य होना ऐसा गुण है जिस के लिए मनुष्य द्वारा उपासना और पूजा को भी दृष्टिगत रखना होगा । हॉलाकि बहुत से लोग गलत और अवास्तविक वस्तुओं की उपासना करते हैं और उन्हें पूज्य मानते हैं किंतु वास्तव में जो उपासना और पूजा योग्य है वह वही है जिस ने सब को पैदा किया है और सब का पालनहार है । इसी लिए धर्म पर विश्वास की कम से कम सीमा यही है जहॉं तक ईश्वर में आस्था रखने वाले हर व्यक्ति को पहुॅंचना चाहिए अर्थात यह कि इस विश्वास के साथ कि ईश्वर स्वयंभू है उस का अस्तित्व किसी अन्य अस्तित्व का मोहताज नहीं है ,

उसी ने सब की रचना की है और उस के हाथ में सब कुछ है यह भी मानना आवश्यक है कि केवल वही उपासना योग्य है और इस्लाम में ला इलाहा इल्लल्लाह का अर्थ भी यही है अर्थात अल्लाह के अतिरिक्त कोई भी उपासना योग्य नहीं है।

**प्रश्न :**

1. तुलनात्मक व व्यक्तिगत गुणों के मध्य संबधं और उन की एक दूसरे पर निर्भरता  किस प्रकार है ?
2. किस आधार पर तुलनात्मक गुण के लिए समय व स्थान की शर्त होती है।
3. ईश्वर के रचयता होने के अर्थ का वर्णन करें और अविष्कारक और रचयता के मध्य अंतर को भी स्पष्ट कीजीए ।
4. पैदा करने वाला होने के अर्थ को ईश्वर की रचनाओं का अतिरिक्त गुण क्यों नहीं समझा जा सकता ।
5. पालनहार होने का क्या अर्थ है ?
6. पालनहार होने की दो दशाओं का वर्णन करें ।
7. रचयता और पालनहार होने के मध्य अनिवार्य संबधं की व्याख्या करें ।
8. उपासना योग्य होने और इस अर्थ का पालनहार व रचयता होने के अर्थ से संबधं बयान करें ।

ग्यारहवाँ पाठ

# अन्य तुलनात्मक गुण

- भूमिका
- संकल्प व इरादा
- सूझबूझ
- शब्द
- सत्यता

## भूमिका

ईश्वर से संबंधित  ज्ञान में एक अत्यन्त जटिल विषय ईश्वर का इरादा है  जिस पर विभिन्न आयामों से चर्चा की गयी है और विद्वानों में इस बारे में मतभेद भी पाया जाता है। उदाहरण स्वरूप इस बात में कि इरादा ईश्वर का व्यक्तिगत गुण है या तुलनात्मक ? या यह कि इरादा हमेशा से था और हमेशा रहेगा या फिर कभी नहीं था और बाद में हो गया और फिर कभी ऐसा समय भी आएगा जब ईश्वर का इरादा नहीं होगा ।

किंतु यहॉ पर यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस बारे में विस्तार से चर्चा यहॉ संभव नहीं है हम केवल इरादे के बारे में कुछ बातों को स्पष्ट करना ही पर्याप्त समझते हैं ।

## इरादा

आम बोलचाल में इरादे के कम से कम दो अर्थ होते हैं पहला अर्थ चाहना है और दूसरा कोई काम करने का संकल्प ।

पहला अर्थ बहुत व्यापक है और इस में वस्तुओं और अपने तथा दूसरों के कामों को चाहना  आदि जैसे अर्थ शामिल होते हैं किंतु दूसरा अर्थ केवल स्वंय मनुष्य के अपने काम के लिए ही प्रयोग होता है ।

इरादे का पहला अर्थ अर्थात चाहना , हॉलाकि मनुष्य के लिए , एक प्रकार की मनोदशा है किंतु बुद्धि इस की कमियों को दूर करके एक सामूहिक अर्थ निकाल सकती है जो अभौतिक बल्कि ईश्वर पर भी यर्थाथ हो सकता है। जैसा कि ज्ञान के बारे में भी हम यही काम कर सकते हैं। इस आधार पर प्रेम को जो ईश्वर के स्वयं अपने से प्रेम के अर्थ में भी प्रयोग हो सकता है, एक व्यक्तिगत गुण मान लें तो फिर अगर ईश्वर के इरादे का अर्थ , परिपूर्णता का प्रेम हो तो पहले चरण में यह ईश्वर की अनन्त परिपूर्णता से संबंधित होगा और उस के बाद के चरणों में अन्य रचनाओं की परिर्पूणता से संबंधित होगा वह भी इस दृष्टि से कि सारी रचनाएं उस की परिपूर्णता का प्रतीक हैं , इसे ईश्वर के व्यक्तिगत गुणों में गिना जा सकता है जो उसी की भॉति सदैव से रहने वाला और ईश्वर के अस्तित्व से संबंधित होता है ।

किंतु किसी काम को करने के अर्थ में इरादा , निश्चित रूप से तुलनात्मक गुण होता है कि जिस के लिए किसी घटना से संबंधित होने के कारण समय व स्थान आवश्यक होता है । जैसा कि कुरआन में भी इस अर्थ में इरादे को प्रयोग किया गया है । सूरए यासीन की आयत 82 में आया है :

उस का काम तो यह है कि जब वह किसी चीज़ का इरादा कर लेता है तो उस से कहता है हो जा और वह हो जाती है ।

किंतु इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि तुलनात्मक गुणों के ईश्वर के लिए मानने का यह अर्थ नहीं है कि इस से उस के अस्तित्व में किसी प्रकार का परिवर्तन होता है या उस पर किसी वस्तु का प्रभाव पड़ता है बल्कि इस का अर्थ यह होता है कि रचनाओं और ईश्वर के मध्य एक प्रकार का संबधं विशेष परिस्थितियों में स्थापित हो जाता है और इस संबधं से जो अर्थ निकलता है वह ईश्वर के लिए तुलनात्मक गुण हो जाता है।

इरादे के बारे में , इस संबधं की कल्पना की जाती है कि हर रचना को इस दृष्टि से अस्तित्व में लाया जाता है कि उस में परिपूर्णता व कोई अच्छाई निहित होती है तो फिर उस का अस्तित्व किसी विशेष काल व स्थान में या

विशेष परिस्थितियों में ईश्वरीय ज्ञान व कृपा का पात्र बनता है और उसे ईश्वर ने अपनी इच्छा से पैदा किया होता है न यह कि किसी ने उसे विवश किया हो । इस संबधं पर ध्यान देने से इरादे नाम का एक भिन्न अर्थ समझ में आता है कि जो एक सीमिति व भौतिक वस्तु से संबधं रखने के कारण सीमित व शर्तों वाला होता है और यही अतिरिक्त अर्थ भौतिक व घटना व अनेकता जैसी विशेषताएं रखता है क्योंकि सबंध दोनों पक्षों की दशाओं से प्रभावित होता है और किसी एक पक्ष का भौतिक होना संबधं को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त होता है।

## तत्वदर्शिता

ईश्वर के इरादे के बारे में जिन बातों का वर्णन हुआ उन के दृष्टिगत यह भी स्पष्ट हो गया कि यह इरादा असीमित रूप से किसी वस्तु को पैदा करने हेतु प्रयोग नहीं होता बल्कि मूल रूप से ईश्वर के इरादे से जो वस्तु संबंधित होती है वह पैदा होने वाली वस्तु की भलाई व हित का आयाम होता है। और चूंकि भौतिक वस्तुओं की बहुतायत , कुछ अन्य वस्तुओं के लिए नुकसान का कारण बनती है इस लिए ईश्वरीय कृपा के लिए यह आवश्यक होता है कि सारी वस्तुओं को कुछ इस प्रकार से पैदा किया जाए कि समस्त वस्तुओं की अधिक से अधिक भलाई और कम से कम नुकसान सुनिश्चित हो सके और इस प्रकार की कृपा व इस संबधं की कल्पना को तत्वदर्शिता कहा जाता है अन्यथा तत्वदर्शिता , रचनाओं के अस्तित्व से भिन्न कोई वस्तु नहीं है कि जो उन की उत्पत्ति में कोई भूमिका निभाए ईश्वरीय इरादे पर प्रभावी होने की तो बात ही दूर है ।

कुल मिलाकर यह निष्कर्ष निकला कि ईश्वर के समस्त काम उस के व्यक्तिगत गुणों जैसे ज्ञान व शक्ति व प्रेम व परिपूर्णता व भलाई से निकलते हैं इस लिए सदैव कुछ इस प्रकार से ईश्वर द्वारा किए जाते हैं कि उस में भलाई

का पहलू हो अर्थात अधिक से अधिक भलाई और कम से कम नुकसान हो और इस प्रकार के इरादे को तत्वदर्शितापूर्ण इरादा कहा जाता है और इसी ईश्वरीय दशा से उस का एक और गुण निकलता है जिसे तत्वदर्शी कहा जाता है और यह गुण भी अन्य तुलनात्मक गुणों की भाँति व्यक्तिगत गुणों की ओर ही पलटता है।

यद्यपि इस ओर भी ध्यान देना चाहिए कि हित को दृष्टि में रखते हुए कोई काम करने का यह अर्थ नहीं है कि हित ही ईश्वर का अंतिम उद्देश्य होता है बल्कि यह एक प्रकार से मूल लक्ष्य का अंश होता है और ईश्वरीय कार्यों का मूल लक्ष्य व्यक्तिगत परिपूर्णता का प्रेम है जिस के परिणाम स्वरूप उस में अपनी रचनाओं की परिपूर्णता का प्रेम भी होता है और इसी लिए कहा जाता है कि ईश्वरी कामों का मूल कारण उस का कर्ता होना है और ईश्वर , अपने अस्तित्व से भिन्न कोई लक्ष्य व उद्देश्य नहीं रखता किंतु अगर ऐसा माना जाए तो इस में और यह मानने में कोई विरोधाभास नहीं है कि ईश्वर अपनी रचनाओं की परिपूर्णता का भी आंशिक रूप से लक्ष्य रखता है । यही कारण है कि कुरआन मजीद में ईश्वरीय कामों का कारण वह चीजें बताई गयी हैं जो सब की सब रचनाओं की परिपूर्णता व भलाई का कारण बनती हैं जैसा कि परीक्षा लेना , सर्वश्रेष्ठ कर्म का चयन ईश्वर की उपासना करना और ईश्वर की विशेष व सदैव रहने वाली कृपा तक पहुँचना आदि मनुष्य की रचना के उद्देश्यों में से बताई गयीं हैं जो निश्चित रूप से एक दूसरे की भूमिका भी हैं ।

## ईश्वरीय शब्द

ईश्वर के लिए जिन कामों की कल्पना की जाती है उन में से एक बोलना और बात करना भी है और ईश्वरीय कथन और उस के बात करने का विषय प्राचीन काल से ही विद्वानों के मध्य विशेष रूप से चर्चा का विषय रहा है। अशाएरा मत में ईश्वर के कथन को उस का व्यक्गित गुण , जब कि

मोतज़ेला मत में उसे तुलनात्मक गुण कहा जाता है और इन दोनों मतों के मध्य मतभेद इस बात को लेकर बहुत अधिक है कि कुरआन जो कि ईश्वर का कथन है रचना है या नहीं ? और इसी विषय को लेकर इन दोनों गुटों ने एक दूसरे पर धर्म भ्रष्ट होने का आरोप भी लगाया !

ईश्वर के तुलनात्मक व व्यक्तिगत गुणों की जो परिभाषा की गयी है उस के दृष्टिगत बड़ी सरलता से यह समझा जा सकता है कि बोलना तुलनात्मक गुण है कि जिस की कल्पना के लिए उस के बारे में भी सोचना आवश्यक है जिस से बात की जा रही हो । वास्तव में , यह विषय ,उस ईश्वर के मध्य जो किसी को किसी वास्तविकता से अवगत कराना चाहता है तथा उस के मध्य जो उस वास्तविकता को समझता है एक प्रकार के सबंध की कल्पना से समझ में आता है । यद्यपि अगर बात करने का अर्थ कुछ और निकाला जाए उदाहरण स्वरूप बात करने की शक्ति और बात करने का ज्ञान तो फिर इस दशा में यह गुण भी व्यक्गित गुणों की सूचि में होगा जैसा कि कुछ अन्य तुलनात्मक गुणों के बारे में हम ने स्पष्ट किया है।

यद्यपि कुरआन इस अर्थ में कि कुछ शब्दों तथा मन व मस्तिष्क में मौजूद अर्थ या तेजस्वी व आध्यात्मिक वास्तविकता है , ईश्वरीय रचनाओं की सूचि में आता है । यद्यपि अगर कोई ईश्वर के व्यक्तिगत ज्ञान को कुरआन की वास्तविकता समझे तो फिर इस दशा में , इस का संबधं भी ज्ञान से होगा जो व्यक्तिगत गुणों में से है । किंतु इस प्रकार की बात कुरआन और ईश्वरीय कथन के बारे में प्रायः सोची नहीं जाती तथा इस प्रकार के विचारों से बचना चाहिए ।

## सत्यता

ईश्वरीय कथन और शब्द आदेश के रूप में हों तो वह मनुष्य के कर्तव्यों में से होते हैं और उस में सच और झूठ की कल्पना नहीं की जा सकती

किंतु अगर सूचना देने और अतीत व भविष्य की घटनाओं के बारे में हों तो फिर वह सच होते हैं जैसा कि कुरआन के सूरए निसा की आयत 87 में आया है : और बात में ईश्वर से सच्चा कौन होगा । तो फिर इस दशा में किसी के पास इन बातों को स्वीकार न करने का कोई बहाना नहीं होगा ।

ईश्वर के इस गुण को प्रमाणित करने के लिए एक मार्ग यह है कि ईश्वर का बात करना , मार्गदर्शन तथा मनुष्य को सही पहचान तक पहुँचाने के लिए ज्ञान व तत्वदर्शिता के आधार पर ईश्वर के पालनहार होने की दृष्टि से आवश्यक होता है और यदि इस बात की संभावना हो कि ईश्वरीय कथन झूठ भी हो सकता है तो फिर उस पर विश्वास ही नहीं किया जा सकता जिस से मनुष्य के मार्ग दर्शन का मूल लक्ष्य खतरे में पड़ जाएगा जो वास्तव में ईश्वर की तत्वदर्शिता के विपरीत होगा ।

**प्रश्न :**

1. ईश्वर का इरादा किस अर्थ में तुलनात्मक और किस अर्थ में व्यक्गित गुणों में से है ?

2. एक तुलनात्मक गुण के रूप में इरादे का अर्थ निकालने के लिए ईश्वर और उस की रचनाओं के मध्य किस प्रकार के संबधं की कल्पना करना आवश्यक है ?

3. ईश्वरीय इरादा किस प्रकार से घटना व भौतिक हो सकता है?

4. ईश्वरीय तत्वदर्शिता का वर्णन करें ।

5. तत्वदर्शिया का अर्थ किस प्रकार से निकलता है?

6. किस अर्थ में तत्व दर्शिता , और रचनाओं की भलाई व हित को सृष्टि का कारण समझा जा सकता है?

7 . ईश्वरीय कथन को स्पष्ट करें ।

8. ईश्वर के सच्चे होने का तर्कसंगत प्रमाण लाएं ।

बारहवाँ पाठ

# पथभ्रष्टता के कारणों की समीक्षा

- भूमिका
- कारण
- समाजिक कारण
- वैचारिक कारण
- पथभ्रष्टता के कारणों का निवारण

## भूमिका

पहले पाठ में , हम ने संकेत किया था कि आइडियालॉजी को ईश्वरीय व भौतिक जैसे दो भागों में बॉटा जा सकता है और इन दोनों विचार धाराओं के मध्य सब से अधिक महत्वपूर्ण मतभेद एक तत्वदर्शी व शक्तिशाली रचयता का अस्तित्व है कि जो ईश्वरीय आयडियालॉजी में मूल आधार है किंतु भौतिक विचार धारा में उस का इन्कार किया जाता है।

इस से पहले के पाठों में इस किताब की सीमा के अनुसार ईश्वर के अस्तित्व तथा उस के गुणों को प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है और अब हम इस मूल सिद्धान्त पर विश्वास बढ़ाने के लिए भौतिक विचार धारा की सक्षिंप्त चर्चा करेगें ताकि इस प्रकार से आध्यात्मिक विचार धारा प्रमाणित हो सके और भौतिक विचार धारा की कमजोरी भी स्पष्ट हो जाए इसी प्रकार चर्चा के दौरान भौतिक विचार धारा की कुछ मुख्य कमज़ोरियों पर भी प्रकाश डालेगें।

## पथभ्रष्टता के कारक

नास्तिकता और भौतिकवाद का इतिहास बहुत पुराना है और मौजूद प्रमाणों के अनुसार हॉलाकि हर काल और हर समाज में ईश्वर पर विश्वास रखने वाले सदैव मौजूद रहे हैं किंतु प्राचीन काल में भी ईश्वर का इन्कार करने वाले और इसी भौतिक संसार को सब कुछ समझने वाले लोग भी मौजूद

रहे हैं किंतु व्यापक रूप से धर्म विरोध या धर्म से दूरी का चलन 18 वीं शताब्दी में युरोप में आंरभ हुआ और धीरे धीरे पूरे विश्व में फैलता गया ।

हालॉकि यह प्रकिया गिरिजाघरों की सत्ता के विरोध और ईसाई धर्म के विरूद्ध संघर्ष से आंरभ हुई थी किंतु इस लहर ने अन्य धर्मों को भी अपनी लपेट में ले लिया और धर्म से दूरी की भावना पश्चिम में उद्योगिक व वैज्ञानिक विकास के साथ ही साथ अन्य देशों में भी पहुॅच गयी और हालिया शताब्दियों में मार्क्सवादी सामाजिक व आर्थिक विचार धारा के साथ मिल कर इस ने विश्व के कई क्षेत्रों को अपनी लपेट में लेकर मानवता के लिए एक त्रासदी का रूप धारण कर लिया ।

धर्म के विरोध की भावना के फैलने के बहुत से कारण हैं । इस लिए अगर हम सारे कारणों की समीक्षा करना चाहेगें तो उस के लिए एक अलग से किताब की आवश्यकता होगी किंतु यहॉ पर इन कारणों को तीन भागों में बॉट कर सामूहिक रूप से उन पर चर्चा की जा सकती है ।

### 1. मानसिक कारण

अर्थात वह भावनाएं जो संभवतः नास्तिक वाद और धर्म से दूरी के कारण के रूप में किसी मनुष्य में हो सकती हैं भले ही उसे इन भावनाओं के प्रभावों का अनुमान न हो । इस प्रकार की भावनाओं में सब से महत्वपूर्ण भोग विलास की चाहत और प्रतिबद्धता व कर्मठता से दूर रहने की भावना है । अर्थात एक ओर तो , अध्ययन व शोध का कष्ट विशेष कर ऐसे विषयों के बारे में जिन में इन्द्रियों द्वारा आभास किए जाने योग्य कोई आंनद नहीं होता इस बात का कारण बनता है कि आलसी लोग शोध व अध्ययन से दूर भागें और दूसरी ओर , पाश्विक स्वतंत्रता और अश्लीलता व दायित्वहीनता में रूचि , भी इस प्रकार के लोगों को ईश्वरीय विचार धारा से दूर रखती है। क्योंकि ईश्वरीय विचार धारा या दूसरे शब्दों में तत्वदर्शी ईश्वर पर विश्वास कई अन्य प्रकार की आस्थाओं व कर्तव्यों का आधार होता है जिन के लिए मनुष्य अपने

सभी कामों में कुछ सीमाओं व प्रतिबंधों को स्वीकार करने पर विवश हो जाता है और इस प्रकार के कर्तव्य और सीमाओं के कारण इन्हें स्वीकार करने वाला व्यक्ति कई अवसरों पर अपनी इच्छित वस्तु और मनचाहे काम को करने के लिए स्वतंत्र नहीं होता इसी लिए इस प्रकार की सीमाओं व प्रतिबंधों को स्वीकार करना, असीमित स्वतंत्रता की चाह रखने वालों को पसन्द नहीं होता। इसी लिए यह भावना बहुत से लोगों को अन्जाने में भी इस प्रकार से सभी दायित्वों से दूर भागने पर प्रोत्साहित और ईश्वर का इन्कार करने पर तैयार करती है।

धर्म से दूरी में दूसरे भी बहुत से मानसिक कारक प्रभावी होते हैं ।

**2. समाजिक कारक :**

कुछ समाजों में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि धार्मिक नेता किसी न किसी प्रकार से उन परिस्थितियों के लिए जिम्मेदार होते हैं । ऐसी परिस्थितियों में बहुत से लोग वैचारिक दृष्टि से कमज़ोर होते हैं और हर विषय की सही रूप से समीक्षा करने में सक्षम नहीं होते और न ही विभिन्न घटनाओं और परिवर्तनों के सही कारणों का पता लगा पाते हैं इसी लिए वे समाजिक परिवर्तनों और समस्याओं का कारण धार्मिक नेताओं के हस्तक्षेप को मानते हैं और विभिन्न समस्याओं का कारण धर्म को समझने लगते हैं , उन्हें लगता है कि धर्म पर आस्था ही समाजिक समस्याओं का कारण है इस लिए वे धर्म से दूर हो जाते हैं ।

इस प्रकार के कारकों को पुर्नजागरण के काल में युरोप में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । धार्मिक मामलों में गिरजाघरों के कर्ता धर्ता लोगो के गलत व्यवहार ईसाई धर्म और स्वंय धर्म से लोगों की दूरी का मुख्य कारण रहे हैं । इसी लिए इस प्रकार के कारकों पर ध्यान देना धार्मिक नेताओं के लिए अत्यन्त महव्वपूर्ण होता है उन्हें इस सदंर्भ में अपनी जिम्मेदारियो को अच्छी

तरह से समझना चाहिए अन्यथा उन की गलतियाँ समाज की पथभ्रष्टता का कारण बन सकती हैं ।

**3. वैचारिक कारक:**

अर्थात अंधविश्वास और वह आशंकाएं व संदेह जो लोगों के मन में उत्पन्न होते हैं या फिर दूसरों से इस प्रकार की बातें सुन कर कुछ लोग प्रभावित हो जाते हैं क्योंकि उन में वैचारिक शक्ति की कमी होती है जिस के कारण वे ईश्वर व धर्म संबधी संदेहों का उत्तर नहीं दे पाते और इस से उन के मन में कम से कम धर्म के प्रति शंका तो उत्पन्न ही हो जाती है।

इस प्रकार के कारकों को भी कई भागों में बाँटा जा सकता है उदाहरण स्वरूप , उन लोगों की शंकाएं जो हर वस्तु को महसूस करने में विश्वास रखते हैं या फिर वह शंकाएं जो अंधविश्वास का परिणाम होती हैं या फिर वह शंकाएं जो सही वर्णन न किए जाने और कमज़ोर प्रमाण व तर्क प्रस्तुत किए जाने के परिणाम स्वरूप मन में उत्पन्न होती हैं या फिर कुछ अप्रिय घटनाओं के परिणाम में उत्पन्न होने वाली शंकाएं जिन के बारे में यह सोचा जाता है कि वह ईश्वर के न्याय के विपरीत हैं । इसी प्रकार वैज्ञानिक अध्ययन जिन के बारे में यह सोचा जाए कि वह धार्मिक शिक्षाओं के विपरीत हैं या फिर वह शंकाएं जो क़ानूनी और राजनीतिक विषयों में धार्मिक शिक्षाओं के ओर से मन में उत्पन्न होती हैं।

कभी कभी दो या कई कारक , एक साथ मिल कर शंका व संदेह अथवा इन्कार और नास्तिकता का कारण बनते हैं जैसाकि विभिन्न प्रकार की मानसिक समस्याएं , शंका व सदेंह में वृद्धि का कारण बनती हैं जिस से अत्याधिक शंका व संदेह में ग्रस्त रहने की बीमारी जन्म लेती है और परिणाम स्वरूप रोगी , किसी भी प्रकार के तर्क व प्रमाण से संतुष्ट नहीं होता जैसा कि अपने कामों में अगर कोई इस रोग में ग्रस्त हो जाता है तो बार बार कोई काम करने के बाद भी उसे इस बात में संदेह ही रहता है कि उस ने वह काम सही

ढंग से किया है उदाहरण स्वरूप दसियों बार अपना हाथ धोता है किंतु उस के बावजूद उसे अपने हाथ के पवित्र होने का विश्वास नहीं होता हॉलाकि यह भी हो सकता है कि उस का हाथ अपवित्र रहा ही न हो ।

## भ्रष्टाचार के कारकों का निवारण

भ्रष्टाचार के कारकों की विविधता के दृष्टिगत यह तो स्पष्ट हो जाता है कि इन में से प्रत्येक कारक पर अंकुश लगाने के लिए विशेष शैली व मार्ग की आवश्कता है उदारहण स्वरूप मानसिक व नैतिक कारकों को सही प्रशिक्षण और उस से होने वाली हानियों की ओर ध्यान देकर समाप्त किया जा सकता है जैसा कि दूसरे और तीसरे पाठ में , धर्म की खोज की आवश्यकता और धर्म की ओर से लापरवाही के नुक़सानों के बारे में हम ने कुछ बातों का उल्लेख किया है ।

इसी प्रकार समाजिक कारकों के प्रभावों से बचने के लिए इस प्रकार के कारकों पर अकुंश लगाने के साथ ही साथ धर्म के गलत होने और उस धर्म के मानने वालों के व्यवहार के गलत होने के मध्य अंतर को स्पष्ट करना चाहिए किंतु प्रत्येक दशा में , मानसिक व समाजिक कारकों के प्रभावों पर ध्यान का , कम से कम यह लाभ होता है कि मनुष्य अंजाने में उस के जाल में फॅसने से सुरक्षित रहता है ।

इसी प्रकार वैचारिक कारकों के कुप्रभावों से बचने के लिए उचित मार्ग अपनाना चाहिए और अंधविश्वास और विश्वास में अंतर को स्पष्ट करते हुए धर्म की आवश्यकता व महत्व को सिद्ध करने के लिए ठोस तार्किक प्रमाणों को प्रयोग करना चाहिए और इस के साथ यह भी स्पष्ट करना चाहिए कि दलील व प्रमाण की कमज़ोरी निश्चित रूप से जिस विषय के लिए दलील व प्रमाण लाया गया हो , उस के गलत होने का प्रमाण नहीं है।

स्पष्ट है कि पथभ्रष्टता के सभी कारकों और उन पर अंकुश लगाने के मार्गों की समीक्षा का यह स्थान नहीं हैं इसी लिए यहॉ पर ईश्वर के इन्कार के कुछ वैचारिक कारणों और उन के निवारण को पर्याप्त समझा जाएगा ।

**प्रश्न :**

1. भौतिक विचार धारा की समीक्षा के क्या लाभ हैं ?

2. हालिया शताब्दियों में किस प्रकार ईश्वर के इन्कार के रुझान का चलन हुआ?

3. धर्म से मुँह मोड़ने के मानसिक कारण क्या हैं ?

4. इस के सामाजिक कारक क्या हैं ?

5. वैचारिक कारण और उस की शाखाओं का वर्णन करें ।

6. अत्याधिक शंका किस प्रकार होती है ?

7. पथभ्रष्टता के कारकों पर अकुंश लगाने का क्या तरीका है ?

तेरहवाँ पाठ

# कुछ शंकाओं का निवारण

- महसूस न होन वाले अस्तित्व पर विश्वास
- ईश्वर पर विश्वास में अज्ञानता व भय की भूमिका
- क्या मूल कारक का सिद्धान्त सामूहिक है
- सामाजिक विज्ञान की उपलब्धियाँ

## एक अनदेखे अस्तित्व पर विश्वास

ईश्वर के बारे में एक साधारण आपत्ति यह की जाती है कि किस प्रकार से किसी ऐसे अस्तित्व की उपस्थिति पर विश्वास किया जा सकता है जिसे इन्द्रियों द्वारा महसूस नहीं किया जा सकता ?

यह शंका , प्रायः कम गहराई से सोचने वाले लोगों में पैदा होती है किंतु कुछ वैज्ञानिक भी इस प्रकार की शंका प्रकट करते हैं यद्यपि यह वह लोग होते हैं जो इन्द्रियों से महसूस किए जाने के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं और हर उस अस्तित्व का इन्कार करते हैं जिसे वह इन्द्रियों से महसूस न कर सकते हों या फिर कम से कम उसे निश्चित पहचान के योग्य नहीं समझते ।

इस शंका का निवारण इस प्रकार से किया जा सकता है कि इन्द्रियों द्वारा आयाम व व्यास रखने वाले अस्तित्वों और वस्तुओं को छू कर महसूस किया जा सकता है और हमारी सारी इन्द्रियाँ विशेष परिस्थितियों में अपने से अनुकूल भौतिक वस्तुओं को महसूस करती हैं। जिस प्रकार से यह नहीं सोचा जा सकता कि ऑख , आवाज़ों को सुनें या कान रंगों को देखे उसी प्रकार यह भी नहीं सोचा जा सकता कि हमारी इन्द्रियों बहमाण्ड की सारी रचनाओं को महसूस कर सकें ।

क्योंकि पहली बात तो यह है कि स्वंय भौतिक वस्तुओं में भी बहुत सी ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें इन्द्रियों द्वारा महसूस नहीं किया जा सकता जैसा कि

हमारी इन्द्रियाँ पराकांसनी किरणों को या चुंबकीय लहरों को महसूस करने में सक्षम नहीं हैं ।

दूसरी बात यह कि हम बहुत सी वास्तविकताओं को विदित रूप से मौजूद इन्द्रियों से हट कर महसूस करते हैं और उन के अस्तित्व पर विश्वास भी रखते हैं हॉलाकि उन्हें इन्द्रियों द्वारा महसूस नहीं किया जा सकता । उदाहरण स्वरूप डर व प्रेम की दशा , या हमें अपने इरादों और संकल्पों के बारे में विश्वास होता है और पता होता है कि हमारा क्या इरादा है किंतु यह मानसिक अवस्था आत्मा की ही भॉति इन्द्रियों द्वारा महसूस किए जाने योग्य नहीं है और मूल रूप से स्वंय महसूस करना भी एक मानसिक और इन्द्रियों के कार्य क्षेत्र से बाहर की प्रकिया है।

इस प्रकार से प्रमाणित हुआ कि विदित रूप से हमारी इन्द्रियों से अगर किसी वस्तु को महसूस करना संभव नहीं है तो इस का मतलब कदापि यह नहीं होगा कि वह वस्तु मौजूद ही नहीं है या यह कि उस का अस्तित्व कठिन है

## ईश्वर पर विश्वास में भय व अज्ञानता की भूमिका

कुछ समाजशास्त्री यह शंका भी पेश करते हैं कि ईश्वर पर विश्वास और धर्म पर आस्था वास्तव में खतरों से डर विशेषकर भूकंप आदि जैसी प्राकृतिक आपदाओं से भय के कारण होता है और वास्तव में मनुष्य ने अपने मन की शांति के लिए ईश्वर नाम के एक काल्पनिक अस्तित्व को गढ़ लिया है और उस की उपासना भी करने लगा है । और इसी लिए जैसे जैसे प्राकृतिक आपदाओं के कारणों और उन के खतरों से निपटने के मार्ग स्पष्ट होते जाएगें ईश्वर पर आस्था में भी कमी आती जाएगी ।

मार्क्सवादियों ने इस शंका को बहुत अधिक बढ़ा चढ़ा कर पेश किया है और इसे अपनी पुस्तकों में समाज शास्त्र की एक उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत किया है और इसी विचार धारा से अज्ञान लोगों को बहकाते भी हैं ।

इस के उत्तर में कहना चाहिए :

प्रथम यह कि इस शंका का आधार कुछ समाज शास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत धारणा है और इस के सही होने का कोई तार्किक प्रमाण मौजूद नहीं है ।

दूसरे यह कि इसी काल में बहुत से बुद्धिजीवी जिन्हें दूसरों से कई गुना अधिक विभिन्न प्राकृतिक खतरों के कारणों का ज्ञान था , ईश्वर के अस्तित्व पर पूरा विश्वास रखते थे। उदाहरण स्वरूप आइन्स्टाइन, क्रेसी मोरिस,एलेक्सिस कार्ल आदि जैसे महान वैज्ञानिक व विचारक जिन्हों ने ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए कई किताबें और आलेख लिखे हैं इस लिए यह कहना गलत है कि ईश्वर पर विश्वास भय का परिणाम होता है।

तीसरी बात यह कि अगर कुछ प्रकृतिक घटनाएं या कुछ प्रकृतिक घटनाओं के कारणों से अज्ञानता , मनुष्य को ईश्वर की ओर आकृष्ट करे तो इस का यह अर्थ कदापि नहीं निकालना चाहिए कि ईश्वर मनुष्य के डर व अज्ञानता की पैदावार है । जैसा कि बहुत से वैज्ञानिक शोधों व अविष्कारों के पीछे आनंद , ख्याति व धन प्राप्ति जैसी भावनाएं होती हैं किंतु अविष्कार पर इन भावनाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

चौथी बात यह कि अगर कुछ लोगों ने ईश्वर को कुछ ऐसी प्राकृतिक घटनाओं का जिम्मेदार समझते हुए उस पर विश्वास किया है कि जिस के कारणों का पता नहीं था किंतु बाद में जब उन घटनाओं के प्राकृतिक कारणों का पता चला तो उन का ईश्वर पर से विश्वास उठ गया या कम हो गया तो इसे उन लोगों के विश्वास की कमज़ोरी समझना चाहिए न कि ईश्वर के अस्तित्व के बारे में शंका ग्रस्त होने का कारण । क्योंकि वास्तविकता यह है कि प्राकृतिक घटनाओं का जिस प्रकार से ईश्वर जिम्मेदार है वह उन घटनाओं के प्राकृतिक कारणों से बिल्कुल भिन्न है। बल्कि वह सामूहिक रूप से हर भौतिक , मानसिक व आध्यात्मिक घटना और परिवर्तन का मूल कर्ता है

इस लिए प्राकृतिक कारणों के बारे में ज्ञान या अज्ञान का , ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने अथवा उस के नकारने में कोई महत्व नहीं है।

## क्या एकमात्र कर्ता का सिद्धान्त एक सर्वव्यापी सिद्धान्त है ?

एक अन्य शंका जो कुछ पश्चिमी बुद्धिजीवी पेश करते हैं यह है कि अगर यह सिद्धान्त , कि हर अस्तित्व के लिए एक कारक की आवश्यकता है सर्वव्यापी है तो फिर यह सिद्धान्त ईश्वर के लिए भी यथार्थ होगा और उस के लिए भी किसी कारक की आवश्यकता होगी जब कि कहा यह जाता है कि वह मूल कारक है और उस के लिए कोई कारक नहीं है । इस प्रकार से बिना कारक के ईश्वर को स्वीकार करना कारक सिद्धान्त का इन्कार है और कारक सिद्धान्त के सर्वव्यापी होने के विपरीत है और अगर हम कारक के सिद्धान्त के सर्वव्यापी होने को स्वीकार न करें तो फिर एक मूल कारक के अस्तित्व को इस सिद्धान्त द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता । क्योंकि इस दशा में यह भी कहा जा सकता है कि मूल पदार्थ और ऊर्जा , स्वयतः और बिना किसी कारक के अस्तित्व में आई है और उस में आने वाले परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप इस सृष्टि की रचना हो गयी। यह शंका , जैसा कि सातवें पाठ में बताया गया , कारक सिद्धान्त की गलत व्याख्या के कारण उत्पन्न होती है । अर्थात वे ऐसा समझते हैं कि मूल सिद्धान्त यह है कि कर वस्तु को कारक की आवश्यकता है , जब कि सही वाक्य यह है कि हर निर्भर अस्तित्व या संभव अस्तित्व के कारक की आवश्यकता है। और इस सिद्धान्त के दायरे से कोई बाहर नहीं है किंतु यह कहना कि कोई पदार्थ या ऊर्जा बिना कारक के , अस्तित्व में आ गयी है और उस में आने वाले परिवर्तन, ब्रहमाण्ड की अन्य वस्तुओं के जन्म लेने का कारण बनें , कई आयामों से आपत्तिजनक है जिस की आगामी पाठों में विस्तार से समीक्षा की जाएगी।

## वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

एक शंका यह भी है कि विश्व और मनुष्य के रचयता के अस्तित्व पर विश्वास , कुछ वैज्ञानिक तथ्यों से मेल नहीं खाता । उदाहरण स्वरूप रसायन शास्त्र में , यह सिद्ध हो चुका है कि पदार्थ और ऊर्जा की मात्रा सदैव स्थिर रहती है तो इस आधार पर कोई भी वस्तु , न होने , से अस्तित्व में नहीं आती और न ही कोई वस्तु कभी भी सदैव के लिए नष्ट होती है , जब कि ईश्वर को मानने वालों का कहना है कि ईश्वर ने सृष्टि की रचना ऐसी स्थिति में की कि जब कुछ भी नहीं था। इसी प्रकार जीव विज्ञान में यह सिद्ध हो चुका है कि समस्त जीवित प्राणी , निष्प्राण वस्तुओं से अस्तित्व में आए हैं और धीरे धीरे परिपूर्ण होकर जीवित हो गये हैं यहॉ तक कि मनुष्य के रूप में उन का विकास हुआ है किंतु ईश्वर के मानने वालों का विश्वास है कि ईश्वर ने सभी प्राणियों को अलग अलग बनाया है ।

**इस के उत्तर में कहना चाहिए :**

पहली बात तो यह है कि पदार्थ और ऊर्जा का नियम एक वैज्ञानिक नियम के रूप में केवल उन्हीं वस्तुओं के बारे में मान्य है जिन का विश्लेषण किया जा सकता हो और उस के आधार पर , इस दार्शनिक विषय का कि क्या पदार्थ और ऊर्जा सदैव से हैं और सदैव रहेगें या नहीं उत्तर नहीं ढूंढा जा सकता । दूसरी बात यह कि ऊर्जा और पदार्थ की मात्रा का स्थिर रहना और सदैव रहना , इस अर्थ में नहीं है कि उन्हें किसी रचयता की आवश्यकता ही नहीं है बल्कि ब्रहमाण्ड की आयु जितनी अधिक होगी उतनी ही अधिक उसे किसी रचयता की आवश्यकता होगी क्योंकि रचना के लिए रचयता की आवश्यकता का मापदंड ,उस के अस्तित्व में आवश्यकता का होना है न उस रचना का घटना होना और सीमित होना ।

दूसरे शब्दों में : पदार्थ और ऊर्जा ,विश्व के भौतिक कारक को बनाती हैं , उन का कारण नहीं , और पदार्थ और ऊर्जा को स्वंय ही कर्ता की

आवश्कयता होती है। तीसरी बात यह कि ऊर्जा व पदार्थ की मात्रा के स्थिर होने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि नयी वस्तुएं पैदा नहीं हो सकती और उन में वृद्धि या कमी नहीं हो सकती और इसी प्रकार आत्मा , जीवन , बोध और इरादा आदि पदार्थ और ऊर्जा नहीं हैं कि उन में कमी या वृद्धि को पदार्थ व ऊर्जा से संबंधित क़ानून का उल्लंघन समझा जाए।चौथी बात यह कि वस्तुओं के विकास के बाद उन में प्राण पड़ने का नियम, हॉलाकि अभी बहुत अधिक विश्वस्त नहीं है और बहुत से बड़े वैज्ञानिकों ने इस का इन्कार किया है , ईश्वर पर विश्वास से विरोधाभास नहीं रखता और अधिक से अधिक यह नियम जीवित प्राणियों में एक प्रकार के योग्यतापूर्ण कारक के अस्तित्व को सिद्ध करता है , उन का विश्व के रचयता से कोई संबधं होना इस से कदापि सिद्ध नहीं होता । उस का प्रमाण यह है कि इसी नियम का समर्थन करने वाले बहुत से लोग , इस सृष्टि और मनुष्य के लिए एक जन्मदाता के अस्तित्व में विश्वास रखते थे और रखते हैं ।

**प्रश्न :**

1. हर वस्तु को महसूस करने का रुझान और महसूस न की जाने वाली वस्तुओं का इन्कार क्यों सही नहीं है ?

2. कुछ समाजशास्त्रियों का यह कहना कि ईश्वर पर विश्वास मनुष्य के भय व अज्ञानता के कारण है क्यों सही नहीं है ?

3. क्या ईश्वर पर विश्वास, कारक के मूल सिद्धान्त से विरोधाभास रखता है ? क्यों?

4.क्या पदार्थ और ऊर्जा के अस्तित्व का नियम इस सृष्टि के लिए किसी रचयता के अस्तित्व में विश्वास से विरोधाभस रखता है ? क्यों ?

5. क्या विकसित होने का विचार ईश्वर पर विश्वास के उलट है ? क्यों ?

चौदहवॉ पाठ

# भौतिक विचार धारा और समीक्षा

- भौतिक विचार धारा के सिद्धान्त
- पहले सिद्धान्त की समीक्षा
- दूसरे सिद्धान्त की समीक्षा
- तीसरे सिद्धान्त की समीक्षा
- चौथे सिद्धान्त की समीक्षा

## भौतिक विचार धारा के सिद्धान्त

भौतिक विचारधार के कुछ सिद्धान्त इस प्रकार हैं :

पहला यह कि सृष्टि, पदार्थ और भौतिकता के समान है और उस वस्तु के अस्तित्व को स्वीकार किया जा सकता है जो पदार्थ और घनफल रखती हैं अर्थात लंबाई चौड़ाई और व्यास रखती हो । या फिर पदार्थ की विशेषताओं में से हो और उस पदार्थ की भॉति मात्रा रखती हो और विभाजन योग्य हो । इसी सिद्धान्त के आधार पर भौतिकता व पदार्थ से परे एक अस्तित्व के रूप में ईश्वर पर विश्वास नहीं किया जाता।

दूसरे यह कि पदार्थ , सदैव से था और सदैव रहेगा और उसे पैदा नहीं किया जा सकता और उसे किसी कारक की आवश्यकता नहीं है , और वहीं स्वयभूं अस्तित्व है।

तीसरे यह कि सृष्टि के लिए , एक अंतिम गंतव्य और लक्ष्य की कल्पना नहीं की जा सकती क्योंकि इस का कोई बोध व इरादा रखने वाला कर्ता नहीं है कि जिस का कोई लक्ष्य व उद्देश्य हो ।

चौथा यह कि पदार्थ के अतिरिक्त विश्व की सभी वस्तुएं पदार्थ के कणों के स्थानान्तरण और एक दूसरे पर उन के प्रभाव के कारण अस्तित्व में आती हैं इस आधार पर पूर्व की प्रक्रिया को आगामी प्रक्रिया के लिए एक प्रकार की तैयारी व तत्परता के रूप में देखा जा सकता है और अधिक से अधिक एक मूल कारक के अस्तित्व को भौतिक संसार में ही स्वीकार किया जा सकता है

उदाहरण स्वरूप वृक्ष , फलों का प्रकृतिक कारक है या रसायनिक व भौतिक प्रकियाओं को उन के कारकों का परिणाम समझा जा सकता है किंतु किसी भी प्रकिया के लिए ईश्वरीय कारक की आवश्यकता नहीं होती ।

पॉचवें सिद्धान्त को भी पिछले सिद्धान्तों में शामिल किया जा सकता है कि जो पहचान के बोध से सबंधित है और एक दृष्टि से , अन्य सभी सिद्धान्तों से पहले है और वह यह है : केवल उसी पहचान को मान्य समझा जा सकता है जो बोध द्वारा अनुभव के बाद प्राप्त हुई हो और चूँकि इस प्रकार के अनुभव और प्रयोग केवल भौतिकता व पदार्थ के अस्तित्व को ही सिद्ध करते हैं इस लिए किसी भी अन्य वस्तु के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

किंतु इस सिद्धान्त का गलत होना पिछले पाठ में सिद्ध हो चुका है और दोबार इस की समीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती इस लिए हम अन्य सिद्धान्तों की समीक्षा करेगें ।

## पहले सिद्धान्त की समीक्षा

यह भौतिकवादी विचार धारा का मूल सिद्धान्त समझा जाता है किंतु वास्तव में एक निराधार दावे के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है और किसी भी प्रकार से भौतिकता से परे वास्तविकताओं को नकारने का कोई प्रमाण पेश नहीं किया जा सकता विशेष कर मेटिरियालिज़्म के आधार पर कि जो प्रयोग और बोध पर आधारित होता है। क्योंकि स्पष्ट है कि कोई भी प्रयोग भौतिकता से परे की वास्तविकताओं के बारे में कुछ स्पष्ट करने में सक्षम नहीं होता और नहीं इस संदर्भ में किसी वास्तविकता को नकारने या उसे प्रमाणित करने पर सक्षम होता है और हर वस्तु को महसूस किए जाने के तर्क के आधार पर अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि इस के आधार पर भौतिकता से परे की वास्तविकताओं को प्रमाणित नहीं किया जा सकता इस लिए कम से कम उस की संभावना को स्वीकार किया जा सकता है । इस से पूर्व हम ने

संकेत किया है कि मनुष्य बहुत सी वस्तुओं को , जो भौतिक गुण नहीं रखतीं उदाहरण स्वरूप स्वंय आत्मा या ज्ञान को छूकर या देख कर अथवा सुनकर या सूँघ कर महसूस नहीं कर सकता इस के अतिरिक्त भी अभौतिक वस्तुओं की उपस्थित के लिए बहुत सी दलीलें और प्रमाण मौजूद हैं जिस का वर्णन दर्शनशास्त्र की किताबों में है। अभौतिक आत्मा की उपस्थिति का सब से अच्छा प्रमाण , सच्चे सपनें और तपस्यवियों द्वारा पेश किए जाने वाले चमत्कार और ईश्वरीय दूतों के वह चमत्कार हैं जो साधारण मनुष्य के लिए संभव नहीं होते । प्रत्येक दशा में ईश्वर के अस्तित्व और उस के अभौतिक होने के बारे में जो तर्क लिए गये हैं , वह इस विचार को गलत सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं ।

## दूसरे सिद्धान्त की समीक्षा

इस सिद्धान्त में , पदार्थ के सदैव से होने और अनन्त काल तक रहने पर बल दिया गया है और उस के बाद यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पदार्थ की रचना नहीं की जा सकती ।

किंतु पहली बात तो यह कि प्रयोग व विज्ञान की दृष्टि से पदार्थ का ऐसा होना सिद्ध ही नहीं है क्योंकि प्रयोग की पहुँच सीमित होती है और किसी भी प्रकार का प्रयोग स्थान व काल की दृष्टि सी ब्रहमाण्ड के अनन्त होने को सिद्ध नहीं कर सकता ।

दूसरी बात यह कि अगर यह मान भी लिया जाए कि पदार्थ अनन्त काल तक रहने वाला है तो भी इस का अर्थ यह नहीं होगा कि उसे किसी पैदा करने वाले की आवश्यकता नहीं है । जैसा कि एक अनन्तकालीन व्यवस्था के गतिशील होने को मानने के लिए अन्नतकालीन अवस्था में पहुँचाने वाली ऊर्जा की आवश्यकता होती है । इस लिए यह नहीं सोचा जा सकता की यह दशा पदार्थ में उस ऊर्जा की आवश्यकता को ही समाप्त कर देती है ।

इस के अतिरिक्त भी , पदार्थ को रचना योग्य न होने का अर्थ उस का स्वयंभू होना है और आठवें पाठ में हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि पदार्थ , किसी भी दशा में आत्मभू अस्तित्व नहीं हो सकता ।

## तीसरे सिद्धान्त की समीक्षा

तीसरा सिद्धान्त , विश्व के लक्ष्यपूर्ण होने का इन्कार है कि जो किसी रचयता के इन्कार का स्वाभाविक परिणाम है और स्वभाविक रूप से अगर ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध हो जाए तो फिर यह सिद्धान्त भी गलत हो जाएगा । इस के अतिरिक्त भी , यह प्रश्न उठता है कि किस प्रकार से बुद्धि रखने वाला मनुष्य विश्व की इतनी सूक्ष्म व्यवस्था व हर वस्तु के संतुलन को देखने के बाद इस बात पर विश्वास करेगा कि इस पूरी सृष्टि का कोई लक्ष्य ही नहीं है ?

## चौथे सिद्धान्त की समीक्षा

भौतिक विचारधारा का चौथा सिद्धान्त , कारक सिद्धान्त को केवल भौतिक प्रक्रियाओं तक ही सीमित मानने पर आधारित है जिस पर कई प्रकार से आपत्ति की जा सकती है जिस में से कुछ महत्वपूर्ण आपत्तियां इस प्रकार हैं :

पहली बात यह कि इस सिद्धान्त के आधार पर विश्व में किसी भी समय किसी नयी वस्तु को अस्तित्व में नहीं आना चाहिए हॉलाकि हम इस संसार में विभिन्न प्रकार के नयी नयी वस्तुओं के जन्म, विशेष कर प्राणियों और मनुष्यों में देखते रहते हैं जिन में से विशेष रूप से जीवन, बोध , विचार , अविष्कार और इरादे का उल्लेख किया जा सकता है।

भौतिकतावादी कहते हैं कि यह प्रक्रियाएं भी पदार्थ के ही गुणों में से हैं किंतु उन के उत्तर में हम कहेगें : सब से पहली बात तो यह कि पदार्थ और

भौतिक वस्तुओं की अंखड विशेषता उस का व्यास और विभाजन योग्य होना है किंतु यह विशेषता उपरोक्त वस्तुओं में नहीं होती ।

दूसरी बात यह कि यह प्रक्रियाएं जिन्हें पदार्थ के गुणों का नाम दिया गया है , निश्चित रूप से निर्जीव पदार्थ ों में नहीं होतीं और दूसरे शब्दों में : कभी पदार्थ में यह विशेषताएं मौजूद नहीं थीं और फिर उन में यह गुण पैदा हो गये , तो फिर इन प्रक्रियाओं को अस्तित्व में लाने के लिए कि जिसे पदार्थ का गुण कहा जाता है , एक रचयता की आवश्यकता होगी ताकि वह इन गुणों व विशेषताओं को पदार्थ में पैदा करे और यह वही सृष्टि का रचयता और मूल कारक होगा । इस विचारधारा के गलत होने का एक अन्य महत्वपूर्ण तर्क यह भी है कि इस विचार धारा के आधार पर इस विश्व के अस्तित्व में आने की प्रकिग्रा , स्वयतः और बिना किसी चयन व इच्छा के होगी क्योंकि पदार्थ की किया व प्रतिकिया में , इच्छा व चयन का कोई स्थान नहीं होता और चयन व अधिकार का इन्कार , स्पष्ट वास्तविकताओं के विपरीत होने के साथ साथ हर प्रकार के नैतिक व आध्यात्मिक मूल्य तथा ज़िम्मेदारी के इन्कार के भी बराबर है और यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जिम्मेदारियों और नैतिक मूल्यों के इन्कार का मनुष्य के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ सकता है ।

अन्ततः , इस बात के दृष्टिगत कि पदार्थ स्वयंभू अस्तित्व नहीं हो सकता ,जैसा कि पहले सिद्ध किया जा चुका है , उस के लिए किसी कर्ता की आवश्यकता होगी किंतु वह कर्ता प्रकृतिक व भूमिका बनाने वाले कारकों में से नहीं होना चाहिए क्योंकि इस प्रकार के संपर्क और निर्भरता भौतिक वस्तुओं के मध्य ही सोची जा सकती है किंतु स्वंय पदार्थ अपने कर्ता के साथ इस प्रकार का संबधं नहीं रख सकता । इस लिए पदार्थ को अस्तित्व में लाने वाला कारक , रचयता और गैर भौतिक होना चाहिए ।

## प्रश्न :

1. भौतिक विचार धारा के सिद्धान्तों का वर्णन करें ।
2. पदार्थ और भौतिक की परिभाषा करें ।
3. पहले सिद्धान्त की त्रुटियों का वर्णन करें ।
4 दूसरे सिद्धान्त की त्रुटियों का वर्णन करें ।
5. तीसरे सिद्धान्त की त्रुटियों का वर्णन करें ।
6. चौथे सिद्धान्त की त्रुटियों का वर्णन करें ।

पंद्रहवाँ पाठ

# डायलेक्टिक मेटेरियालिज़्म और समीक्षा

- तकनीकी व डायलेक्टिक मेटेरियालिज़्म
- विरोधाभास का सिद्धान्त और समीक्षा
- बदलाव का सिद्धान्त और समीक्षा
- नकारात्मक वस्तुओं के नकारने का सिद्धान्त और उस की समीक्षा

## मिकेनिकल और डायलेक्टिक मेटेरियालिज़्म

मेटिरयालिज़्म की बहुत सी शाखाएं हैं और प्रत्येक शाखा में सृष्टि की रचना और उस में मौजूद वस्तुओं का विशेष रूप से वर्णन किया गया है । नये युग के आरंभ में मेटेरियालिज़्म ने न्यूटन के भौतिक वादी विचारों को प्रयोग करते हुए ब्रहमाण्ड की रचनाओं की उत्पत्ति को स्वाचलित गतिशीलता के आधार पर बताया और हर गति को विशेष प्रकार की ऊर्जा का परिणाम बताया कि जो बाहर से गतिशील वस्तु में प्रविष्ट होती है । दूसरे शब्दों में : विश्व को एक बड़ी मशीन की भाँति समझा गया कि जिसे गति में लाने वाली ऊर्जा एक पुर्ज़े से दूसरे पुर्ज़े में स्थानान्तरित होती है और परिणाम स्वरूप पूरी मशीन गति में आती है।

इस विचार धारा को मिकेनिकल मेटेरियालिज़्म का नाम दिया गया किंतु इस में बहुत सी त्रृटियाँ थीं जिस के कारण इस विचार धारा के विरोधी इस की आलोचना करते थे । उदाहरण स्वरूप यह कि यदि प्रत्येक गति बाहर की ऊर्जा का परिणाम है तो फिर विश्व के सर्वप्रथम पदार्थ में गति के लिए भी बाहर की किसी ऊर्जा की आवश्यकता होगी कि जो बाहर से उस में समाई हो और इस दशा में किसी अभौतिक वस्तु को स्वीकार करना आवश्यक हो जाएगा कि जो कम से कम भौतिक संसार में सर्वप्रथम गति का कारण बनी हो।

दूसरी बात यह कि केवल स्थानान्तरण योग्य गतिशीलता को ही मिकेनिकल ऊर्जा का परिणाम बताया जा सकता है जब कि विश्व की सभी रचनाएं स्थानान्तरण योग्य नहीं होतीं इस लिए विवशतः अन्य प्रकार की वस्तुओं की उत्पत्ति के लिए किसी अन्य कारक के अस्तित्व को स्वीकार करना होगा ।

मिकेनिकल मेटेरियालिज़्म इन प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम नहीं था जिस के कारण मेटेरियालिज़्म ने विश्व की रचना के अन्य कारण की खोज आरंभ की जिस में कम से कम कुछ गतियों को डायनेमिक बताया जा सके और पदार्थ के लिए एक प्रकार के स्वचलन को दृष्टिगत रखा जाए ।

डायलेक्टिक मेटेरियालिज़्म के संस्थापकों में मार्कस और वैंगिल्स हैं जो हेगल के दार्शनिक विचारों को प्रयोग करते हुए गति का कारक, भौतिक वस्तुओं के भीतर विरोधाभास को बताया और पदार्थ के अमरत्व व स्वभुता जैसे सिद्धान्तों और भौतिक वस्तुओं के एक दूसरे पर प्रभाव को स्वीकार करने के साथ साथ, अपनी धारणा के वर्णन के लिए तीन सिद्धान्त पेश किए ।

1. भीतरी विरोधाभास

2. परिवर्तनकरण ; उनजंजपवदद्ध का नियम या फिर मात्रा परिवर्तन का गुण परिवर्तन में बदलना ।

3. नकारात्मक वस्तुओं को नकारना या प्रकृतिक खोज का सिद्धान्त।

यहाँ पर हम इन तीनों सिद्धान्तों की संक्षिप्त चर्चा करेगें और फिर उस की समीक्षा करेंगें ।

## विरोधाभास का सिद्धान्त

डायलेक्टिक मेटेरियालिज़्म का यह आधार है कि हर वस्तु दो विपरीतताओं से मिलकर बनी है और उन का विरोधाभास उन में गति व परिवर्तन का कारण बनता है यहाँ तक कि एक विरोधाभास दूसरे पराजित कर

देता है और एक नयी वस्तु , जो उन के संयोग का परिणाम होती है , अस्तित्व में आ जाती है। उदाहरण स्वरूप अंडे में एक मूल तत्व होता है वह उस में मौजूद आहार से पोषित होता है फिर चूज़ा बन जाता है ।

निगेटिव और पाज़ेटिव इलेक्ट्रिक चार्ज, भौतिक प्रक्रियाओं में विपरीतता का उदाहरण है जैसा कि जोड़ और घटाव गणित में ।

यह प्रक्रिया सामाजिक व एतिहासिक वस्तुओं में भी मौजूद होती है उदाहरण स्वरूप पुँजीपतियों के समाज में , मज़दूर वर्ग जो पुँजीपति वर्ग के विपरीत होता है , फलता फूलता है और धीरे धीरे उन पर प्रभावी हो जाता है और उस के परिणाम में समाजवादी व साम्यवादी समाज का विकास होता है ।

## समीक्षा

सब से पहले तो इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि दो वस्तुओं का एक दूसरे के साथ इस प्रकार से रहना कि उन में से एक दूसरे को कमज़ोर करें यहाँ तक कि दूसरी वस्तु नष्ट हो जाए , सभी के लिए स्वीकारीय है जैसा कि पानी और आग के बारे में हम देखते हैं कि किंतु सब से पहली बात तो यह कि यह प्रक्रिया व्यापक नहीं है और उसे एक विश्व व्यापी नियम के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि सैंकड़ों और हज़ारों उदाहरण ऐसे मौजूद हैं जो इस नियम के विपरीत हैं और दूसरी बात यह कि कुछ भौतिक वस्तुओं में इस प्रकार की विपरीतताओं की उपस्थिति , परंपरागत और आत्मतत्वज्ञान संबधी दर्शन में जिन वस्तुओं को असंभव व विरोधाभासी बताया गया है उन से संबधं नहीं रखती क्योंकि जिन वस्तुओं को अंसभव बताया गया है वह दो परस्पर विपरीत वस्तुओं व प्रक्रियाओं का एक विषय के अंतर्गत एक साथ इकटठा होना है किंतु पिछले उदाहरण में एक विषय मौजूद नहीं है यहाँ पर मार्क्सवादियों द्वारा पेश किए गये हास्यास्पद उदाहरणों का उल्लेख आवश्यक नहीं है जिन में धन व भाग आदि के इकटठा होने या फिर धनवान

देशों में मजदूरों की सरकार के गठन की भविष्यवाणियाँ की गयी हैं । तीसरी बात यह कि अगर हर वस्तु दो विरोधाभासी वस्तुओं से मिलकर बनी होगी तो उन में से हर एक विरोधाभासी तत्व के लिए एक भिन्न अस्तित्व दृष्टिगत रखना होगा क्योंकि उन में से प्रत्येक , एक तत्व है और इस सिद्धान्त के आधार पर उन का भी दो विपरीत वस्तुओं से मिलकर बना होना आवश्यक है इस प्रकार से हर सीमित प्रक्रिया विपरीतताओं का समूह बन कर रह जाएगी ।

किंतु जहाँ तक इस बात का प्रश्न है कि उन्हों ने भीतरी विरोधाभास को गति का कारक बताया और इस प्रकार से मिकेनिकल मेटेरियालिज़्म की कमज़ोरी को दूर करना चाहा है तो उस पर सब से छोटी आपत्ति तो यही है कि इस धारणा का कोई वैज्ञानिक तर्क नहीं है । इस के अतिरिक्त बाहरी ऊर्जा के परिणाम में पैदा होने वाली मिकेनिकल या तकनीकी गतिशीलता की उपस्थिति का तो किसी भी स्थिति में इन्कार नहीं किया जा सकता यद्यपि अगर फुटबाल की गति को भी वह लोग फुटबाल के भीतर मौजूद विरोधाभास को गति का कारक बताएं न कि खिलाड़ी की ठोकर को तो फिर यह स्वीकारीय नहीं होगा ।

## तीव्र परिवर्तन का सिद्धान्त

इस बात के दृष्टिगत कि विश्व के सभी परिवर्तन , चरणबद्ध और एक समान नहीं होते और बहुत से अवसरों पर ,ऐसी नयी वस्तुएं पैदा होती हैं जो अपने से पूर्व की वस्तु के समान भी नहीं होती और उसे पहले की प्रक्रिया की अगली कड़ी भी नहीं कहा जा सकता , मार्क्सवादियों ने छलांग अर्थात परिवर्तनकरण ;उनजंजपवदद्ध या मात्रा परिवर्तन से गुण के परिवर्तन की ओर बढ़ना, नामक एक दूसरा सिद्धान्त पेश किया और यह दर्शाने का प्रयास किया कि मात्रा में परिवर्तन जब एक विशेष बिन्दु पर पहुँच जाता है तो फिर वह उस के प्रकार व गुण में परिवर्तन का कारण बन जाता है । जैसे कि पानी का

तापमान जब एक विशेष बिन्दु पर पहुँच जाता है तो फिर वह भाप में बदल जाता है और इसी प्रकार हर धातु के पिघलने के लिए एक विशेष तापमान होता है और जब उस धातु का तापमान उस विशेष बिन्दु तक पहुँच जाता है तो फिर वह पिघल जाती है । समाज में भी जब मतभेद बहुत अधिक हो जाते हैं या फिर एक विशेष बिन्दु पर पहुँच जाते हैं तो फिर क्रांति आ जाती है।

## समीक्षा

पहली बात तो यह कि किसी भी दशा में मात्रा व संख्या का परिवर्तन , गुण परिवर्तन का कारण नहीं बनता अधिक से अधिक यह माना जा सकता है कि विशेष वस्तुओं की उत्पत्ति , के लिए विशेष मात्रा या संख्या आवश्यक होती है। उदाहरण स्वरूप पानी की ऊष्मा , भाप नहीं बनती , बल्कि पानी के भाप बनने के लिए , ऊष्मा की विशेष मात्रा आवश्यक है ।

दूसरी बात यह कि यह तो आवश्यक नहीं है कि यह आवश्यक मात्रा , पहले से मौजूद मात्रा में धीरे धीरे वृद्धि का परिणाम हो बल्कि यह भी संभव है कि आवश्यक मात्रा , पहले से मौजूद मात्रा में कमी का परिणाम हो जैसा कि भाप उस समय पानी बन जाती है जब उस की ऊष्मा कम हो जाती है ।

तीसरी बात यह कि गुण परिवर्तन ,सदैव ही अचानक और एक बार नहीं होता बल्कि बहुत से अवसरों पर यह परिवर्तन धीरे धीरे होता है जैसा कि मोम और शीशे में पिघलने की प्रक्रिया धीरे धीरे और चरण बद्ध होती है।

इस आधार पर , जो बात स्वीकार की जा सकती है वह यह है कि कुछ प्रकृतिक प्रक्रियाओं के लिए विशेष मात्रा की उपस्थिति आवश्यक होती है न कि मात्रा के , नये गुण में बदलने के लिए , न धीरे धीरे मात्रा में वृद्धि के लिए और न ही हर प्रकार के परिवर्तन के लिए इस शर्त को व्यापक समझना सही है।

## नकारने को नकारने का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त से कि जिसे विपरीतताओं की परिपूर्णता या प्रकृतिक संघर्ष का नाम भी दिया जाता है आशय यह है कि व्यापक डायलेक्टिक परिवर्तनों की प्रकिया में , सदैव एक विपरीत वस्तु दूसरी विरोधाभासी वस्तु द्वारा नकारी जाती है और फिर वह दूसरी वस्तु भी परिणाम द्वारा नकार दी जाती है। जैसा कि पौधा , बीज को नकारता है और वह स्वंय भी नये बीज द्वारा नकार दिया जाता है । अन्डे का वह मूल तत्व , अन्डे को नकारता है और फिर वह स्वंय चूज़े द्वारा नकार दिया जाता है । किंतु हर नयी वस्तु अपने से पहले वाली वस्तु से अधिक परिपूर्ण होती है। दूसरे शब्दों में डायलेक्टिक बदलाव , सदैव श्रेष्ठता की ओर होता है , और इस सिद्धान्त का महत्व इस बिन्दु में निहित है कि जो परिवर्तनों को रेखांकित करता है और परिवर्तनों की प्रक्रिया के श्रेष्ठता व परिपूर्णता की ओर बढ़ने पर बल देता है।

## समीक्षा

इस बात में तो कोई संदेह नहीं है कि हर परिवर्तन व बदलाव अपने से पूर्व की स्थिति व दशा को समाप्त कर देता है और नयी दशा पैदा हो जाती है और अगर हम इस सिद्धान्त का यही अर्थ निकालें तो फिर यह, परिवर्तन की आवश्यक विशेषता के वर्णन से अधिक कुछ नहीं होगा किंतु इस सिद्धान्त की जिस प्रकार से व्याख्या की गयी है और इसे जिस प्रकार से परिपूर्णता की ओर गतिशीलता को स्पष्ट करने वाला बताया गया है तो इस संदर्भ में हम कहेगें कि विश्व की सभी प्रक्रियाओं और गतियों को श्रेष्ठता की ओर ले जाने वाला समझना वह भी इस अर्थ में कि हर नयी दशा व प्रक्रिया अपने से पूर्व की दशा व प्रक्रिया से अधिक पूर्ण व श्रेष्ठ होगी , स्वीकारीय नहीं है । क्या यूरेनियम जो रेडियोधर्मिता के कारण सीसा बन जाता है अधिक परिपूर्ण होता है ? या फिर

पानी जो भाप बन जाता है वह अधिक परिपूर्ण और श्रेष्ठ हो जाता है ? या वह भाप जो पानी बन जाती है अधिक श्रेष्ठ व परिपूर्ण हो जाती है ? या वृक्ष जो सूख जाता है और फल नहीं देता वह अधिक परिपूर्ण व श्रेष्ठ हो जाता है ? तो फिर इस पूरे प्रकरण में जो तथ्य स्वीकार किया जा सकता है वह केवल यही है कि कुछ प्राकृतिक वस्तुएं परिवर्तन व बदलाव के कारण , अधिक परिपूर्ण व श्रेष्ठ हो जाती हैं । इस आधार पर , परिपूर्णता को भी विश्व की सभी वस्तुओं के लिए एक सर्वव्यापी सिद्धान्त के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

अंत में हम यह याद दिलाना चाहेगें कि अगर यह मान लिया जाए कि यह सारे सिद्धान्त सर्वव्यापी हैं तो भौतिक विज्ञान के अन्य बहुत से सिद्धान्तों की भाँति, इस से विभिन्न वस्तुओं के जन्म लेने की प्रक्रिया का ही ज्ञान हो पाता किंतु विश्व में सर्वव्यापी नियमों की उपस्थिति, इस बात का प्रमाण तो नहीं है कि इन वस्तुओं को किसी रचनाकार की आवशकयता ही नहीं है जैसा कि हम ने पिछले पाठों में बताया है कि चूँकि पदार्थ और भौतिक वस्तुएं , आत्मभू अस्तित्व नहीं होतीं इस लिए आवश्यक है कि उन के लिए कोई आत्मभू अस्तित्व मौजूद हो ।

## प्रश्न

1.मिकेनिकल व डायलेक्टिक मेटेरियालिज़्म का अंतर बताएं

2. विरोधाभास के सिद्धान्त का वर्णन करें और उस पर की जाने वाली आपत्तियों का भी वर्णन करें ।

3. परिवर्तनकरण व तीव्र बदलाव के सिद्धान्त का वर्णन करें ।

4. नकारने के सिद्धान्त का वर्णन और समीक्षा करें ।

5. क्या अगर इन सिद्धान्तों को सर्वव्यापी मान लिया जाए तो उस से यह सिद्ध होता है कि इस सृष्टि के लिए किसी मूल कारक व रचनाकार की आवश्यकता नहीं है ?

सोलहवाँ पाठ

# ईश्वर का एक होना

- भूमिका
- ईश्वर के एक होने का प्रमाण

## भूमिका

पिछले पाठों में इस सृष्टि के रचनाकार ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध हुआ वह दूरदर्शी ईश्वर जो इस संसार को जन्म देने वाला और उसे बाकी रखने वाला है और पिछले पाठों में हम ने भौतिकविचार धारा की भी समीक्षा की और विभिन्न प्रकार के विचारों की समीक्षा करने के बाद यह स्पष्ट हुआ कि बिना ईश्वर के विश्व की रचना , आतार्किक विचार है और इस का कोई औचित्य नहीं है।

अब,हम यहॉ पर उस रचनाकार और ईश्वर के एक होने की चर्चा करेगें तथा अनेकेश्वरवादियों की धारणाओं के गलत होने को भी सिद्ध करेगें।

इस बारे में , कि अनेकिश्वरवादी विचार धारा किस प्रकार से मनुष्य में पैदा हुई , विभिन्न प्रकार के मत पाए जाते हैं जो समाज शास्त्रियों ने प्रस्तुत किए हैं किंतु किसी ने भी स्पष्ट व ठोस प्रमाण नहीं पेश किया है।

शायद यह कहा जा सकता है कि अनेकेश्वरवाद की ओर झुकाव और कई ईश्वर मानने का पहला कारण , आकाश व धरती की वस्तुओं और प्रक्रियाओं की विविधता रही है जिस के आधार पर यह समझा गया कि हर प्रकिया एक विशेष ईश्वर के नियंत्रण में है । इसी प्रकार से कुछ लोगों ने यह समझा कि अच्छाईयों का ईश्वर अलग है और बुराईयों का ईश्वर अलग है और इस प्रकार से इन लोगों ने संसार के लिए दो स्रोतों की धारणा बनाई ।

दूसरी ओर सूर्य और चद्रंमा के पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव और पृथ्वी में उन की भूमिका को ध्यान में रखते हुए यह धारणा बनी कि पृथ्वी वासियों के लिए एक प्रकार से वह पालनहार हैं

इसी प्रकार देखे और महसूस किए जाने योग्य ईश्वर में रूचि भी इस बात का कारण बनी कि लोग विभिन्न प्रकार के ईश्वर, मूर्तियां और चिन्ह व प्रतीक बनाएं और उन की पूजा करें और धीरे धीरे अज्ञान लोगों के मध्य यह प्रतीक और मूर्तियां स्वंय ही ईश्वर समझी जाने लगीं और हर राष्ट्र व समुदाय ने अपनी धारणाओं और अंध विश्वासों के आधार पर अपने लिए विशेष प्रकार के पूजा संस्कारों का संकलन किया ताकि एक ओर तो पूजने की अपनी प्रवृत्ति को ,वैकल्पिक रूप से शांत कर सकें और दूसरी ओर, अपनी इच्छाओं और कामनाओं की भी पवित्रता व धर्म के रूप में पूर्ति कर सकें और यही कारण है कि आज भी बहुत से धर्मो में नाच, गाना तथा शराब पीकर अश्लील कार्य करना धार्मिक संस्कारों व कार्यक्रमों का भाग बना हुआ है ।

इस के अलावा भी समाज पर अपना अधिकार और वर्चस्व जमाने का प्रयास करने वाले भी , आम लोगों में इस प्रकार की विचार धारा व धारणा के जन्म लेने का कारण बने हैं। इसी लिए समाज पर अधिकार की इच्छा रखने वाले बहुत से लोगों ने आम लोगों के मध्य अनेकेश्वरवादी धारणा पैदा की और स्वंय को भी पालनकार व ईश्वर तथा पूजा योग्य दर्शाया तथा राजा महाराजाओं की पूजा को धार्मिक संस्कार का रूप दिया जैसा कि हम चीन , भारत , ईरान और मिस्र आदि देशों के राजाओं के बारे में पढ़ते हैं ।

प्रत्येक दशा में अनेकेश्वरवादी संस्कार व धारणा के जन्म लेने के बहुत से कारण हैं और यह एकेश्वरवाद की छत्रछाया में मानव समाज के विकास के मार्ग की मुख्य बाधा है और यही कारण है कि ईश्वरीय दूतों के संघर्ष का एक बड़ा भाग अनेकेश्वरवाद और अनेकेश्वरवादियों के विरूद्ध अभियान में व्यतीत हुआ जैसा कि कुरआन मजीद में इन ईश्वरीय दूतों का बार बार वर्णन किया गया है ।

इस आधार पर अनेकेश्वरवादी मत में ईश्वर के अतिरिक्त एक या कई अन्य लोगों के पालनहार होने में भी विश्वास रखा जाता है । यहाँ तक कि बहुत से अनेकेश्वरवादी , विश्व के लिए एक ही रचयता होने में विश्वास रखते थे और वास्तव में वे विश्व की रचना के मामले में एकेश्वरवादी विचार धारा में आस्था रखते थे किंतु उस के बाद के चरण में दूसरी श्रेणी में देवताओं को मानते थे और कुछ लोगों के विचार में इस प्रकार के देवता वास्तव में जिन्न और परी थे। इसी प्रकार कुछ अन्य लोगों का मानना था कि , सितारों की आत्मा या कुछ विशेष लोगों या विशेष प्रकार के प्राणियों की आत्माएं संसार को चलाने में ईश्वर की सहायता करती हैं ।

दसवें पाठ में हम ने संकेत किया कि वास्तविक रूप से रचयता और पालनहार होना केवल एक ही अस्तित्व की विशेषता हो सकता है और यह दोनों गुण एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते अर्थात यह संभव नहीं है कि विश्व का रचयता कोई और हो और लोगों का पालनहार कोई अन्य , और जो लोग इस प्रकार का विश्वास रखते हैं उन्हों ने इस में पाए जाने वाले विरोधाभास की ओर ध्यान नहीं दिया है । इसी लिए इस विचारधारा को गलत सिद्ध करने के लिए केवल उस में मौजूद विरोधाभास का ही वर्णन काफी है ।

ईश्वर के एक होने को सिद्ध करने के लिए बहुत से प्रमाण व तर्क प्रस्तुत किये गये हैं किंतु यहाँ पर हम केवल उन्हीं तर्कों और प्रमाणों का उल्लेख करेगें जो सीधे रूप से एकेश्वरवाद से संबंधित हैं ।

## ईश्वर के एक होने का प्रमाण

अगर यह मान लिया जाए कि इस सृष्टि की रचना दो या कई ईश्वरों ने मिल कर की है तो इस धारणा के लिए कुछ दशाएं होगीं : या तो विश्व की हर वस्तु को उन सब ने मिल कर बनाया होगा या फिर कुछ वस्तुओं को एक ने

और कुछ अन्य को दूसरे ने बनाया होगा या फिर सारी वस्तुओं को किसी एक ने बनाया होगा किंतु अन्य देवता संसार को चलाते होंगे।

किंतु अगर यह माना जाए कि हर रचना को कई लोगों ने मिल कर बनाया है तो यह संभव ही नहीं है क्योंकि इस धारणा का अर्थ यह होगा कि संसार की एक वस्तु को दो या कई देवताओं ने मिल कर बनाया है और हर एक ने एक अस्तित्व को बनाया है जिस से हर वस्तु के लिए कई अस्तित्व हो जाएंगे जब कि एक वस्तु का केवल एक ही अस्तित्व होता है नहीं तो वह वस्तु एक नहीं होगी ।

किंतु अगर यह माना जाए कई देवताओं में से प्रत्येक किसी वस्तु विशेष या कई वस्तुओं को पैदा करने वाला है तो इस का अर्थ होगा कि हर रचना अपने रचनाकार के बल पर ही अस्त्तिव में आई होगी और उसे अपने अस्तित्व के लिए किसी अन्य की आवश्यकता नहीं होगी और उसे केवल उसी अस्तित्व की आवश्यकता होगी जिस ने उसे बनाया है किंतु इस प्रकार की आवश्यकता सारी वस्तुओं को बनाने वाले अंतिम रचनाकार की होती है जो वास्तव में ईश्वर है।

दूसरे शब्दों में संसार के लिए कई ईश्वर मानने का अर्थ यह होगा कि संसार में कई प्रकार की व्यवस्थाएं जो एक दूसरे से अलग हैं पाई जाती हैं जब कि संसार की एक ही व्यवस्था है और सारी प्रक्रियाएं एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं और एक दूसरे को प्रभावित भी करती हैं और उन्हें एक दूसरे की आवश्यकता भी होती है । इसी प्रकार से पहले की प्रक्रिया उस के बाद आने वाली प्रक्रिया से संबधं रखती है और पहले की हर प्रक्रिया , अपने बाद की प्रक्रिया के अस्तित्व में आने की भूमिका प्रशस्त करती है तो फिर ऐसा संसार जिस में वस्तुएं और प्रक्रियाएं एक दूसरे से जुड़ी हुई हों और सब कुछ एक व्यवस्था के अंतर्गत हो वह कई कारकों का परिणाम नहीं हो सकता ।

और अगर यह मान लिया जाए कि वस्तुतः ईश्वर एक ही हैं किंतु उस की सहायता के लिए और संसार को चलाने के लिए कई अन्य देवता भी

मौजूद हैं तो भी यह सही नहीं होगा क्योंकि हर वस्तु अपने पूरे अस्तित्व के साथ स्वंय को अस्तित्व में लाने वाले से संबंधित और उसी के सहारे बाकी रहती है और किसी अन्य अस्तित्व में उसे प्रभावित करने की शक्ति नहीं होती। यद्यपि यहाँ पर वह प्रभाव हमारा आशय नहीं है जो एक कारक के परिणामों के मध्य होता है और सब के सब एक कर्ता के अधिकार के अंतर्गत एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और उन के समस्त प्रभाव उसी कर्ता की अनुमति से होते हैं। क्योंकि ऐसी दशा में उन में से कोई भी पालनहार नहीं हो सकता क्योंकि पालनहार के वास्तविक अर्थ यह हैं कि उसे अपनी रचनाओं पर वास्तविक व स्वतंत्र प्रभाव की शक्ति प्राप्त हो किंतु धारणा यह है कि इस प्रकार के प्रभाव और अधिकार स्वतंत्र नहीं होते बल्कि सब के सब एक प्रभावी अस्तित्व व पालनहार के अंतर्गत होते हैं अगर ऐसा माना जाए अर्थात यह कि वास्तव में विश्व का रचनाकार एक है और दूसरी बहुत सी शक्तियाँ उस की अनुमति से बहुत से कामों को संभालती हैं तो फिर यह विश्वास एकेश्वरवादी विचार धारा के विपरीत नहीं होगा इसी प्रकार से अगर किसी वस्तु की रचना भी एक ईश्वर की अनुमति से हो तो फिर वह एक ईश्वर पर विश्वास और एक ही पालनहार में आस्था के विपरीत नहीं होगी और कुरआन मजीद और पैगम्बरे इस्लाम तथा अन्य महान मार्गदर्शकों के कथनों में भी कुछ लोगों के लिए इस प्रकार से अर्थात गैर स्वतंत्र रूप से रचना और व्यवस्था की बात की गयी है जैसा कि कुरआन मजीद में हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के लिए कहा गया है कि : **जब तुम मिट्टी से पंछी जैसी वस्तु बनाते हो और फिर उस में फूंकते हो तो वह मेरी अनुमति से पंछी बन जाता है।**[1] या फिर एक अन्य स्थान पर कहा जाता है : **और कामों को संभालने वाले।**[2]

---

[1] सूरए माएदा – आयत 110

[2] सूरए नाज़ेआत – आयत 5

निष्कर्ष यह निकला कि संसार के लिए कई ईश्वर की धारणा , भौतिक कारकों से ईश्वर की तुलना का परिणाम है कि जिस में एक वस्तु के लिए कई कारकों का होना संभव होता है । हॉलाकि सृष्टि की रचना करने वाले कारक को भौतिक कारकों के समान नहीं समझा जा सकता और कोई भी वस्तु स्वतंत्र रूप से कई कारकों का परिणाम नहीं हो सकती और न ही इस संसार की व्यवस्था चलाने वाले को एक से अधिक समझा जा सकता है।

इस आधार पर , इस धारणा के निवारण के लिए एक ओर तो सृष्टि के मुख्य कारक और सृष्टि से उस के संबधं के प्रकार तथा विश्व की उस पर निर्भरता जैसे विषयों पर चिंतन करना चाहिए ताकि यह स्पष्ट हो जाए कि इस प्रकार की व्यवस्था कई ईश्वरों या कई स्वतंत्र पालनहारों के अंतर्गत नहीं हो सकती ।

इस के साथ यह भी स्पष्ट हो गया कि कुछ योग्य मनुष्यों के लिए ईश्वर की अनुमति से सृष्टि पर प्रभाव डालने की शक्ति को स्वीकार करना , एकेश्वरवाद में विश्वास के विपरीत नहीं है । जैसा कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम तथा उन के वंश के इमामों को सृष्टि में जो अधिकार प्राप्त थे वह ईश्वर की अनुमति से और उस के द्वारा दिए गये थे और वे उन में स्वाधीनता के साथ प्रभाव नहीं डाल सकते थे इसी लिए उन के इस अधिकार को मानने और ईश्वर को एक मानने में कोई विरोधाभास नहीं है।

## प्रश्न

1. अनेकेश्वरवाद के कारणों का वर्णन करें ।

2. अनेकेश्वरवाद में विश्वास का आधाार बताएं

3. रचनाकार व पालनहार के मध्य अनिवार्य संबधं का वर्णन करें ।

4. किसी एक वस्तु के लिए कई रचनाकार क्यों नहीं हो सकते ?

5. विशेष प्रकार की कई वस्तुओं के लिए एक विशेष रचनाकार में विश्वास क्यों नहीं रखा जा सकता ?

6. इस में क्या बुराई है कि पूरे संसार के लिए एक ईश्वर को माना जाए किंतु इसी के साथ विश्व की व्यवस्था चलाने के लिए अन्य कई देवताओं में भी विश्वास रखा जाए ।

7. कई ईश्वर की धारणा का स्रोत क्या है , और इस का कैसे निवारण किया जा सकता है ?

8. ईश्वर के विशेष दासों के लिए कुछ शक्तियों को स्वीकार करना , ईश्वर के एक होने और उसी के पालनहार होने में विश्वास रखने के विपरीत क्यों नहीं है ?

सत्रहवाँ पाठ

# एकेश्वरवाद के अर्थ

- भूमिका
- कई ईश्वर संभव नहीं
- संयुक्त होना संभव नहीं
- अस्तित्व के अतिरिक्त गुणों को नकारना
- कार्यों में एक होना
- प्रभाव डालने में स्वाधीनता
- दो महत्वपूर्ण परिणाम
- एक शंका का निवारण

## भूमिका

एकेश्वरवाद का अर्थ ईश्वर को एक मानना है । दर्शन और तर्क शास्त्र में इस के कई अर्थ हैं किंतु सब का अंत में अर्थ यही होता है कि ईश्वर को एक माना जाए । इस संदर्भ में बहुत सी विस्तृत चर्चाओं का वर्णन हुआ है किंतु यहॉ पर सब का उल्लेख उचित नहीं होगा ।

इस लिए यहॉ पर हम एकेश्वरवाद के केवल उन्हीं अर्थों और परिभाषाओं का वर्णन करेगें जो अधिक विख्यात हैं ।

### 1. संख्या को नकारना

एकेश्वरवाद की सर्वाधिक विख्यात परिभाषा , ईश्वर के एक होने पर विश्वास और उस के कई होने को नकारना है । ईश्वर के लिए ऐसी विविधता को नकारना है जो उस के अस्तित्व से बाहर हो । यह विश्वास दो या कई ईश्वर में आस्था रखने के विपरीत है ।

### 2. मिश्रण को नकारना

एकेश्वरवाद की दूसरी परिभाषा ईश्वर के अनन्य होने की है अर्थात वह ऐसा एक है कि जो कई वस्तुओं से मिल कर एक नहीं बना है ।

इस अर्थ को प्रायः उस के अवगुणों को नकार कर प्रमाणित किया जाता है जैसा कि हम ने दसवें पाठ में इस ओर संकेत किया है ।

### 3. उस के अस्तित्व से अतिरिक्त गुणों को नकारना

एकेश्वरवाद की एक अन्य परिभाषा उस के गुणों और उस के अस्तित्व में अंखडता होना है । इसे ईश्वर के गुणों को एकल मानना कहा जाता है। इस विपरीत कुछ लोग ईश्वर गुणों को उस के अस्तित्व से अलग और बाद में उस से जुड़ जाने वाली वस्तु मानते हैं ।

ईश्वर के गुण और अस्तित्व के एक होने का तर्क यह है कि अगर ईश्वर के प्रत्येक गुण , अलग अलग रूप से यर्थात होते हों तो इस की कुछ दशाएं होगीं : वह गुण जिस के लिए होगें वह वस्तु ईश्वर के अस्तित्व के भीतर होगी और ऐसी दशा में यह आवश्यक होगा ईश्वर का अस्तित्व कई भागों से बनने वाली वस्तु हो जाए और यह हम पहले ही सिद्ध चुके हैं कि ऐसा होना संभव नहीं है। या दूसरी दशा यह हो सकती है कि यह गुण जिस वस्तु पर यर्थात होते हैं वह ईश्वर के अस्तित्व से बाहर की वस्तु होगी तो फिर अगर वह ईश्वर के अस्त्तिव से बाहर होगी तो या तो आत्मभू होगी या फिर स्वयंभू नहीं होगी । अगर स्वयभं होगी तो ईश्वर के अतिरिक्त दूसरी वस्तु ,चाहे वह गुण ही क्यों न हो , स्ंवभू हो जाएगी और हम सिद्ध कर चुके हैं कि स्वभूं ही ईश्वर होता है तो इस प्रकार से सीधे रूप से अनेकेश्रवाद को मानना पड़ेगा जो निश्चित रूप से गलत है और एकेश्वरवाद में आस्था रखने वाला कोई व्यक्ति यह दशा स्वीकार नहीं करेगा ।

किंतु अगर गुणों के लिए यह माना जाए कि वह स्वयभं नहीं हैं तो फिर इस का अर्थ यह होगा कि ईश्वर ने, जो स्वंय स्वयभं है, अपने भीतर इन गुणों के न होते हुए उन्हें पैदा किया है और फिर उन गुणों को ग्रहण किया है। उदाहरण स्वरूप ईश्वर जीवित होने का गुण नहीं रखता था फिर उस ने जीवंत होने का गुण पैदा किया और फिर उसे ग्रहण किया और इस प्रकार से वह जीवित हुआ और इसी प्रकार ज्ञान व शक्ति जैसे उस के गुण। जब कि यह संभव ही नहीं है कि रचयता कारक , स्वंय ही अपनी रचनाओं के गुणों का

स्वामी न हों और इस से अधिक बुरी बात तो यह होगी कि इस दशा में वह अपनी पैदा की हुई वस्तु की सहायता से जीवन ज्ञान व शक्ति जैसे गुण प्राप्त करेगा ।

इस प्रकार की धारणाओं के गलत सिद्ध होने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर के गुण एक दूसरे और स्वंय उस के अस्तित्व से भिन्न नहीं हैं बल्कि सब के सब ऐसे अर्थ हैं जो एकल अस्तित्व अर्थात ईश्वर से निकले हुए हैं ।

### 4. कार्यो में एकेश्वरवाद

एकेश्वरवाद की चौथी परिभाषा , कार्यो में होती है और इस का अर्थ यह होता है कि ईश्वर को अपने काम करने के लिए किसी भी व्यक्ति या वस्तु की आवश्यकता नहीं होती और कोई भी उस की किसी भी प्रकार से सहायता नहीं कर सकता ।

यह बात मूल रचयता कारक की विशेषता अर्थात सारी रचनाओं के उस पर निर्भर होने के अर्थ के दृष्टिगत प्रमाणित होती है क्योंकि इस प्रकार के कारक की रचना , अपने पूरे अस्तित्व के साथ अपने कारक पर निर्भर होती है और किसी भी प्रकार से स्वाधीन नहीं होती ।

दूसरे शब्दों में : जिस के पास जो कुछ भी है वह उसी की दी हुई शक्ति व सामर्थ के बल पर है और किसी भी वस्तु पर स्वामित्व और हर प्रकार की क्षमता व शक्ति का स्रोत ईश्वर है । ठीक उसी प्रकार से जैसे दास के स्वामित्व में रहने वाली वस्तुएं उस के स्वामी की होती हैं और दास को उसे प्रयोग करने की अनुमति होती हैं तो फिर ऐसी दशा में यह कैसे संभव है कि ईश्वर को उन लोगों की सहायता की आवश्यकता हो जिन का अस्तित्व और जिन के पास मौजूद हर वस्तु स्वयं उस की न होकर ईश्वर की ही हो ।

### 5. स्वाधीन प्रभाव

यह एकेश्वरवाद की पॉचंवी विशेषता है और इस का अर्थ यह होता है कि ईश्वर की रचनाएं अपने कामों में भी स्वाधीन नहीं है बल्कि उन्हें ईश्वर की

आवश्यकता होती है और वह एक दूसरे पर जो प्रभाव डालती हैं उस के लिए भी उन्हें ईश्वर की आवश्कता होती है और उसी की अनुमति से यह संभव होता है ।

वास्तव में जो स्वाधीन रूप से और बिना किसी अन्य की सहायता और आवश्यकता के हर स्थान पर हर वस्तु को प्रभावित करता है वह वही ईश्वर है और दूसरों के प्रभाव और उन का कारक होना उसी की दी हुई शक्ति के बल पर संभव होता है ।

इसी आधार पर कुरआन मजीद, प्रकृतिक कारकों के प्रभावों को ईश्वर से संबंधित बताता है उदाहरण स्वरूप कुरआने मजीद ने वर्षा , पेड़ पौधों का उगना , पेड़ों में फल आदि जैसे कामों को भी उसी से संबंधित बताया है और इस बात पर आग्रह करता है कि लोग , इस संबधं को , कि जो प्रकृतिक कारकों और ईश्वर के मध्य होता है , समझें और उसे स्वीकार करें और सदैव ही उस पर ध्यान दें ।

इस बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण पेश किया जा सकता है : उदाहरण स्वरूप अगर किसी कंपनी का मालिक किसी कर्मचारी को कोई काम करने का आदेश देता है या कोई काम , किसी कर्मचारी द्वारा किया जाता है तो वास्तव में उसे कंपनी और उस के मालिक का काम समझा जाता है बल्कि बौद्धिक रूप से उस काम का आदेश देने वाला करने वाले से अधिक ज़िम्मेदार होता है ।

## दो महत्वपूर्ण निष्कर्ष

ईश्वर के कामों में एकेश्वरवाद के विश्वास का परिणाम यह है कि मनुष्य , ईश्वर के अतिरिक्त किसी वस्तु या किसी व्यक्ति को उपासना योग्य न समझे क्योंकि जैसा कि पहले बताया जा चुका है , उपासना योग्य वही होता

है जो पैदा करने वाला और पालनहार हो दूसरे शब्दों में ईश्वर होने का अर्थ पालनहार व पैदा करने वाला होना है ।

दूसरी ओर एकेश्वरवाद के वर्णित अर्थ का परिणाम यह है कि मनुष्य का पूरा भरोसा ईश्वर पर रहे और हर काम में केवल उसी पर भरोसा करे और केवल उसी से सहायता मॉंगे और उस के अतिरिक्त न तो किसी से डरे और न ही किसी से कोई आशा रखे यहॉं तक कि अगर उस की इच्छा पूर्ति के भौतिक कारक व परिस्थितियॉं मौजूद न हों तब भी वह निराश न हो क्योंकि ईश्वर असाधारण मार्गों से भी उस की इच्छा पूरी कर सकता है ।

इस प्रकार का मनुष्य ईश्वर की विशेष कृपा का पात्र बनता है और उस के मन को अभूतपूर्ण शांति मिलती है जैसा कि कुरआन में है कि जान लो ईश्वर के मित्रों को न डर है और न ही व दुखी होते हैं ।1

यह दो परिणाम कुरआने मजीद के पहले सूरे की इस आयत में कि जिसे हर मुसलमान दिन में कम से कम पॉंच बार दोहराता है , मौजूद हैं : हम तेरी उपासना करते हैं और तुझ से ही सहायता चाहते हैं ।

## एक शंका का निवारण

यहॉं पर संभव है कि मन में यह शंका पैदा हो कि अगर एकेश्वरवाद का अर्थ यह है कि मनुष्य ईश्वर के अतिरिक्त किसी से भी सहायता न मॉंगे तो फिर ईश्वर के विशेष दासों और दूतों से भी सहायता नहीं मॉंगी जा सकती ।

इस शंका का उत्तर यह है कि ईश्वर के विशेष दासों से सहायता मॉंगना , अगर इस विचार के साथ हो कि वे लोग ईश्वर की अनुमति के बिना स्वाधीन रूप से मॉंगने वाले की इच्छापूर्ति कर सकते हैं तो इस प्रकार की सहायता मॉंगना , एकेश्वरवाद के विपरीत होगा किंतु अगर मन में यह विचार हो कि ईश्वर ने इन विशेष दासों को अपनी कृपा तक पहुँचने का साधन बनाया है तो फिर यह काम न केवल यह कि एकेश्वरवाद के विपरीत नहीं है

बल्कि एकेश्वरवाद , उपासना और आज्ञापालन ही होगा क्योंकि यह काम वह ईश्वर के आदेश के अनुसार करेगा ।

किंतु जहॉ तक इस बात का प्रश्न है कि ईश्वर ने क्यों इस प्रकार के साधन बनाए हैं? और लोगों को इन का हवाला देने और इन्हें मध्यस्थ बनाने का क्यों आदेश दिया है ? तो इस के उत्तर में कहा जा सकता है कि इस के कई कारण हैं जिन में से कुछ इस प्रकार हैं : योग्य व ईश्वर के प्रिय लोगों का परिचय, दूसरे लोगों को ऐसी उपासना के लिए प्रोत्साहित करना जिस के बाद वे इस प्रकार के स्थान तक पहुँच सकते है। अपनी उपासना और धर्म प्रतिबद्धता के परिणाम में मनुष्य के भीतर अंह व घमंड की भावना को रोकना। जैसा कि पैगम्बरे इस्लाम के परिजनों की प्रेम परिधि से बाहर रहने वालों के साथ हुआ है।

## प्रश्न

1. एकेश्वरवाद का क्या अर्थ है ?
2. गुणों में एकेश्वरवाद का क्या तर्क है ?
3. कार्यो में एकेश्वरवाद को किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है?
4. स्वाधीन रूप से प्रभाव की शक्ति में एकेश्वरवाद का क्या अर्थ है ?
5. अंत में एकेश्वरवाद के दो परिणामों से क्या निष्कर्ष निकलता है ?
6. क्या ईश्वर के विशेष दासों को साधन बनाना एकेश्वरवादी विचार धारा के विपरीत है ? क्यों ?
7. ईश्वर ने कुछ विशेष लोगों को अपने तक पहुँचने का साधन बनाया है इस के कारण बताएं ।

अटठारहवाँ पाठ

# विवशता व स्वछंदता

- भूमिका
- स्वछंदता का अर्थ
- विवशता की विचार धारा रखने वालों की शंकाओं का निवारण

## भूमिका

जैसा कि पिछले पाठ में संकेत किया गया है कि स्वाधीन प्रभाव के अर्थ में एकेश्वरवाद , ऐसा महत्वपूर्ण विषय है जो मनुष्य की रचना में अत्याधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और इसी लिए कुरआने मजीद ने इस विषय पर बहुत अधिक बल दिया है तथा विभिन्न प्रकार से इस का वर्णन करके इस की सही समझ की भूमिका प्रशस्त की है तथा इस के साथ ही हर काम को ईश्वर की इच्छा व अनुमति पर निर्भर बताया है ।

किंतु इस बात को सही तरह से समझने के लिए एक ओर से बौद्धिक व वैचारिक विलक्षणता व विकास चाहिए तथा दूसरी ओर , सही रूप से इस के वर्णन की भी आवश्यकता है । यही कारण है कि जिन लोगों की बुद्धि पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुई है या जिन लोगों ने पैगम्बरे इस्लाम के परिजनों की शिक्षाओं और कुरआन मजीद की सही समीक्षा करने वालों से दूरी की है वे इस मार्ग में पथभ्रष्ट हो गये और इस का अर्थ हर प्रकार के प्रभाव को ईश्वर से संबंधित समझने लगे और कुरआने मजीद की बहुत सी स्पष्ट आयतों के विपरीत , कारकों व साधनों के लिए हर प्रकार के प्रभाव डालने की शक्ति का इन्कार कर दिया और यह दर्शाने का प्रयास किया कि उदाहरण स्वरूप ईश्वर की शैली व इच्छा यह है कि आग की उपस्थिति में , वह गर्मी पैदा करे या जब कोई खाना खाए या पानी पीए तो ईश्वर उस के भीतर भूख व प्यास को

समाप्त कर दे और आग , खाना और पानी का , गर्मी पैदा करने या भूख व प्यास मिटाने में कोई प्रभाव नहीं है।

इस भ्रांति व गलत विचारधारा के कुप्रभाव उस समय प्रकट होते हैं कि जब मनुष्य के कामों और उस की जिम्मदारियों के बारे में हम बात करते हैं अर्थात इस विचारधारा का अर्थ यह होता है कि मनुष्य के काम भी सीधे रूप से ईश्वर से संबंधित होते हैं और कार्य तथा मनुष्य के मध्य, कर्ता का जो संबंध है वह पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है इस स्थिति में कोई भी अपने कामों का ज़िम्मेदार नहीं होता ।

दूसरे शब्दों में : इस गलत विचाराधारा का एक परिणाम यह होगा कि फिर मनुष्य के किसी काम में उस की इच्छा का कोई प्रभाव नहीं होगा जिस के परिणाम स्वरूप मनुष्य अपने कामों का जिम्मेदार भी नहीं होगा और यह मनुष्य की सब से महत्वपूर्ण विशेषता को नकारने के समान होगा तथा इस प्रकार से हर वस्तु , हर कानूनी व्यवस्था खोखली हो जाएगी और धर्म व धार्मिक शिक्षाओं का भी कोई अर्थ नहीं रह जाएगा । क्योंकि अगर मनुष्य को अपने कार्यो में किसी प्रकार का अधिकार नहीं होगा तो फिर दायित्व व धार्मिक शिक्षाओं की प्रतिबद्धता तथा पाप व पुण्य का कोई अर्थ ही नहीं निकलता बल्कि इस से तो पूरी व्यवस्था ही पर प्रश्न चिन्ह लग जाएगा क्योंकि जैसा कि कुरआने मजीद की विभिन्न आयतों से भी पता चलता है कि इस सृष्टि की रचना का उद्देश्य , मनुष्य की रचना की भूमिका तैयार करना है ताकि वह अपनी इच्छा से किए जाने वाले अपने कामों द्वारा ईश्वर की उपासना करे और इस प्रकार से परिपूर्णता व ईश्वर से निकटता का महान पारितोषिक प्राप्त करे किंतु अगर मनुष्य के पास कोई अधिकार नहीं होगा और वह हर काम विवशता और कठपुतली की भॉति ईश्वरीय आदेश से करता होगा तो फिर उसे किसी भी प्रकार से इनाम या पाप व पुण्य प्राप्त करने का अधिकार नहीं होगा जिस से सृष्टि का उद्देश्य ही गलत हो जाएगा और पूरा संसार एक कठपुतली के खेल की भॉति होकर रह जाएगा कि जहॉ मनुष्य कठपुतली की भॉति चलता

फिरता और काम करता है किंतु उस के कुछ कामों पर उसे दंड दिया जाता है और कुछ कामों पर इनाम!

इस प्रकार की विचारधारा का मुख्य कारण, अत्याचारी सरकारों के राजनीतिक उद्देश्य रहे हैं क्योंकि यह सरकारें इस प्रकार की विचारधारा द्वारा , अपने गलत कार्यों का औचित्य दर्शा सकती थीं और अज्ञानी लोगों को अपने वर्चस्व व राज को स्वीकार करने तथा उन्हें प्रतिरोध व संघर्ष को रोकने पर विवश करती थीं। इसी लिए इस विचारधारा को राष्ट्रों को भ्रमित करने का मुख्य कारक माना जा सकता है।

दूसरी ओर , कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्हें इस विचारधारा की कमजोरियों का पता चल गया था किंतु न तो उन में पूर्ण एकेश्वरवाद पर विश्वास था और इस विचारधारा को नकारने की क्षमता व ज्ञान था और न ही उन्हों ने पैगम्बरे इस्लाम के परिजनों की शिक्षाओं से लाभ उठाया इसी लिए ऐसे लोगों ने उस विचारधारा के विपरीत मार्ग अपनाते हुए यह मान लिया कि मनुष्य का हर काम पूर्ण रूप से उसी के वश में होता है और उस के किसी काम में ईश्वर का कोई प्रभाव नहीं होता जो स्वंय एक प्रकार की गलत विचारधारा है और इस के भी बहुत से कुप्रभाव हैं ।

किंतु जिन लोगों में इस विषय को समझने की पर्याप्त योग्यता थी और उन्हों ने कुरआन के सही समीक्षकों व ज्ञानियों से भी परिचय प्राप्त किया था वे इस प्रकार की भ्रांतियों से बचे रहे। इन लोगों ने एक ओर तो ईश्वर की इच्छा व अनुमति के दायरे में अपने कामों के लिए अपनी इच्छा व अधिकार को स्वीकारा और इन कामों के लिए स्वंय को ज़िम्मेदार माना तथा दूसरी ओर सर्वोच्च स्थान पर ईश्वर के अनन्त अधिकार को भी समझा ।

पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के हवाले से इतिहास में आया है कि उन्हों ने इस संदर्भ में बहुत सी बातों का वर्णन किया है और बहुत से रहस्यों से पर्दा उठाया है किंतु इसी के साथ पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम और उन के परिजनों के ऐसे कथन भी

मिलते हैं जिन में वैचारिक योग्यता न रखने वाले और कम ज्ञानी लोगों को इस बारे में अधिक चिन्तन व अध्ययन करने से रोका गया है ताकि वे पथभ्रष्ट न हो सकें ।

बहरहाल इस चर्चा के कई आयाम हैं किंतु यहॉ पर सारे आयामों का वर्णन नहीं किया जा सकता। इसी लिए इस विषय के महत्व के दृष्टिगत हमारा प्रयास है कि आवश्यकता अनुसार स्पष्ट रूप से संक्षेप में इस विषय पर चर्चा करें किंतु इस के साथ ही यहॉ पर हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि दर्शन व तर्क के विषयों को समझने के लिए संयम की बहुत आवश्कयता होती है।

## अधिकार व स्वछंदता की व्याख्या

निर्णय लेने व चयन करने की शक्ति , उन विषयों में से है जिन पर मनुष्य को पूरा भरोसा है क्योंकि इस वस्तु को हर व्यक्ति अपने आभास द्वारा अपने भीतर महसूस करता है। जैसा कि हर व्यक्ति अपनी अन्य मनोदशाओं को जानता है यहॉ तक कि जब उसे किसी वस्तु के बारे में शंका होती है तो भी उसे अपने भीतर के ज्ञान द्वारा अपने अंदर शंका की उपस्थिति का ज्ञान होता है और अपने भीतर शंका की उपस्थिति के बारे में उसे किसी प्रकार की शंका नहीं रहती ।

इसी प्रकार हर कोई अपने भीतर ज़रा सा ध्यान देने के बाद यह समझ जाता है कि वह बात कर सकता है या नहीं कर सकता या अपने हाथ को हिला सकता है या नहीं हिला सकता या खाना खा सकता है या नहीं खा सकता आदि ।

किसी काम को करने का फैसला , कभी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है उदाहरण स्वरूप एक भूखा व्यक्ति खाने का फैसला करता है या प्यासा व्यक्ति पानी पीने का का इरादा करता है किंतु कभी कभी

मनुष्य का इरादा और फैसला बौद्धिक इच्छाओं की पूर्ति और महान मानवीय आंकाक्षाओं की पूर्ति के लिए होता है जैसा कि एक रोगी स्वास्थ्य लाभ के लिए कड़वी दवाएं पीता है और स्वादिष्ट खानों से परहेज़ करता है या अध्ययन करने वाला और शिक्षा प्राप्त करने वाला व्यक्ति ज्ञान प्राप्ति और वास्तविकताओं की खोज के लिए , भौतिक सुखों की ओर से ऑंखे मूँद लेता है और अपने इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए बहुत सी कठिनाईयों को सहन करता है। या साहसी सैनिक अपने महान लक्ष्य के लिए अपने प्राण भी न्योछावर कर देता है।

वास्तव में , मनुष्य का महत्व उस समय प्रकट होता है जब उस की विभिन्न इच्छाओं के मध्य टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाए और वह नैतिक गुणों और आत्मिक परिपूर्णताओं तक पहुँचने तथा आध्यात्मक स्थान प्राप्त करने के लिए अपनी शारीरिक व तुच्छ इच्छाओं की अनदेखी करता है । और यह तो स्पष्ट है कि हर वह काम जो जितने मज़बूत इरादे और चेतनापूर्ण चयन के साथ किया जाता है वह आत्मा के विकास या पतन में उतना ही प्रभावी होता है तथा दंड या पुरस्कार का उसे उतना ही अधिक अधिकार होता है ।

यद्यपि शारीरिक इच्छाओं के सामने प्रतिरोध की क्षमता , सब लोगों में हर वस्तु के प्रति समान नहीं होती किंतु हर व्यक्ति थोड़ा बहुत ईश्वर की इस देन अर्थात स्वतंत्र इरादे का स्वामी होता ही है और जितना अभ्यास करता है उस की यह क्षमता उतना ही अधिक बढ़ती जाती है।

इस आधार पर , मनुष्य में इरादे की उपस्थिति के बारे में तो कोई शंका नहीं है और इस प्रकार की स्पष्ट व महसूस की जाने वाली भावना के बारे में तो किसी प्रकार शंका नहीं करनी चाहिए जैसा कि हम ने इशारा किया इरादे और स्वतंत्रता की उपस्थिति एक स्पष्ट सिद्धान्त के रूप में सभी ईश्वरीय धर्मों में और नैतिक मतों में स्वीकार की गयी है और उस के बिना ,

कर्तव्य ,दायित्व , आलोचना , दंड अथवा पुरस्कार आदि की गुंजाईश ही नहीं रहेगी ।

इस प्रकार की स्पष्ट वास्तविकता के इन्कार और मनुष्य में अधिकार विहीनता के रूझान का मूल कारण वह शंकाएं हैं जिन का निवारण किया जा सकता है ताकि इस संदर्भ में किसी प्रकार का संदेह व शंका न रह जाए । इसी लिए यहाँ पर हम कुछ मुख्य शंकाओं का निवारण करेगें ।

## अधिकारविहीनता शंका और निवारण

इस संदर्भ में मुख्य शंकाएं जो पेश की जाती हैं इस प्रकार हैं :

1. मनुष्य का इरादा आंतरिक रुचियों व रुझानों में गतिशीलता के बाद बनता है और इन रुचियों और रुझानों का पैदा होना न तो मनुष्य के अधिकार में है और न ही बाहरी कारकों द्वारा उन में उबाल आना उस के बस में है । इस लिए अधिकार व चयन की गुंजाइश ही नहीं बचती ।

इस शंका का उत्तर यह है कि रुझान या रूचि पैदा होना इरादे और फैसले की भूमिका प्रशस्त करता है , किसी काम के इरादे को नहीं बनाता कि जिसे रुचि व रुझान का ऐसा परिणाम माना जाए जो मनुष्य से प्रतिरोध की क्षमता ही छीन लेता हो इस का प्रमाण यह है कि बहुत से अवसरों पर , मनुष्य में किसी काम को करने या न करने के बारे में भी शंका पैदा हो जाती है और ऐसे अवसर पर फैसले के लिए उसे चिंतन , विचार और हित व अहित के बारे में सोचने की आवश्यकता होती है और कभी कभी तो कोई काम मनुष्य बड़ी कठिनाइ से करता है ।

दूसरी शंका यह है कि ज्ञान विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में प्रमाणित विषयों के आधार पर जेनेटिक कारकों तथा विशेष प्रकार के आहारों और दवाओं के कारण हार्मोन्ज़ में स्रव तथा सामाजिक व आस पास के वातावरण जैसे बहुत से कारक मनुष्य में किसी काम के इरादे को बनाने में प्रभावी होते हैं

और मनुष्यों के व्यवहार में अंतर इन तत्वों और कारकों में अंतर के अनुसार होता है। जैसा कि धार्मिक शिक्षाओं में भी इस विषय की एक सीमा तक पुष्टि की गयी है । इस आधार पर , मनुष्य के कामों को पूर्ण रूप से स्वतंत्रता के साथ किए गये इरादे का ही परिणाम नहीं माना जा सकता ।

इस शंका का निवारण यह है कि स्वंतत्र इरादे व इच्छा को स्वीकार करने का अर्थ यह नहीं है कि उस में यह तत्व प्रभावी नहीं होते बल्कि इस का अर्थ यह है कि इन सारे तत्वों व कारकों की उपस्थिति के साथ , मनुष्य प्रतिरोध कर सकता है और विभिन्न प्रकार की भावनाओं व रुचियों की भीड़ में से किसी एक का चयन कर सकता है ।

यद्यपि कभी कभी इन कारकों में से कुछ की शक्ति उन कार्यो को करने से रोकती है जो उन की दिशा से अलग हों किंतु इस के बदले में इस प्रकार का प्रतिरोध व चयन परिपूर्णता के लिए अधिक प्रभावी होता है और इस से पारितोषिक में भी वृद्धि होती है जैसा कि अत्याधिक क्रोध तथा अन्य परिस्थितियॉ किसी अपराध के दंड में कमी का कारण बनती हैं ।

तीसरी शंका यह है कि ईश्वर विश्व की हर वस्तु से यहॉ तक कि मनुष्य के समस्त कार्यो से , इस से पूर्व कि वह कोई काम करें , अवगत होता है , और ईश्वर के ज्ञान में गलती नहीं हो सकती तो फिर सारी घटनाएं ईश्वर के सदैव से रहने वाले ज्ञान के अनुसार घटित होती हैं और इस के विपरीत कुछ नहीं हो सकता , इस आधार पर मनुष्य के अधिकार व चयन का कोई प्रश्न ही नहीं है ।

इस शंका का उत्तर यह है कि ईश्वर हर घटना का जिस प्रकार से वह घटित होती हैं , ज्ञान रखता है और मनुष्य का काम भी , उस के अधिकार के दायरे में रहते हुए ईश्वर के ज्ञान में होता है , तो फिर अगर इस में ज़बरदस्ती की बात होगी अर्थात मनुष्य वह काम करने पर विवश होगा तो फिर यह ईश्वर के ज्ञान के विपरीत होगा क्योंकि ईश्वर का ज्ञान मुनष्य के उस काम से

संबंधित है जो वह अधिकार व चयन शक्ति के साथ करता है या करने वाला है।

उदाहरण स्वरूप ईश्वर को ज्ञान है कि एक व्यक्ति अमुक परिस्थिति में कोई काम करने का निर्णय लेगा और वह काम करेगा , ऐसा नहीं है कि ईश्वर को केवल उस काम के होने का ही ज्ञान होता है और उसे इस बात का ज्ञान नहीं होता कि वह काम कौन सी परिस्थितियों में होगा और उस का करने वाला अपनी इच्छा से नहीं करेगा । तो ईश्वर का सदैव से रहने वाला ज्ञान , मनुष्य के अधिकार व निर्णय शक्ति के विपरीत कदापि नहीं है ।

मनुष्य अपने कामों में विवश है । इस प्रकार का विचार रखने वाले लोगों द्वारा एक अन्य शंका जो पेश की जाती है वह क़िस्मत व भाग्य है जिस के बारे में उन का कहना है कि यह मनुष्य के हाथ में नहीं होता हम अगले पाठों में इस पर भी चर्चा करेगें ।

## प्रश्न

1. मनुष्य अपने कामों में विवश है जैसे विचार के जन्म लेने के कारणों का वर्णन करें।

2. इस विचारधारा के कुप्रभावों की व्याख्या करें ।

3.स्वतंत्र मनुष्य में निर्णय व चयन शक्ति की उपस्थिति का वर्णन करें।

4. क्या मनुष्य की आंतरिक इच्छाएं और रुचियाँ उस की अधिकार व चयन शक्ति के विपरीत हैं ? क्यों

5. जो लोग अधिक क्रोध व विशेष प्रकार की परिस्थितियों में कोई काम करते हैं उन में और अन्य लोगों में क्या अंतर है ?

6. क्या जेनेटिक व वशांणु संबधी विशेषताएं और आस पास का वातावरण मनुष्य को किसी काम पर विवश करता है ? क्यों ?

7. क्या ईश्वर का सदैव से रहने वाला ज्ञान मनुष्य को उस के कामों पर विवश करता है ? क्यों

उन्नीसवाॅं पाठ

# धर्म क्या है ?

- भाग्य का अर्थ
- वैज्ञानिक व व्यवहारिक भाग्य
- भाग्य का मनुष्य के अधिकार से संबधं
- विभिन्न कारकों के प्रभाव
- भाग्य पर विश्वास के प्रभाव

## भाग्य अर्थात क़ज़ा व क़दर का अर्थ

क़दर का अर्थ मात्रा और तक़दीर का मतलब नापना और किसी वस्तु की मात्रा का अन्दाज़ा लगाना या किसी वस्तु को विशेष मात्रा में बनाना होता है । तथा कज़ा का मतलब किसी काम को पूरा करना और फैसला करना होता है कि जो एक प्रकार से किसी काम को अंत तक पहुॅचाने के अर्थ में होता है । कभी कभी इन दोनों शब्दों के अर्थ तकदीर अर्थात भाग्य होते हैं ।

ईश्वर द्वारा निश्चित भाग्य या क़िस्मत का अर्थ यह है कि ईश्वर ने हर वस्तु व प्रक्रिया के लिए एक मात्रा व सीमा निर्धारित की है तथा उस के लिए विशेष स्थान व काल दृष्टिगत रखा है जो धीरे धीरे प्रभावित करने वाले कारकों के परिणाम स्वरूप अपने अंत तक पहुॅचती है। किंतु क़ज़ा का अर्थ किसी प्रक्रिया की भूमिका व कारक उपलब्ध होने के बाद उस प्रक्रिया का पूरा होना है जो उसे अंतिम चरण तक पहुॅचा दे ।

इस व्याख्या के आधार पर , भाग्य का चरण , क़ज़ा के चरण से पहले और धीरे धीरे आता है और भाग्य की कुछ भूमिकाएं और कारक बहुत बाद में , कुछ थोड़े विलंब से और कुछ शीघ्र ही सामने आते हैं और कुछ विशेष कारक व परिस्थितियों के बदलने से , वह भी बदल जाते हैं । उदाहरण स्वरूप माता की कोख में शिशु धीरे धीरे अपनी परिपूर्णता के चरण को पूरा करता हुए एक पूर्ण शिशु में बदलता है और अंतिम चरण तक पहुॅचने के लिए उसे कई चरणों से गुज़रना पड़ता है जिस के लिए विशेष परिस्थितियां और काल भी होते हैं

किंतु किसी एक चरण में उस का नष्ट हो जाना तक़दीर व भाग्य कहा जाता है किंतु क़ज़ा की स्थिति में यह सारे कारक व भूमिकाएं एक साथ सामने आती हैं और उस के परिणाम में किसी प्रकार का बदलाव संभव नहीं होता । जैसा कि ईश्वर ने कुरआन में कहा है : और वह जब किसी काम का निर्णय करता है तो फिर केवल उस से कहता है हो जा और वह हो जाता है 1

किंतु जैसा कि संकेत किया गया कभी कभी तक़दीर व क़ज़ा को एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है इस दशा में निश्चित और अनिश्चित भागों में बॉटा जाता है और वह इस प्रकार से है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम और उन के परिजनों के कथनों के अनुसार, दुआएं क़िस्मत और निर्धारित भाग्य को बदल देती हैं इसी प्रकार से दान व दीन दुखियों की सहायता तथा माता पिता के साथ सुव्यवहार और निकटवर्ती परिजनों से मेल जोल भाग्य को बदल देता है।

## ज्ञानिक व व्यवहारिक भाग्य

कभी ईश्वर द्वारा निर्धारित भाग्य, किसी घटना के कारकों और भूमिकाओं के प्रशस्त होने और उस के निश्चित रूप से घटित होने के प्रति उस के ज्ञान के अर्थ में होता है इसे ज्ञानिक भाग्य कहा जाता है और कभी कभी यह, प्रकिया व घटना के चरणबद्ध रूप से अपने परिणाम तक पहुॅचंने को ईश्वर से संबंधित बताने के अर्थ में प्रयोग होता है और इसे व्यवहारिक भाग्य कहा जाता है।

पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम और उन के पवित्र परिजनों तथा महान मार्गदर्शकों के कथनों से जो बात समझ में आती है उस के अनुसार हर घटना के बारे में ईश्वर का ज्ञान , जिस प्रकार से वह घटित होगी , ईश्वर द्वारा बनाए गयी एक वस्तु पर, जिसे लौहे महफ़ूज़ कहा जाता है , अंकित है और जो भी ईश्वर की अनुमति से उस से संपर्क स्थापित

करने में सक्षम हो जाता है उसे अतीत व भविष्य की सभी घटनाओं का पूरे ब्योरे के साथ ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार जो इस सीमा तक न पहुँचते हुए निचले चरणों के लौहे महफ़ूज़ तक ही रह जाता है वह भी विभिन्न घटनाओं का आधा अधूरा और सर्शत रूप से ज्ञान प्राप्त कर लेता है इस चरण पर जिन लोगों को घटनाओं का ज्ञान होता है वह परिवर्तन योग्य होती हैं और उन्हें पूरे ब्योरे के स्थान पर सीमित रूप से उन का ज्ञान होता है और शायद कुरआने मजीद की यह आयत कि ईश्वर जो चाहता है मिटाता है और जो चाहता है स्थिर रखता है और उस के पास मुख्य किताब है ,[1] इसी अर्थ में है । अनिश्चित भाग्य में बदलाव को महान मार्गदर्शकों के कथनों में बेदाअ[2] कहा गया है ।

बहरहाल , भाग्य के बारे में ईश्वर के ज्ञान पर विश्वास में उन शंकाओं के अतिरिक्त जो ईश्वर के ज्ञान के बारे में की जाती हैं , और किसी प्रकार की शंका अलग से पेश नहीं की जाती और हम ने पिछले पाठ में , ज्ञान से संबंधित शंकाओं का निवारण किया है ।

किंतु व्यवहारिक भाग्य पर विश्वास, विशेषकर निश्चित भाग्य पर विश्वास पर कई प्रकार की आपत्तियां की जाती हैं और इस संदर्भ में शंकाएं पेश की जाती है यहॉ पर हम उस के उत्तर देगें हॉलाकि इस प्रकार की शंकाओं का उत्तर स्वतंत्र प्रभाव के अर्थ में एकेश्वरवाद की चर्चा के दौरान किसी सीमा तक दिया जा चुका है।

## कज़ा व कदर का मनुष्य के अधिकार से संबधं

यह तो पता चल ही चुका है कि ईश्वर के व्यवहारिक भाग्य पर विश्वास रखने का मतलब यह है कि हम विभिन्न प्रकियाओं और घटनाओं को,

---

[1] सूरए आले इमरान – आयत 47 , सूरए बक़रह– आयत 117 आदि

[2] इस का अर्थ होता है कि ईश्वर अपने इरादे में परिवर्तन करे बिना इस के कि उस का पहले के इरादे में कोई त्रुटि हो। ईश्वरीय ज्ञान में यह चर्चा अत्याधिक जटिल समझी जाती है।

उन के आंरभ से लेकर अंत तक के सभी परिवर्तनों , बल्कि उन की भूमिका के प्रशस्त होने से लेकर उस के जन्म लेने और उस के अंत तक के सभी चरणों को ईश्वर की सूझ बूझ और तत्वदर्शिता के अंतर्गत समझें और उस की भूमिका के प्रशस्त होने , उस के जन्म लेने और अंत तक पहुँचने को ईश्वर के इरादे से संबंधित जानें ।

दूसरे शब्दों में :

जैसा कि हर वस्तु की उपस्थिति , ईश्वर की अनुमति और इच्छा पर निर्भर होती है और उस की अनुमति के बिना किसी भी वस्तु का अस्तित्व संभव ही नहीं है उसी प्रकार हर वस्तु की उत्पत्ति को भी ईश्वर द्वारा निर्धारित भाग्य और सीमा व मात्रा से संबंधित समझें और उस के बिना , कोई भी वस्तु अपने विशेष रूप व आकार व मात्रा तक नहीं पहुँच सकती और न ही अपने अंत तक पहुँच सकती है । और इस प्रकार के संबधं का वर्णन वास्तव में प्रभाव में स्वतंत्रता के अर्थ में एकेश्वरवाद की क्रमबद्ध शिक्षा है कि जो एकेश्वरवाद की उच्च चरणों मे से है और मनुष्य की रचना व आध्यात्म में इस विश्वास की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है।

किंतु विभिन्न घटनाओं और प्रक्रियाओं को ईश्वर की अनुमति पर निर्भर करना बल्कि उस की इच्छा पर निर्भर बताना , अपेक्षा कृत सरल और अधिक समझ में आने वाली बात है ।

इसी लिए किसी घटना व प्रक्रिया के अंतिम व निश्चित चरण को ईश्वर द्वारा निर्धारित भाग्य के अनुसार बताना , इस संदर्भ में की जाने वाली बहुत सी शंकाओं के कारण , उस का समझना अधिक कठिन है और इसी लिए इस संदर्भ में अधिक चर्चा व बहस की आवश्यकता है। क्योंकि इस प्रकार के विश्वास को , अपने कामों में मनुष्य के स्वतंत्र व उस के अधिकार और अपने भाग्य को बनाने या बिगाड़ने के अधिकार में विश्वास के साथ रख कर देखना , अत्यन्त कठिन काम है ।इसी लिए इस ज्ञान के बहुत से विशेषज्ञ , जिन्हों ने मनुष्य के कामों को , उस की हर गति को वास्तव में ईश्वर द्वारा निर्धारित

भाग्य से संबंधित बताया है , मनुष्य को अपने कामों में विवश समझने लगे और कुछ अन्य विशेषज्ञ ,जो मनुष्य के उस के कामों में विवश समझने के कुप्रभावों को स्वीकार नहीं कर सके उन्हों ने इस बात से ही इन्कार कर दिया कि मनुष्य के काम ईश्वर द्वारा निर्धारित भाग्य से संबंधित होते हैं और इन दोनों गुटों ने इस संदर्भ में इतिहास में वर्णित उन कथनों के अपनी इच्छा से अर्थ निकाले जो उन की विचार धारा से मेल नही खाते थे । जैसा कि इस विषय से विशेष किताबों में इस बात का विस्तार से वर्णन किया गया है ।

शंका इस बात पर पेश की जाती है कि अगर मनुष्य का काम , वास्तव में उस के अधिकार में है और वह अपने कामों में स्वतंत्र है और हर काम वह अपने इरादे व इच्छा के अंतर्गत करता है तो फिर उसे किस प्रकार से ईश्वर के इरादे व भाग्य से संबंधित बताया जा सकता है ? और अगर मनुष्य के काम ईश्वर द्वारा निर्धारित भाग्य व उस की इच्छा से संबंधित हैं तो उसे किस प्रकार से मनुष्य की इच्छा व इरादे का परिणाम बताया जा सकता है ?

इस आधार पर , इस शंका के निवारण के लिए अर्थात यह मनुष्य की इच्छा व स्वतंत्रता के साथ साथ उस के कामों में ईश्वर की इच्छा व भाग्य के भी शामिल होने को सही दर्शाने और अधिक स्पष्ट करने के लिए किसी एक काम के कई कारक होने के सिद्धान्त के बारे में एक सक्षिप्त चर्चा की आवश्यकता है ताकि यह बात अधिक स्पष्ट हो सके।

## कई कारकों के प्रभावों की क़िस्में

किसी एक प्रक्रिया के लिए कई कारकों की कल्पना की कई दशाएं हैं:

1. कई कारक एक साथ अपना प्रभाव डालें उदाहरण स्वरूप बीज , पानी , व तापमान आदि का एक साथ होना , बीज में कोंपल निकलने और पौधा उगने का कारण बनता है ।

2. प्रत्येक कारक , एक एक करके अपना प्रभाव डाले जैसा कि एक के बाद एक इन्जन चलाने के बाद हवाई जहाज़ उड़ता है ।

3. कई कारकों का प्रभाव एक दूसरे पर निर्भर हो जैसा कि कई गेंदों का एक दूसरे से टकराने या क्रमबद्ध सड़क दुर्घटनाओं में होता है । इस का दूसरा नमूना हाथ हिलाने में मनुष्य के इरादे का प्रभाव , और हाथ के हिलाने का प्रभाव , क़लम के हिलने में और क़लम के हिलने का प्रभाव लिखावट में है। इस प्रकार की प्रक्रिया का स्थायित्व उस के कारकों की संख्या व मात्रा पर बंटा हुआ होता है और इस पूरी प्रक्रिया का हर भाग एक कारक का प्रभाव होता है ।

4. कई कारकों का ऐसा प्रभाव जो अपने से पूर्व के कारक पर निर्भर हो अर्थात इस प्रकार से कि हर कारक का अस्तित्व ही अपने से पहले वाले कारक पर निर्भर हो । यह दशा इस से पूर्व की क़िस्म से भिन्न हैं क्योंकि इस से पूर्व की दशा में क़लम का अस्तित्व हाथ के अस्तित्व पर निर्भर नहीं था और इसी प्रकार हाथ का अस्तित्व , मनुष्य के लिखने के इरादे पर निर्भर नहीं था ।

इन सभी दशाओं में एक घटना के लिए कई कारकों का एक साथ होना , संभव ही नहीं बल्कि आवश्यक है ।और मनुष्य के इच्छा से किए गये कामों में , मनुष्य और ईश्वर दोनों के इरादों का प्रभाव , इसी अंतिम क़िस्म में से है । क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व और उस का इरादा , दोनों ही ईश्वर के इरादे पर निर्भर होता है ।

किंतु जहाँ तक यह कहा जाता है कि एक परिणाम के लिए दो कारकों का अस्तित्व संभव नहीं है उस से आशय मूल रचयता कारक होता है या दो ऐसे कारक कि जो एक साथ एक ही दशा में अपना प्रभाव नहीं डाल सकते बल्कि एक दूसरे के विकल्प के रूप में अपना प्रभाव डालते हैं उदाहरण स्वरूप , इरादे की क्षमता रखने वाले दो कारकों द्वारा एक ही इरादे का अस्तित्व या फिर एकल प्रक्रिया एक सम्पूर्ण कारक का परिणाम कही जाए । तो यह संभव नहीं है ।

## शंका का निवारण

इस भूमिका के साथ यह तो स्पष्ट हो गया कि मनुष्य के स्वेच्छिक कामों को ईश्वर से संबंधित बताना , उन कामों को स्वंय मनुष्य से सबंधित बताने से विरोधाभास नहीं रखता क्योंकि एक संबधं एक दूसरे के बाद और कमबद्ध रूप से होता है न कि एक दूसरे के साथ और समान दशा में ।

दूसरे शब्दों में : किसी काम को मानवीय कारक से संबंधित बताना एक स्तर पर है और फिर उसे ईश्वर के इरादे से संबंधित बताना दूसरे और उच्च स्तर पर है कि जहॉं स्वंय मनुष्य का अस्तित्व और उस पदार्थ का अस्तित्व कि जिस पर वह अपना काम करता है , और उन साधनों का अस्तित्व जिस के द्वारा मनुष्य अपना काम करता है सब के सब ईश्वर से संबंधित होते हैं ।

तो फिर एक सम्पूर्ण कारक के अंतिम भाग के रूप में मनुष्य के इरादे का प्रभाव, सम्पूर्ण कारक के सभी अंशों को ईश्वर से संबंधित बताने के विपरीत नहीं है । क्योंकि ईश्वर ही सृष्टि और मनुष्य के अस्तित्व तथा उस के अस्तित्व के लिए आवश्यक हर वस्तु को अपने हाथ में रखता है और सदैव उसे बाकी रखता है और उस की व्यवस्था करता है तथा एक के बाद दूसरे कारकों और वस्तुओं को पैदा करता है और कोई भी अस्तित्व और कोई भी वस्तु किसी भी दशा में किसी भी काल में उस से आवश्यकतामुक्त नहीं होती और न ही उस के मुकाबले में स्वाधीन व स्वतंत्र होती है । इस आधार पर मनुष्य के स्वेच्छिक कार्यो के लिए भी ईश्वर की आवश्यकता होती है और मनुष्य का कोई भी काम उस के इरादे से बाहर नहीं होता और उस के सभी गुण , सभी विशेषताएं और सीमाएं ईश्वरीय इरादे व भाग्य से संबंधित होती हैं और ऐसा नहीं है कि यह सब कुछ या तो मनुष्य के इरादे से संबंधित होंगीं या फिर ईश्वर के इरादे से। क्योंकि दोनों के इरादे एक दूसरे के बराबर नहीं है बल्कि

मनुष्य का इरादा , उस के अस्तित्व की ही भॉति ईश्वर के इरादे पर निर्भर होता है और ईश्वर का इरादा , मनुष्य के इरादे के व्यवहारिक होने के लिए आवश्यक है। जैसा कि कुरआन मजीद में आया है : **और तुम कुछ चाहते ही नहीं सिवाए इस के कि ईश्वर चाहे जो सारे जगतों का पालनहार है** [1]

## क़ज़ा व क़दर अर्थात भाग्य पर विश्वास के प्रभाव

ईश्वर के क़ज़ा व क़दर अर्थात ईश्वर द्वारा निर्धारित भाग्य व सीमा पर विश्वास ईश्वर की पहचान के महत्वपूर्ण चरण तक मनुष्य को पहुॅचाने के साथ ही साथ बौद्धिक रूप से मनुष्य के विकास का भी कारण समझा जाता है और इस के बहुत से व्यवहारिक प्रभाव हैं जिन में से कुछ की ओर संकेत किया गया है और कुछ अन्य का यहॉ पर वर्णन किया जा रहा है।

जो व्यक्ति विभिन्न घटनाओं को ईश्वर के बुद्धिमत्ता पूर्ण इरादे का परिणाम मानता है , वह दुर्घटनाओं और अप्रिय घटनाओं से डरता नहीं और घटित होने के अवसर पर आपा नहीं खोता और न ही चीख पुकार करता है बल्कि यह समझते हुए कि यह घटना, ईश्वर द्वारा निर्धारित इस व्यवस्था का एक भाग है और यह घटना हितकारी है , खुले मन से उस का स्वागत करता है और संयम व भरोसे व विश्वास जैसी नैतिक विशेषताओं से सुसज्जित होता है।

इसी प्रकार जीवन की खुशियों के अवसर पर आत्ममुग्ध नहीं होता और न ही उन के कारण घंमडी होता है । वह ईश्वर द्वारा प्रदान की गयी नेमतों और उस की कृपाओं को दूसरों पर अपना बड़प्पन दर्शाने और गर्व का कारण नहीं समझता ।

यह वही प्रभाव हैं जिन की ओर इस आयत में संकेत किया गया है :

---

[1] सूरए तकवीर – आयत 29

**धरती पर या तुम पर जब भी कोई मुसीबत आती है तो वह स्पष्ट रूप से किताब में लिखी हुई होती है इस से पूर्व कि वह मुसीबत आए और यह ईश्वर के लिए सरल है ताकि तुम उन वस्तुओं के लिए जिन्हें खो चुके हो निराश न हो और जो कुछ तुम्हें प्रदान किया गया है उस पर प्रसन्न न हो और ईश्वर घंमडी और गर्व करने वालों को पसन्द नहीं करता ।** [1]

इसी के साथ इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि क़ज़ा व क़दर अर्थात भाग्य तथा स्वतंत्र प्रभाव से संबंधित एकेश्वरवाद की गलत समझ, दायित्व निर्वाह से भागने और अत्याचार सहन करने का कारण न बन जाए और हमें जान लेना चाहिए कि कल्याण तथा भाग्य व दुर्भाग्य मनुष्य के स्वेच्छा से किए जाने वाले कामों पर निर्भर है। जैसा कि कुरआन में वर्णन किया गया है कि हर मनुष्य का हित अहित स्वयं उस के कार्यों द्वारा होता है और यह कि मनुष्य को वहीं प्राप्त होता है जिस के लिए वह प्रयास करता है।

[1] सूरए हदीद– 22 व 23

## प्रश्न

1. क़ज़ा व क़दर का अर्थ बताएं ।

2. क़ज़ा व क़दर से आशय क्या है ?

3. किस आधार पर क़ज़ा व क़दर को निश्चित व अनिश्चित जैसे भागों में बॉटा जा सकता है ?

4. बेदाअ क्या है ?

5. ज्ञानिक व व्यवहारिक क़ज़ा व क़दर का वर्णन करें।

6. लौहे महफ़ूज़ और मिट जाने वाली तख्ती तथा उन दोनों के निश्चित व अनिश्चित भाग्य से संबधं का वर्णन करें ।

7. भाग्य व मनुष्य के स्वेच्छिक कार्यो को एक साथ रखने और इस संदर्भ में विशेषज्ञों के मध्य पाए जाने वाले मतभेद का वर्णन करें ।

8. एक परिणाम में कई कारकों के प्रभाव के प्रकारों का वर्णन करें और यह बताएं कि एक परिणाम में किस प्रकार के कई कारक अपना प्रभाव नहीं डाल सकते ।

9. क़ज़ा व क़दर व भाग्य के प्रति शंकाओं का उत्तर दें ।

10 . ईश्वर द्वारा भाग्य निर्धारण अर्थात क़ज़ा व क़दर पर विश्वास रखने के परिणामों का वर्णन करें ।

बीसवाँ पाठ

# ईश्वर का न्याय

- भूमिका
- न्याय का अर्थ
- ईश्वरीय न्याय का प्रमाण
- कुछ शकांओं का निवारण

## भूमिका

पिछले पाठों में हम ने बहुत से विषयों में ईश्वर से संबंधित ज्ञान के विशेषज्ञों के मध्य मतभेदों का वर्णन किया है जिन में ईश्वर के इरादे , एकेश्वरवाद , मनुष्य के कार्यों में इच्छा और विवशता आदि का उदाहरण पेश किया जा सकता है । इन सब विषयों में प्रायः विशेषज्ञ संतुलन को स्थापित करने में सक्षम नहीं रहे ।

विशेषज्ञों के दो मुख्य गुटों के मध्य मतभेद का एक अन्य महत्वपूर्ण मुद्दा, ईश्वरीय न्याय का विषय है । इस संदर्भ में शीआ समूदाय का दृष्टिकोण , मोतज़ेला कहे जाने वाले विशेषज्ञों के दृष्टिकोणों से मेल खाता है आरै कुल मिलाकर शीआ व मुतज़ेला गुट को , विशेषज्ञों के अन्य गुट अर्थात अशाएरा के मुकाबले में अदलिया अर्थात न्याय मत रखने वालों के नाम से जाना जाता है । ईश्वरीय ज्ञान में इस विषय की महत्ता के दृष्टिगत इसे शीआ व मोतज़ेला समूदाय में धर्म पर विश्वास के मूल सूत्रों में से समझा जाता है ।

यद्यपि इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि दूसरा गुट अर्थात अशाएरा भी ईश्वर के न्याय को नकारता नहीं और ऐसा नहीं है कि वह लोग ईश्वर को अत्याचारी समझते हैं क्योंकि कुरआने मजीद की बहुत सी स्पष्ट आयतें ईश्वर को अत्याचार से पवित्र बताती हैं बल्कि बहस इस बात पर है कि क्या मनुष्य की बुद्धि बिना धार्मिक शिक्षा के स्वयं ही विभिन्न कार्यों के लिए

विशेष कर ईश्वरीय कार्यों के लिए मापदंड व सिद्धान्त निर्धारित कर सकती और उस के आधार पर कोई काम करना आवश्यक और किसी काम को छोड़ना जरूरी बता सकती है। उदाहरण स्वरूप मनुष्य की बुद्धि यह कहे कि ईश्वर के लिए आवश्यक है कि वह धर्म पर प्रतिबद्ध लोगों को स्वर्ग में और धर्म का इन्कार करने वालों को नर्क में स्थान दे । या यह कि इस प्रकार के निर्णय केवल ईश्वरीय संदेशों और धार्मिक शिक्षाओं के आधार पर ही लिए जा सकते हैं और बुद्धि का इस से कोई संबधं नहीं है ?

तो इस प्रकार से मतभेद का मुख्य बिन्दु , वह है जिसे बौद्धिक अच्छाई व बुराई का नाम दिया गया है किंतु अशाएरा नामक गुट ने इस का इन्कार किया है क्योंकि उन का मानना है कि व्यवहारिक रूप से जो कुछ ईश्वर करता है वह भलाई है और धार्मिक मामलों में जो कुछ ईश्वर आदेश देता है वह अच्छा है ऐसा नहीं है कि चूँकि अमुक काम अच्छा है इस लिए ईश्वर उस का आदेश देता है बल्कि सही यह है कि चूँकि ईश्वर ने अमुक काम करने को कहा है इस लिए वह काम अच्छा है ।

किंतु अदलिया कहे जाने वाले गुट का मानना है कि ईश्वर के आदेश से हटकर भी कामों को अच्छा बुरा कहा जा सकता है और एक सीमा तक मनुष्य की बुद्धि भी कामों में अच्छाई व बुराई को समझ सकती है और ईश्वर को बुरे कामों से दूर बता सकती है यद्यपि इस का अर्थ यह नहीं है कि वह ईश्वर को आदेश दे और उसे कुछ काम करने और कुछ काम न करने पर बाध्य करे बल्कि इस का अर्थ यह है कि अच्छाई बुराई और कामों के मध्य सबंध को मनुष्य की बुद्धि समझती है और बुरे कामों को ईश्वर से दूर जानती है ।

यह तो स्पष्ट है कि इस विषय पर विस्तार पूर्वक चर्चा और अशाएरा द्वारा इस प्रकार के विचार को अपनाने के कारणों का वर्णन यहाँ पर संभव नहीं है । इसी प्रकार यह भी संभव है कि मोतज़ेला कहे जाने वाले गुट के भी इस संदर्भ में बहुत से विचार , कमज़ोरियाँ रखते हों कि जिन की समीक्षा की

आवश्यकता हो किंतु स्वयं बौद्धिक अच्छाई व बुराई पर विश्वास को शीआ समुदाय भी मानता है और कुरआन व महान मार्गदर्शकों के कथन भी इस की पुष्टि करते हैं ।

इस आधार पर , हम यहॉ पर सब से पहले तो न्याय के अर्थ की व्याख्या करेगें और उस के बाद ईश्वर के इस गुण को सिद्ध करने वाले प्रमाणों का वर्णन करेंगें और अंत में इस संदर्भ में प्रस्तुत की जाने वाली मुख्य शकांओं का भी निवारण करेंगें ।

## न्याय का अर्थ

न्याय , जिसे अरबी भाषा में अद्‌ल कहा जाता है उस का अर्थ होता है समान करना , और आम बोलचाल में इस का अर्थ होता है दूसरों के अधिकारों का ध्यान रखना और इस के विपरीत अत्याचार होता है । इस प्रकार से न्याय की परिभाषा शब्दों में की गयी है:

हर अधिकारी को उस का अधिकार प्रदान करना।

इस आधार पर सब से पहले किसी प्राणी की कल्पना करनी होगी कि जिस का अधिकार उसे दिया जाए ताकि इस काम को न्याय और उस के मुकाबले में उस के अधिकार के हनन को अत्याचार व अन्याय कहा जाए किंतु कभी कभी न्याय के अर्थ को विस्तृत कर दिया जाता है । ऐसी दशा में न्याय की परिभाषा होगी :

प्रत्येक वस्तु को उस के सही स्थान पर रखना ।

इस परिभाषा के अनुसार , न्याय , बुद्धिमत्ता व दूरदर्शिता के समान होगा किंतु जहॉ तक इस बात का प्रश्न है कि हर अधिकारी का अधिकार और हर वस्तु का सही स्थान , स्पष्ट होगा बहुत सी बातें की गयी हैं जिन पर दर्शन व अधिकारों की पुस्तकों के कई अध्याय लिखे गये हैं जिन का हम यहॉ पर

विस्तारपूर्वक तो उल्लेख नहीं कर सकते यद्यपि उस के कुछ मुख्य भागों का यहॉ पर हम वर्णन करेंगें ।

यहॉ पर जिस वस्तु की ओर ध्यान देना आवश्यक है वह यह है कि हर बुद्धिमान , यह समझता है कि अगर कोई अकारण किसी अनाथ के हाथ से रोटी छीन ले या किसी निर्दोष व्यक्ति ही हत्या कर दे तो उस ने अत्याचार किया है और बुरा काम किया है । और यह निष्कर्ष , ईश्वर के आदेश पर निर्भर नहीं होता बल्कि जो लोग ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास ही नहीं रखते , वह भी इसी निष्कर्ष तक पहुँचेगें ।

किंतु जहॉ तक इस बात का प्रश्न है कि इस प्रकार के निष्कर्ष तक पहुँचाने का रहस्य क्या है और वह कौन सी शक्ति है जो अच्छाई व बुराई का बोध रखती है तथा इसी प्रकार के बहुत से विषय , तो इन सब पर दर्शन शास्त्र की विभिन्न शाखाओं में चर्चा की गयी है ।

यहॉ पर जो निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि न्याय के लिए एक विशेष और एक सार्वाजनिक जैसे दो अर्थ दृष्टिगत रखे जा सकते हैं । एक तो दूसरों के अधिकारों का सम्मान और दूसरा , सूझ बूझ के साथ कोई काम करना कि जिस में अन्य लोगों के अधिकारों का सम्मान भी शामिल होता है ।

इस आधार पर , न्याय के अर्थ , सारे लोगों या सारी चीज़ों को समान बनाना नहीं है उदाहरण स्वरूप , न्यायी शिक्षक वह नहीं है जो सारे छात्रों को , चाहे व पढ़ते हों या न पढ़ते हों , समान रूप से प्रोत्साहित अथवा दंडित करे । इसी प्रकार न्यायी न्यायधीश वह नहीं होता जो विवादस्पद धन को दोनों पक्षों के मध्य समान रूप से बॉट दे । बल्कि न्यायी शिक्षक वह होता है जो अपने प्रत्येक छात्र को उस की योग्यता के आधार पर प्रोत्साहित अथवा दंडित करे । और न्याय का सम्मान करने वाला न्यायधीश वह होता है जो विवादस्पद धन को उस के सही स्वामी को दे दे ।

इसी प्रकार ईश्वर के न्याय व तत्वदर्शिता का अर्थ यह नहीं है कि वह अपनी सभी रचनाओं को समान रूप से बनाए और उदारहण स्वरूप , मनुष्य

को सींग और पखं आदि भी दे बल्कि उस रचयता की तत्वदर्शिता का अर्थ यह है कि विश्व को ऐसा बनाए कि उस में रहने वालों को अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सके और विभिन्न प्राणी व वस्तुएं , कि जो एक दूसरे पर निर्भर अशं के रूप में होते हैं , ऐसी बनाई गयी हों कि वह अपने अंतिम लक्ष्य के अनुकूल हों इसी प्रकार से ईश्वर की तत्वदर्शिता व सूझबूझ का अर्थ यह है कि हर मनुष्य को उस की योग्यता के अनुसार कर्तव्य दे और फिर उस की स्वेच्छिक गतिविधियों और प्रयायों के दृष्टिगत उस के बारे में निर्णय ले और फिर अन्ततः उसे फल दे या दंडित करे।

## ईश्वरीय न्याय का प्रमाण

जैसा कि बताया गया ईश्वरीय न्याय , एक व्याख्या के अनुसार , ईश्वरीय तत्वदर्शिता का एक भाग है और दूसरी व्याख्या के अनुसार , स्वंय तत्वदर्शिता है और स्वभाविक रूप से उस को प्रमाणित करने की दलील भी वही होगी जो ईश्वर की तत्वदर्शिता व सूझबूझ को प्रमाणित करने के लिए प्रयोग होती है जिस की ओर हम ने ग्यारहवें पाठ में संकेत किया है किंतु यहॉ पर उस की अधिक व्याख्या करेंगें ।

यह तो हम जान चुके हैं कि ईश्वर के पास परम शक्ति व अधिकार है और हर काम वह चाहे तो कर सकता है और जो काम न चाहे उसे उस काम को करने पर कोई उसे बाध्य नहीं कर सकता , न तो उस पर कोई प्रभाव डाल सकता है और न ही उसे बलपूर्वक किसी काम पर विवश किया जा सकता है । किंतु वह हर वह काम नहीं करता जिसे करने में सक्षम है बल्कि केवल वही काम करता है जिसे वह करना चाहता है।

यह भी हम जान चुके हैं कि उस का इरादा निराधार और लक्ष्यहीन नहीं होता , बल्कि जो काम उस की तत्वदर्शिता व गुण के अनुकूल होता है , वह वही काम करता है और अगर उस के गुण किसी कार्य को अनावश्यक

बताते हों तो फिर वह किसी भी दशा में वह काम नहीं करता । और चूँकि ईश्वर सम्पूर्ण परिपूर्णता है इस लिए उस का इरादा भी सदैव ही उस की रचनाओं के हित में होता है और अगर किसी वस्तु अथवा प्राणी के अस्तित्व के लिए , किसी दुष्ट व अभाव का अस्तित्व आवश्यक होगा तो वह बुराई और दुष्टता , ईश्वर के इरादे का मूल लक्ष्य नहीं बल्कि हित पहुँचाने के अंश के रूप में होगा अर्थात इस में भी ईश्वरीय इरादा , उस के हितकारी आयाम से संबंधित होगा ।

तो फिर ईश्वर के परिपूर्ण गुणों के लिए आवश्यक है कि विश्व इस प्रकार से बनाया जाए कि सामूहिक रूप से उस में लोगों का अधिक से अधिक हित हो और यहीं से ईश्वर के लिए तत्वदर्शी होने का गुण सिद्ध होता है ।

इसी आधार पर, ईश्वर ने मनुष्य की रचना का इरादा किया है किंतु ऐसी परिस्थितियों में कि जब मनुष्य का अस्तित्व , भलाई के स्रोत के रूप में लिया जाए और मनुष्य की एक मुख्य विशेषता , उस की स्वतंत्र इच्छा और इरादा है और निसंदेह अधिकार व चयन की शक्ति का स्वामी होना , एक प्रकार से किसी भी अस्तित्व के लिए विशिष्टता समझा जाता है और जिस प्राणी के पास यह विशिष्टता होगी वह निश्चित रूप से उस प्राणी से श्रेष्ठ होगा जो इस अधिकार व इरादे की विशिष्टता से वंचित होगा । किंतु मनुष्य के पास अधिकार व स्वतंत्र इरादा होने के कारण उस के लिए यह भी आवश्यक है कि वह अच्छे और भले काम भी कर सके और अंतिम व सदैव बाक़ी रहने वाली परिपूर्णता की ओर अग्रसर हो और इसी के साथ उस में गलत और बुरे काम करने की भी शक्ति हो कि जिसे करने के बाद वह अंतिम व सदैव बाकी रहने वाले पतन की खांई में गिर सकता है किंतु ईश्वर का इरादा मनुष्य की परिपूर्णता तक पहुचने की भावना व प्रयास से संबंधित होता है किंतु चूँकि मनुष्य को स्वंतत्र इरादे वाला बनाने के लिए उस में पतन व बुरे काम की शक्ति पैदा करना भी आवश्यक था , इस लिए उस में यह शक्ति भी पैदा की

गयी और इस प्रकार से दूसरे चरण में मनुष्य की यह विशेषता भी ईश्वर के इरादे से संबंधित होगी ।

चूँकि चेतनापूर्ण चयन के लिए सही व गलत राहों की पहचान भी आवश्यक है इस लिए ईश्वर ने मनुष्य को उन कामों का आदेश दिया है जो उस के हित में हो और हर उस काम से रोका है जो उसे पतन की ओर ले जाता हो ताकि इस प्रकार से परिपूर्णता की ओर अग्रसर होने की भूमिका प्रशस्त हो सके । और चूँकि ईश्वर द्वारा मनुष्य के लिए जो कर्तव्य निर्धारित किए गये हैं वह स्वंय मनुष्य के हित के लिए होते हैं और मनुष्य की भलाई अथवा बुराई से ईश्वर को कोई लाभ अथवा नुकसान नहीं पहुँचता , इस लिए ईश्वर की तत्वदर्शिता के दृष्टिगत यह आवश्यक है कि यह कर्तव्य मनुष्य की क्षमता व सामर्थ के अनुकूल हों क्योंकि ऐसा कर्तव्य व दायित्व जिस का निर्वाह संभव न हो , निरर्थक होता है ।

इस प्रकार से , न्याय का पहला चरण , विशेष अर्थ में अर्थात कर्तव्यों के निर्धारण में न्याय , इस तर्क द्वारा सिद्ध होता है कि अगर ईश्वर , मनुष्य को ऐसे कामों का आदेश दे जिन्हें करना उस के लिए संभव न हो तो यह एक निरर्थक काम होगा ।

किंतु मनुष्य के मध्य फैसला करने के संबधं में न्याय , इस बात के दृष्टिगत सिद्ध होता है कि यह काम मनुष्य के कामों पर दंड अथवा इनाम को स्पष्ट करने के लिए होता है और अगर इस स्थान पर अन्याय हो तो फिर पूरी प्रकिया ही लक्ष्यहीन हो जाएगी ।

अन्ततः पुरस्कार या दंड देते समय ईश्वर के लिए न्याय सृष्टि के मूल लक्ष्य के दृष्टिगत सिद्ध होता है , क्योंकि जिस ने मनुष्य को अच्छे व बुरे परिणामों तक पहुँचने के लिए पैदा किया है अगर वह उसे उन की योग्यता के विपरीत दंड या पुरस्कार देगा तो सृष्टि का मूल उद्देश्य प्राप्त नहीं होगा ।

तो फिर ईश्वरीय न्याय का प्रमाण , सही अर्थ में और सभी स्थानों पर यह है कि ईश्वर के व्यक्गित गुण , उस के न्यायपूर्ण कार्यों का कारण बनते हैं

और उस में कोई भी ऐसा गुण पाया नहीं जाता जिस के आधार पर वह अन्याय पूर्ण अथवा निरर्थक काम करे ।

## कुछ शंकाओं का निवारण

1. ईश्वर की विभिन्न रचनाओं विशेषकर मनुष्यों में पायी जाने वाली विविधता किस प्रकार से ईश्वर के न्याय के अनुरूप है ? और न्यायी व तत्वदर्शी ईश्वर ने क्यों नहीं सब को समान बनाया है ?

इस का उत्तर यह है कि अस्तित्व के लाभों के अनुसार , विभिन्न प्राणियों , वस्तुओं और लोगों में अंतर सृष्टि की व्यवस्था और इस व्यवस्था पर व्याप्त कारक व परिणाम के नियम के अंतर्गत आवश्यक है , और सारी चीजों के समान होने की कल्पना , निराधार व मूर्खतापूर्ण है और अगर हम थोड़ा सा विचार करें तो हमारी समझ में यह बात आ जाएगी कि इस कल्पना का अर्थ यह है कि सृष्टि की रचना ही न की जाती क्योंकि उदाहरण स्वरूप अगर सारे मनुष्य पुरूष या महिला होते तो वंश आगे न बढ़ता और मनुष्य का अस्तित्व ही मिट जाता और अगर सारे प्राणी और वस्तुएं मनुष्य होतीं तो खाने पीने और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कुछ भी न होता और इसी प्रकार अगर सारे प्राणी एक प्रकार के और सारी वस्तुएं एक जैसे रंग रूप और विशेषता की स्वामी होतीं तो इतनी अधिक सुन्दरताएं कहॉं से आतीं और यूॅं भी विशेष रूप व आकार व रंग में किसी वस्तु का अस्तित्व , उन परिस्थितियों व कारकों के अंतर्गत होता है जो पदार्थ में परिवर्तन के समय होती हैं और रचना से पूर्व किसी भी वस्तु को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह ईश्वर से चाहे कि उसे ऐसा नहीं वैसा बनाया जाए या अमुक स्थान पर अमुक काल में अमुक परिस्थितियों में पैदा किया जाए कि इस का संबधं न्याय व अत्याचार से हो ।

2. अगर ईश्वर की सूझबूझ व तत्वदर्शिता के अनुसार इस धरती पर मनुष्य का जीवन ईश्वर का उद्देश्य था तो फिर उसे मृत्यू क्यों देता है और उस का जीवन समाप्त क्यों कर देता है ?

इस शंका का उत्तर यह है कि प्रथम तो यह कि मरना , जीना , बाकी रहना और खत्म हो जाना भी इस सृष्टि के नियमों और कारक व प्रभाव के सिद्धान्त के अंतर्गत इस व्यवस्था के लिए आवश्यक है । और दूसरी बात यह कि जीवित प्राणी यदि मरते नहीं तो उस के बाद आने वाले प्राणियों की भूमिका प्रशस्त न होती और आने वाली पीढ़ियां जीवन के उपहार से वंचित हो जातीं और तीसरी बात यह कि अगर हम यह कल्पना करें कि सारे मनुष्य जीवित ही रहते तो बड़ी जल्दी ही यह धरती मनुष्य के जीवन के लिए छोटी पड़ जाती और सारे लोग भूख व परेशानियों से तंग आकर मृत्यू की कामना करने लगते। चौथी बात यह कि मनुष्य की रचना का मूल लक्ष्य , अनन्त कल्याण तक पहुँचना है और जब तक मनुष्य मृत्यू द्वारा इस संसार से जाएगा नहीं इस लक्ष्य तक पहुँचना संभव नहीं होगा ।

3. मानव जीवन में इतने अधिक दुखों जैसे प्राकृतिक आपदाओं , बाढ़ , भूकंप तथा युद्ध आदि जैसी सामाजिक समस्याओं के होते हुए ईश्वर के न्याय पर कैसे विश्वास किया जा सकता है ?

इस का उत्तर यह है कि पहली बात तो यह कि प्राकृतिक आपदाएं भौतिक कारकों के अंतर्गत आवश्यक होती हैं किंतु चूँकि उस में हित का आयाम अधिक होता है इस लिए इन आपदाओं और समस्याओं को ईश्वर की तत्वदर्शिता व सूझबूझ के विपरीत नहीं माना जा सकता और इसी प्रकार समाजिक समस्याएं भी मनुष्य के स्वतंत्र होने और उसे ईश्वर द्वारा प्रदान किए गये अधिकार के कारण उत्पन्न होती हैं और मनुष्य का अधिकार वाला और स्वंतत्र इरादे का स्वामी होना ईश्वर की सूझ बूझ व ज्ञान के अनुसार है किंतु इस के साथ ही , समाजिक जीवन के लाभ , उस की समस्याओं से अधिक हैं

क्योंकि अगर समस्याएं अधिक होतीं तो धरती पर अब तक किसी भी मनुष्य का अस्तित्व ही बाकी न रहता ।

दूसरी बात यह कि इस प्रकार के दुखों और समस्याओं की उपस्थिति, एक ओर तो मनुष्य द्वारा , प्रकृति के रहस्यों की खोज और विज्ञान में विस्तार का कारण बनती है तथा नये नये उद्योगों का जन्म होता है और दूसरी ओर , समस्याओं के विरूद्ध संघर्ष , मनुष्य की महानता और उस की योग्यताओं में विकास तथा परिपूर्णता का कारण बनता है और अन्ततः इस संसार में किसी भी दुख को सहन करना अगर सही मार्ग में हो तो परलोक में उस का फल अत्यन्त मूल्यवान होता है और बहुत अच्छे तरीके से उस का पुरस्कार दिया जाता है ।

4. इस धरती पर सीमित समय तक किए गये पापों के लिए परलोक में अनन्त काल तक दंडित करना कहॉ तक न्याय के अनुकूल है?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि भलाई व बुराई और परलोक में दंड व इनाम के मध्य एक प्रकार का कारक संबंध है जिसे ईश्वरीय संदेश द्वारा समझा और लोगों तक पहुँचाया गया है और जिस प्रकार से इस संसार में , कुछ अपराध , लंबे समय तक अपना प्रभाव बाकी रखते हैं उदाहरण स्वरूप किसी की ऑख फोड़ने का अपराध कुछ क्षणों में ही किया जाता है किंतु उस का प्रभाव मृत्यू तक बाकी रहता है उसी प्रकार बड़े पापों का प्रभाव , परलोक में अनन्त प्रभाव का कारण बनता है और अगर कोई प्रायश्चित जैसे साधनों की इसी संसार में व्यवस्था न करे तो उस का प्रभाव अनन्तकाल तक बाकी रहेगा। और जिस प्रकार एक क्षण में किए जाने वाले अपराध के कारण किसी व्यक्ति का अंतिम सॉस तक अंधा रहना, ईश्वर के न्याय के विपरीत नहीं है उसी प्रकार बड़े पापों के बदले सदैव के लिए दंडित होना भी ईश्वरीय न्याय के विपरीत नहीं है । क्योंकि यह उस कर्म का परिणाम होगा जिसे मनुष्य ने परिणाम जानते हुए किया है ।

## प्रश्न

1. ईश्वरीय न्याय में मतभेद का बिन्दु क्या है ?

2. न्याय के अर्थ का वर्णन करें

3. क्या न्याय के लिए समस्त वस्तुओं और प्राणियों का समान होना आवश्यक है ?

4. ईश्वर की सूझबूझ व उस के न्याय के लिए क्या आवश्यक है ?

5. ईश्वर के न्याय का क्या तर्क है ?

6. मनुष्य की रचना का उद्देश्य क्या है ?

7 . ईश्वरीय रचनाओं में व्यवहारिक अंतर किस प्रकार से ईश्वर के न्याय के अनुरूप है ?

8 . ईश्वर अपनी रचनाओं को मृत्यु क्यों प्रदान करता है ?

9 . प्राकृतिक आपदाओं और सामाजिक समस्याओं के होते हुए किस प्रकार से ईश्वर को न्यायी कहा जा सकता है ?

10. क्यों सीमित पाप , असीमित काल तक दंड का कारण बनते हैं ?

इक्कीसवॉ पाठ

# पैग़म्बरी से संबंधित कुछ विषयों की चर्चा

- भूमिका
- इस भाग में की जाने वाली चर्चा का उद्‌देश्य
- ईश्वर से संबंधित ज्ञान के बारे में अध्ययन का आधार

# भूमिका

हम यह जान चुके हैं कि एक मानवीय व तार्किक जीवन के लिए जिन मूल समस्याओं का एक बुद्धि रखने वाले मुनष्य द्वारा निवारण आवश्यक है वह कुछ इस प्रकार हैं :

1. संसार व मनुष्य के अस्तित्व का स्रोत क्या है ? और उन का संचालन व इच्छा किस के हाथ में है ?

2. जीवन का लक्ष्य और मनुष्य का अंतिम गंतव्य क्या है ?

3. वास्तविक कल्याण व सफलता तक पहुँचने के लिए जीवन के सही मार्ग को पहचानने की मनुष्य की आवश्यकता के दृष्टिगत इस पहचान को प्राप्त करने के लिए कौन सा विश्वस्त साधन मौजूद है ? और वह किस के पास हैं ?

इन प्रश्नों का सही उत्तर , धर्म के तीन मूल सिद्धान्त अर्थात एकेश्वरवाद , प्रलय और ईश्वरीय दूतों के आगमन पर विश्वास है ।

इस किताब के प्रथम भाग में , ईश्वर की पहचान से संबंधित विषयों पर चर्चा की गयी है और उस चर्चा के दौरान हम इस निष्कर्ष तक पहुँच चुके हैं कि हर वस्तु का स्रोत , इस संसार का रचयता व पालनहार है और सब कुछ उस के अधिकार व सूझबूझ के अंतर्गत चल रहा है और कोई भी वस्तु , किसी भी स्थान पर, किसी भी समय उस से आवश्यकता मुक्त नहीं हो सकती।

इन विषयों को हम ने बौद्धिक तर्कों से सिद्ध किया और यह भी स्पष्ट किया कि इस प्रकार के विषयों को केवल बुद्धि द्वारा ही प्रमाणित किया जा सकता है क्योंकि कथनों और ईश्वरीय संदेशों का हवाला , उस समय सही होगा जब ईश्वर का अस्तित्व , उस के कथन और उस की विश्वस्नीयता . बौद्धिक तर्कों द्वारा प्रमाणित हो चुकी हो जैसा कि पैगम्बरों और इमामों के कथनों की ओर संकेत और उनका वर्णन , उसी समय सही होगा , जब उन की पैगम्बरी और इमामत सिद्ध हो चुकी हो।

इसी लिए पैगम्बरी को भी ईश्वरीय संदेश द्वारा सिद्ध करना होगा हॉलाकि प्रलय पर विश्वास के नियम को बौद्धिक तर्कों और कथनों , दोनों से प्रमाणित किया जा सकता है।

इस आधार पर , प्रलय और पैगम्बरी के दो नियमों को सिद्ध करने के लिए सब से पहले इन दोनों नियमों के लिए बौद्धिक तर्क लाया जाए और जब बात पैगम्बरे इस्लाम और कुरआन मजीद की सत्यता तक पहुॅच जाए तो फिर अन्य संबंधित बातों को कुरआन और पैगम्बरे इस्लाम के कथनों द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है किंतु इस बात के दृष्टिगत कि इन दोनों विषयों को अलग अलग करके उन का वर्णन करने से बात सरलता से समझ में आती है , हम ने भी परंपरा के अनुसार पहले पैगम्बरी के विषय और फिर प्रलय के बारे में वर्णन को उचित समझा और अगर किसी अवसर पर ऐसा विषय सामने आ जाए जिसे प्रमाणित करना आवश्यक हो तो वहॉ हम प्रमाणित करने के लिए आवश्यक मूल नियम को स्वीकार करेगें और उस के लिए तर्क व प्रमाण को आगे आने वाले पाठों के लिए उठा रखेगें ।

## इस भाग में चर्चा का उद्देश्य

इस भाग में की जाने वाली चर्चा का प्रथम उद्देश्य , इस बात को सिद्ध करना है कि सृष्टि की वास्तविकताओं और जीवन के सही मार्ग की

पहचान के लिए , बोध व बुद्धि के अतिरिक्त भी अन्य साधन मौजूद है कि जो कभी भी गलती नहीं करता और वह है ईश्वरीय संदेश कि जो एक प्रकार से ईश्वरीय शिक्षा है और ईश्वर के कुछ चुने हुए दासों से विशेष होता है और आम लोग उस की वास्तविकता का ज्ञान नहीं रखते क्योंकि उस का कोई नमूना अपने भीतर नहीं पाते किंतु चिन्हों व संकेतों द्वारा उस की उपस्थिति को समझ सकते हैं और ईश्वरीय दूतों के इन दावों की कि उन के पास ईश्वरीय संदेश आते हैं, पुष्टि कर सकते हैं । स्वाभाविक रूप से जब किसी के पास ईश्वरीय संदेश का आना सिद्ध हो जाए और वह संदेश दूसरों तक भी पहुँच जाए तो उन लोगों का कर्तव्य होगा कि उसे स्वीकार करें और उस के अनुसार कार्य करे और उस स्थिति में उस का विरोध करने के लिए किसी के पास कोई बहाना नहीं होगा यद्यपि अगर कोई ईश्वरीय संदेश किसी समूदाय अथवा काल विशेष के लिए हो तो फिर स्थिति भिन्न होगी ।

इस आधार पर , इस भाग के मूल विषय , इस प्रकार होगें : ईश्वरीय दूतों के धरती पर आने की आवश्यकता , लोगों तक पहुँचने से पूर्व ईश्वरीय संदेश में किसी भी प्रकार से जाने अन्जाने में किसी भी प्रकार की फेर बदल का न होना । दूसरे शब्दों में : ईश्वरीय दूतों में गलती की संभावना का न होना और इसी प्रकार दूसरों के लिए किसी के ईश्वरीय दूत होने को सिद्ध करने का मार्ग होने की आवश्यकता ।

इस प्रकार से जब ईश्वरीय संदेश और ईश्वरीय दूतों से संबंधित बातें बुद्धि और तर्क की दृष्टि से सिद्ध हो जाएगीं , तो उस समय ईश्वरीय दूतों , ईश्वरीय ग्रंथों और ईश्वरीय धर्मों की बारी आएगी तथा इस विषय पर चर्चा की जाएगी कि अंतिम ईश्वरीय दूत कौन है ? अंतिम ईश्वरीय ग्रंथ क्या है ? और ईश्वरीय दूतों के उत्तराधिकारी कौन लोग हैं ?

यद्यपि इन सब बातों को बौद्धिक तर्कों व प्रमाणों द्वारा सिद्ध करना संभव नहीं होगा और बहुत से अवसरों पर कथनों और इतिहास का सहारा लेना पड़ेगा ।

## ईश्वर से संबधी ज्ञान में शोध की शैली

अब तक जो कुछ कहा गया है उस के दृष्टिगत ईश्वर से सबंधी ज्ञान जिसे वाद शास्त्र भी कहा जा सकता है और दर्शन शास्त्र के मध्य मूल अंतर स्पष्ट हो जाता है क्योंकि दर्शन शास्त्र केवल उन विषयों पर चर्चा करता है जो बौद्धिक तर्कों द्वारा सिद्ध हो सकें किंतु वाद शास्त्र में उन विषयों के बारे में भी चर्चा की जाती है जो इतिहास और महान मार्गदर्शकों के कथनों से सिद्ध होते हैं ।

दूसरे शब्दों में :

दर्शन शास्त्र में केवल बौद्धिक तर्कों का काम होता है जब कि वाद शास्त्र में दोनों प्रकार के प्रमाण व दलीलें लाई जाती हैं अर्थात यह कहा जा सकता है कि वाद शास्त्र या ईश्वर से संबधी ज्ञान में अध्ययन व शोध की शैली दोहरी है और इस शास्त्र में दो प्रकार की शैलियों का प्रयोग होता है ।

निष्कर्ष यह निकला कि दर्शन शास्त्र और वाद शास्त्र के मध्य दो मूल अंतर होते हैं:

एक यह कि इन दोनों शास्त्रों में से प्रत्येक ज्ञान में कुछ ऐसे विषय चर्चा में आते हैं जो दूसरे में चर्चा का विषय ही नहीं होते ।

और दूसरा यह कि दर्शन शास्त्र के सभी विषयों में अध्ययन की शैली, वाद शास्त्र के विपरीत, कि जिस के कुछ विषयों में बौद्धिक तर्कों को प्रयोग किया जाता है, पूर्ण रूप से बौद्धिक तर्कों और दलीलों पर आधारित होती है । अर्थात वाद शास्त्र में कुछ विषयों के बारे में बौद्धिक तर्क की शैली अपनाई जाती है जब कि कुछ अन्य विषयों में केवल कथनों और इतिहासिक तथ्यों को प्रयोग किया जाता है जब कि कुछ विषयों में दोनों शैलियों को प्रयोग किया जाता है । उदाहरण स्वरूप प्रलय के बारे में चर्चा के अवसर पर । यहाँ पर इस बात का उल्लेख भी आवश्यक होगा कि वाद शास्त्र के जिन विषयों को कथनों

और इतिहासिक तथ्यों द्वारा सिद्ध किया जाता है वह सब के सब एक समान नहीं होते बल्कि कुछ विषयों में , जैसे पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की कथनी व करनी का प्रमाण होना अपरोक्ष रूप से कुरआन मजीद की आयतों से सिद्ध होता है यद्यपि उस समय , जब कुरआन मजीद की सत्यता बौद्धिक तर्कों से सिद्ध हो चुकी होगी । उस के बाद पैगम्बरे इस्लाम के उत्तराधिकार का विषय और इमामों के कथनों के प्रमाण होने का वर्णन किया जाएगा ।

स्पष्ट है कि केवल उन्हीं विषयों को पैगम्बरे इस्लाम और उन के उत्तराधिकारियों के कथनों द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है जिन के बारे में उन लोगों का कथन एतिहासिक दृष्टि से पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुका हो ।

## प्रश्न

1. हम ने ईश्वर के संबंधित विषयों को क्यों केवल बौद्धिक तर्कों के सहारे से ही प्रमाणित किया है ?

2. पैगम्बरी के मूल विषय क्या हैं ?

3. क्या पैगम्बरी और प्रलय से सबंधित मूल विषयों को इतिहासिक तथ्यों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है ? और क्या इन दोनों प्रकार के विषयों में कोई अंतर है ?

4. वाद शास्त्र के कौन से विषयों को एतिहासिक तथ्यों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है ?

5. पैगम्बरी से संबंधित विषयों को प्रलय से पहले क्यों वर्णित किया गया? और क्या इन दोनों विषयों के कम में बदलाव की कोई अन्य तार्किक दशा है?

6. दर्शन शास्त्र और वाद शास्त्र में क्या अंतर है ?

7. वादशास्त्र से संबंधित मुद्दों को उन्हें सिद्ध करने की दृष्टि से कितने गुटों में विभाजित किया जा सकता है ? उन के कम का वर्णन करें ।

बाइसवाँ पाठ

# मनुष्य को ईश्वरीय संदेश और ईश्वरीय दूत की आवश्यकता

- ईश्वरीय दूतों की आवश्कयता
- मानव विज्ञान की त्रुटियाँ
- ईश्वरीय दूतों के लाभ

## ईश्वरीय दूतों को भेजने की आवश्यकता

इस विषय को जो ईश्वरीय दूतों की चर्चा की आधार शिला है , सिद्ध करने के लिए जो प्रमाण लाया जाता है वह तीन भूमिकाओं पर आधारित है ।

1. मनुष्य की रचना का लक्ष्य यह है कि वह अपने इरादे और इच्छा के आधार पर काम करके , अपनी परिपूर्णता के मार्ग पर आगे बढ़ते हुए अनन्त परिपूर्णता व लक्ष्य तक पहुँच जाए , उस परिपूर्णता तक कि जो इरादे , इच्छा और चयन शक्ति के बिना संभव ही नहीं होता । दूसरे शब्दों में मनुष्य को इस लिए पैदा किया गया है ताकि वह ईश्वर की उपासना और आज्ञापालन द्वारा , उन कृपाओं का पात्र बनें जो एक परिपूर्ण मनुष्य से विशेष होती हैं । और ईश्वर का इरादा मूल रूप से मनुष्य की परिपूर्णता व कल्याण चाहता है किंतु चूँकि यह कल्याण व परिपूर्णता , स्वेच्छिक कामों को इरादे के साथ किए बिना संभव नहीं होती इस लिए मनुष्य के जीवन का मार्ग दो दिशाओं की ओर जाता है ताकि उसे चयन का अवसर प्राप्त हो सके और इस दशा में स्वाभाविक रूप से एक मार्ग पतन व प्रकोप की ओर भी जाएगा तो इस प्रकार से यह मार्ग भी आवश्यकता के कारण ईश्वरीय इरादे का परिणाम होगा किंतु उस का मूल लक्ष्य मनुष्य का कल्याण है न कि उस का पतन ।

इस बारे में ईश्वर के न्याय और उस की तत्वदर्शिता पर चर्चा के समय विस्तार से वर्णन हो चुका है

2. चेतनापूर्ण चयन व अधिकार के लिए , काम करने की शक्ति , विभिन्न कामों के लिए बाहरी भूमिकाएं प्रशस्त होने और उन्हें करने के लिए भीतरी रूचि व रुझान के अतिरिक्त , सही व गलत कामों और भले बुरे मार्गों की सही पहचान का होना भी आवश्यक है । मनुष्य केवल उसी दशा में अपनी परिपूर्णता के मार्ग को पूरी स्वतंत्रता व चेतना के साथ खोज सकता है कि जब उसे लक्ष्य और उस तक पहुँचने के मार्ग का भी पता हो और उस मार्ग की समस्याओं , मोड़ों और उँचाई आदि का ज्ञान भी हो । तो इस प्रकार से ईश्वर की कृपा व ज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि वह इस प्रकार की भूमिकाओं और आवश्यक वस्तुओं तक मनुष्य की पहुँच के साधनों की भी व्यवस्था करे अन्यथा वह उस व्यक्ति की भाँति हो जाएगा जिस ने किसी मेहमान को किसी होटल में बुलाया किंतु उस होटल का पता उसे नहीं बताया ! स्पष्ट है इस प्रकार के काम बुद्धि से परे हैं और इस से वह कभी भी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता ।

इस भूमिका की इस से अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं है ।

3. बोध और बुद्धि से मनुष्य को प्राप्त होने वाली पहचान और ज्ञान , यद्यपि जीवन की बहुत सी आवश्यकताओं की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है किंतु परिपूर्णता व वास्तविक कल्याण के मार्गों की पहचान के लिए , वह भी उस के सभी समाजिक , व्यक्तिगत , भौतिक , आध्यात्मिक , सांसारिक व परलोकिक आयामों के साथ पहचान के लिए पर्याप्त नहीं हैं और अगर इन आवश्यकताओं की पूर्ति का कोई अन्य मार्ग न हो तो मनुष्य की रचना का जो ईश्वरीय उद्देश्य है वह कभी पूरा नहीं हो सकता ।

इन तीनों भूमिकाओं के दृष्टिगत , हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि ईश्वर के ज्ञान व कृपा के लिए यह आवश्यक है कि वह बुद्धि व बोध से आगे की कोई अन्य शक्ति व मार्ग भी मनुष्य को सुझाए ताकि वह व्यापक रूप से अपने मूल लक्ष्य की ओर , परोक्ष या अपरोक्ष रूप से अग्रसर हो सके । और वह वही ईश्वरीय संदेश का मार्ग है कि जो ईश्वरीय दूतों द्वारा मनुष्य तक पहुँचता

है और यह ईश्वरीय दूत अपरोक्ष रूप से और अन्य लोग परोक्ष रूप से , उस से लाभान्वित होते हैं और अंतिम व वास्तविक परिपूर्णता तक पहुँचने के लिए जो कुछ आवश्यक होता है , उस का ज्ञान प्राप्त करते हैं ।

इस तर्क की भूमिकाओं में से संभव है कि अंतिम भूमिका के प्रति शंका प्रकट की जाए इस लिए हम उस की अधिक व्याख्या करेगें ताकि मनुष्य के व्यापक विकास व परिपूर्णता के मार्गों की पहचान में मानव ज्ञान की कमियाँ और ईश्वरीय संदेश की आवश्यकता पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाए ।

## मानव ज्ञान की सीमाएं

सभी आयामों के साथ व्यापक रूप से सही रास्ते की पहचान के लिए , मनुष्य के अस्तित्व के स्रोत व अंत , अन्य प्राणियों व वस्तुओं से उस के संबधं और उस के कल्याण अथवा पतन पर उन के प्रभावों का व्यापक ज्ञान आवश्यक है और इसी के साथ ही हित व अहित तथा लाभ और नुकसान की मात्रा व सीमा की भी पहचान होनी चाहिए तथा उस की समीक्षा की जानी चाहिए । ताकि शारीरिक व मानसिक रूप से विभिन्न तथा अलग अलग प्राकृतिक व सामाजिक परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करने वाले अरबों मनुष्यों के कर्तव्य स्पष्ट हों । किंतु इन सब बातों का ज्ञान न केवल यह कि एक या कई व्यक्तियों के लिए संभव नहीं है बल्कि मानव विज्ञान के हज़ारों लाखों विशेषज्ञ भी इस जटिल गुत्थी को कुछ इस प्रकार से सुलझा कर उसे सूक्ष्म व सुदृढ़ नियमावली बनाने में सक्षम नहीं है जिस से सभी लोगों के व्यक्तिगत , सामाजिक , भौतिक , आध्यात्मिक और परलोकिक हितों की रक्षा हो सके और विभिन्न प्रकार के हितों व अहितों के इकटठा होने की दशा में सर्वश्रेष्ठ मार्ग का चयन किया जा सके ।

मानव इतिहास में , विधि व कानूनों में परिवर्तन की प्रक्रिया से यह पता चलता है कि हज़ारों विशेषज्ञों व बुद्धिजीवियों के हज़ारों वर्षों तक अनथक

प्रयासों के बावजूद अब भी एक व्यापक , पूर्ण व सही कानून व्यवस्था नहीं बनाई जा सकी है और सदैव ही विश्व के विधि गलियारे और कानून बनाने वाले , अपने ही बनाए हुए कानूनों की कमियों को पहचान कर उसे भंग करते अथवा उस में किसी अनुच्छेद अथवा धारा की वृद्धि करके कानून का संशोधन करते रहते हैं ।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इन क़ानूनों के सकंलन के लिए भी ईश्वरीय धर्मों के नियमों से बहुत अधिक लाभ उठाया गया है । और इसी प्रकार हमें इस ओर भी ध्यान देना चाहिए कि विधि विशेषज्ञों और कानून बनाने वालों का सारा प्रयास सामाजिक व सांसारिक हितों की रक्षा पर ही केन्द्रित रहा है और रहता है और कभी भी उन्हों ने परलोक के हितों की रक्षा तथा सांसारिक हितों से उस की तुलना का प्रयास नहीं किया है और न ही करते हैं और अगर वे इस दिशा में भी कि जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है , कदम बढ़ाना चाहते तो भी किसी निश्चित परिणाम तक पहुँच पाना उन के लिए संभव न होता क्योंकि सांसारिक व भौतिक हितों को एक सीमा तक अनुभव द्वारा समझा जा सकता है किंतु आध्यात्मिक व परलोक के हितों को प्रयोग व अनुभव द्वारा समझना संभव ही नहीं होता, न सही रूप से उस की मात्रा व महत्व का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और न ही भौतिक व आध्यात्मिक हितों में टकराव की स्थिति में उन में से प्रत्येक हित के महत्व को सही रूप से आंका जा सकता है।

मानव समाज के वर्तमान कानूनों के दृष्टिगत हजारों और लाखों वर्ष पूर्व मानव ज्ञान की उपयोगिता की सीमा का अनुमान लगाया जा सकता है और इस निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है कि आदि मानव जीवन के सही मार्ग की पहचान में इस समय के लोगों की तुलना में बहुत अधिक कमज़ोर था । और अगर यह मान लिया जाए कि वर्तमान युग का मनुष्य हजारों वर्षों के अनुभव से लाभ उठाते हुए एक व्यापक व सही कानून व्यवस्था तक पहुँच चुका है और इस बात को भी अगर मान लिया जाए कि यह व्यवस्था लोक परलोक दोनों के हितों की रक्षा करती है तो भी यह प्रश्न अवश्य उठेगा कि अतीत के

अरबों मनुष्यों को उन के हाल पर छोड़ना क्या ईश्वरीय कृपा व सूझबूझ तथा मुनष्य की रचना के लक्ष्यों के अनुकूल है ?!

निष्कर्ष यह निकला कि आंरभ से लेकर अंत तक मनुष्य की रचना के लक्ष्य तक उसी समय पहुँचा जा सकता है कि जब बोध व बुद्धि के अलावा भी जीवन की वास्तविकताओं और व्यक्तिगत व सामाजिक कर्तव्यों की पहचान के लिए कोई अन्य मार्ग हो और वह मार्ग, ईश्वरीय संदेश के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता ।

इस के साथ ही यह भी स्पष्ट है कि इस तर्क के लिए आवश्यक है कि सब से पहला मनुष्य ईश्वरीय दूत होना चाहिए ताकि वह सही मार्ग को ईश्वरीय संदेश द्वारा पहचाने और स्वयं उस के प्रति मनुष्य की रचना का उद्देश्य पूरा हो और फिर अन्य लोग उस के द्वारा सही मार्ग पर अग्रसर हों ।

## ईश्वरीय दूतों को भेजने के लाभ

ईश्वरीय दूत मनुष्य की वास्तविक परिपूर्णता के लिए उसे सही मार्ग दिखाने और ईश्वरीय संदेश प्राप्त करने और उसे लोगों तक पहुँचाने के अतिरिक्त मनुष्य की परिपूर्णता की प्रक्रिया में अन्य प्रकार की भूमिकाएं भी निभाते थे जिस में से कुछ महत्वूपर्ण काम इस प्रकार हैं :

1. बहुत से ऐसे विषय हैं जिन को समझना , मनुष्य की बुद्धि की क्षमता व दायरे में होता है किंतु इस के लिए उसे समय और अनुभव की आवश्यकता होती है या फिर वह विषय भौतिकता की ओर रुझान और पाश्विक इच्छाओं के कारण भुला दिया जाता है या फिर कुप्रचारों और अफवाहों के कारण अधिकांश लोग उस से अवगत ही नहीं हो पाते । ईश्वरीय दूत इस प्रकार के विषयों का भी वर्णन करते हैं और निरंतर चेतावनी व उपदेश द्वारा उसे पूर्ण रूप से भुला देने की प्रक्रिया को और सही मार्गदर्शन द्वारा गलत बातों के प्रचार को रोकते हैं ।

इसी लिए ईश्वरीय दूतों को याद दिलाने वाला और चेतावनी देने वाला भी कहा जाता है ।

हज़रत अली अलैहिस्सलाम ईश्वरीय दूतों को भेजने के बारे में कहते हैं :

ईश्वर ने अपने दूतों को इस लिए भेजा है ताकि वह मनुष्य को प्रवृत्ति की प्रतिज्ञा की याद दिलाएं और ईश्वर की भुला दी जाने वाली कृपाओं को लोगों को याद दिलाएं और सत्य के प्रचार व वर्णन द्वारा उन के हर बहाने को समाप्त कर दें ।

2. मनुष्य के विकास व परिपूर्णता का एक महत्वपूर्ण तत्व किसी आदर्श का उपस्थित होना है कि जिस का महत्व मनोविज्ञान में सिद्ध हो चुका है । ईश्वरीय दूत पूरिपूर्ण मनुष्य और ईश्वर द्वारा शिक्षित होने के कारण इस काम को बहुत अच्छी तरह से करते हैं और विभिन्न शिक्षाओं और उपदेशों के अलावा लोगों की आत्मा को पवित्र करने का भी काम करते हैं। हमें यह तो पता है कि कुरआन मजीद में शिक्षा व प्रशिक्षण का वर्णन एक साथ किया गया है और कुछ आयतों में तो आत्मा की पवित्रता को शिक्षा पर भी श्रेष्ठता प्रदान की गयी है ।

3. लोगों के मध्य ईश्वरीय दूतों की उपस्थिति का एक अन्य लाभ यह है कि आवश्यक परिस्थितियाँ बन जाने की दशा में, वह समाज की राजनीतिक व न्यायिक प्रक्रिया को भी अपने हाथ में ले लेता है। और यह तो स्पष्ट है कि ईश्वरीय दूत अगर समाज का अगुवा हो तो फिर किसी समाज पर ईश्वर की इस से बड़ी कृपा और क्या हो सकती है क्योंकि उस के कारण बहुत सी सामाजिक बुराईयाँ फैल नहीं पाती और समाज मतभेद , फूट और गलत कार्यों से बच जाता है ।

## प्रश्न

1. मनुष्य की रचना का उद्देश्य क्या है ?

2. क्या ईश्वर का इरादा प्रकोप व पतन से भी वैसा ही संबधं रखता है जितना मनुष्य की परिपूर्णता व कल्याण से संबधं रखता है और क्या इन दोनों दशाओं में किसी प्रकार का अन्तर है।

3. मनुष्य के चेतनापूर्ण कार्यों और चयनों के लिए कौन सी वस्तुओं की आवश्यकता होती है ?

4. मनुष्य की बुद्धि सभी प्रकार की पहचान प्राप्त करने में सक्षम क्यों नहीं है ?

5. ईश्वरीय दूतों की आवश्यकता का वर्णन करें ।

6. अगर मनुष्य लंबे अनुभव के बल पर अपने सामाजिक व सांसारिक मार्ग को पहचान सकता तो भी ईश्वरीय संदेश की आवश्यकता होती ? क्यों ?

7. क्या इस बात का कोई तर्क है कि सब से पहला मनुष्य ईश्वरीय दूत था ?

8. ईश्वरीय दूतों के लाभ बताएं ।

तेइसवॉं पाठ

# कुछ शंकाओं का निवारण

- क्यों बहुत से लोग ईश्वरीय दूतों द्वारा किए जाने वाले मार्गदर्शन से वंचित हैं ?
- ईश्वर ने मतभेदों व भेदभाव को क्यों नहीं रोका?
- ईश्वरीय दूतों के पास सांसारिक सुख चैन के साधन क्यों नहीं हैं ?

## कुछ शंकाओं का निवारण

ईश्वरीय दूतों की आवश्यकता के लिए जिस तर्क को पेश किया गया है उस के बारे में कुछ प्रश्न व शकांए भी हैं जिन के उत्तर हम यहॉ दे रहे हैं :

1. अगर ईश्वर की कृपा व ज्ञान के अनुसार मनुष्य के मार्गदर्शन के लिए ईश्वरीय दूतों का आना आवश्यक है तो फिर क्यों सारे ईश्वरीय दूतों को एक ही क्षेत्र में अर्थात मध्य पूर्व में भेजा गया और धरती के अन्य क्षेत्र ईश्वर की इस कृपा से वंचित रहे ? विशेष कर इस बात के दृष्टिगत कि प्राचीन काल में , सूचना व संचार साधन बहुत सीमित थे और एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक समाचार व सूचनाओं के पहुॅचने की प्रक्रिया बहुत धीमी रही है और शायद उस काल में ऐसे लोग और समूदाय भी रहे हों जिन्हें ईश्वरीय दूतों के आने का ज्ञान ही न हुआ हो ।

इस का उत्तर यह है कि सब से पहली बात तो यह कि ईश्वरीय दूतों का भेजा जाना किसी एक क्षेत्र से विशेष नहीं था और कुरआन मजीद की आयतें इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि हर समूदाय व जाति के लिए ईश्वरीय दूत भेजा गया है जैसा कि सूरए फातिर की आयत नंबर में 24 में आया है :

**और हर समूदाय के लिए एक डराने वाला मौजूद है।**

या सूरए नेहल की आयत 36 में आया है :

**और हम ने निसंदेह सभी समूदायों के लिए दूत भेजा है कि ईश्वर की उपासना करो और बुराईयों के प्रतीक से बचो।**

और अगर कुरआन में कुछ गिने चुने ईश्वरीय दूतों का ही नाम है तो इस का यह अर्थ कदापि नहीं है कि उन की संख्या बस उतनी ही थी बल्कि स्वंय कुरआन में भी स्पष्ट किया गया है कि बहुत से ईश्वरीय दूतों के नामों का कुरआन में उल्लेख नहीं किया गया है जैसा कि सूरए नेसाअ की आयत 164 में आया है : **और कुछ दूत जिन के बारे में हम ने कुछ नहीं बताया ।**

दूसरी बात यह कि इस तर्क के अनुसार एक ऐसे मार्ग व साधन का होना आवश्यक है जो बुद्धि व इन्द्रियों से हट कर हो ताकि उस से लोगों का मार्गदर्शन हो सके । किंतु लोगों के व्यवहारिक मार्गदर्शन के लिए दो शर्तों का होना आवश्यक है : एक यह कि वे स्वंय चाहें कि इस ईश्वरीय कृपा से लाभ उठाएं और दूसरे यह कि दूसरे लोग उन के मार्गदर्शन में बाधा उत्पन्न न करें और बहुत से लोगों का ईश्वरीय दूतों के मार्गदर्शन से वंचित रहना स्वंय उन के निर्णयों व कार्यों का परिणाम रहा है जैसा कि कुछ अन्य लोगों के इस मार्गदर्शन से वंचित रहने का कारण , वह बाधाएं रही हैं जो अन्य लोगों ने ईश्वरीय दूतों के मार्ग में उत्पन्न की थीं । और हमें ज्ञात है कि ईश्वरीय दूतों ने सदैव ही इस प्रकार की बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया है और सदैव ही उन्हों ने ईश्वर के शत्रुओं विशेषकर साम्प्रज्यवादियों और क्रूर शासकों के विरूद्ध आंदोलन छेड़ा है और बहुत से ईश्वरीय दूतों ने इस मार्ग में अपने प्राणों की आहूति दी है और जब भी उन्हें लोगों की सहायता व सहयोग मिला , उन्हों ने क्रूर शासकों के विरूद्ध युद्ध भी लड़ें हैं क्योंकि यह लोग हर काल में मार्गदर्शन की सब से बड़ी बाधा रहे हैं ।

यहाँ पर यह बात भी ध्यान योग्य है कि मनुष्य की परिपूर्णता के स्वेच्छिक होने की विशेषता के कारण यह आवश्यक है कि यह पूरी प्रक्रिया कुछ इस प्रकार से आगे बढ़े कि सत्य व असत्य के दोनों पक्षों को सही व गलत मार्ग के चयन का अधिकार प्राप्त रहे यद्यपि उन परिस्थितियों में यह आवश्यक नहीं है कि जब असत्य का वर्चस्व व अधिकार इतना बढ़ जाए कि दूसरों के मार्गदर्शन के सारे रास्ते पूरी तरह से बंद हो जाएं और समाज में सत्य व

मार्गदर्शन के दीपक को पूर्ण रूप से बुझा दिया जाए क्योंकि इस दशा में ईश्वर सत्य के समर्थक पक्ष के मार्गदर्शन और उन की सहायता के लिए असाधारण व अलौकिक साधनों का प्रयोग कर सकता है।

निष्कर्ष यह निकला कि अगर ईश्वरीय दूतों के मार्ग में इस प्रकार की बाधाएं न होतीं तो उन का संदेश सभी विश्व वासियों के कानों तक पहुँचता और सब के सब ईश्वरीय दूतों द्वारा ईश्वरीय मार्गदर्शन की कृपा से लाभ उठाने में सक्षम होते । तो इस प्रकार से ईश्वरीय दूतों के संदेशों व मार्गदर्शनों से कुछ लोगों के दूर रहने का पाप उन लोगों पर है जिन्हों ने ईश्वरीय दूतों के संदेश के विस्तार में बाधाएं खड़ी कीं ।

2. अगर ईश्रीय दूत मनुष्य की परिपूर्णता के कारकों की पूर्ति के लिए भेजे गये हैं तो फिर उन के आने के बावजूद किस प्रकार से इतना अधिक भ्रष्टाचार व बुराई फैली हुई है और हर काल में अधिकांश लोग पाप व ईश्वर की अवज्ञा करते रहे हैं यहॉ तक कि ईश्वरीय धर्मों के अनुयाई भी एक दूसरे के विरूद्ध लड़े हैं ? क्या ईश्वर के ज्ञान व तत्वदर्शिता के लिए यह आवश्यक नहीं था कि ईश्वर कुछ ऐसी व्यवस्था भी करता कि जिस से भ्रष्टाचार पर अंकुश लग जाता और कम से कम ईश्वरीय दूतों का अनुसरण करने वाले ही एक दूसरे के विरूद्ध न लड़ते ?

इस शंका का उत्तर , मनुष्य के पास अधिकार व चयन शक्ति होने की क्षमता में विचार करके प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि, जैसा कि कहा गया है, ईश्वरीय तत्वदर्शिता के लिए आवश्यक है कि वह स्वेच्छिक रूप से परिपूर्णता की ओर बढ़ने की भूमिका प्रशस्त करे ताकि जो भी चाहे , सत्य के मार्ग पर अग्रसर हो सके और कल्याण व परिपूर्णता के लक्ष्य तक पहुँच सके किंतु इस प्रकार की भूमिकाओं व कारकों की व्यवस्था का यह अर्थ नहीं है कि सारे मनुष्य उस से सही लाभ उठाएं और हर हालत में सही मार्ग का ही चयन करें । कुरआन मजीद के शब्दों में , ईश्वर ने विश्व की वर्तमान परिस्थितियों में मनुष्य को इस लिए पैदा किया है ताकि उन्हें यह सिखाए कि कौन सा काम

अच्छा है[1] जैसा कि कुरआने मजीद में बारम्बार बल दिया गया है कि अगर ईश्वर चाहता तो हर एक को सही मार्ग पर डाल सकता था और उन्हें पथभ्रष्ट होने के रोक सकता था[2] किंतु इस दशा में , चयन का अधिकार बाकी नहीं रहता जिस के कारण मनुष्य के कर्मों का कोई महत्व ही न रह जाता तथा एक अधिकार व चयन की शक्ति के साथ मनुष्य की रचना का ईश्वरीय उद्‌देश्य पूरा न होता ।

निष्कर्ष यह निकला कि मनुष्यों में भ्रष्टाचार , विनाश , अवज्ञा और पापों में पाई जाने वाली रूचि स्वंय उस के पास मौजूद चयन शक्ति के कारण है और इस प्रकार के कामों को करने की क्षमता मनुष्य के भीतर विशेष रूप से रखी गयी है । हॉलाकि ईश्वर का मूल उद्‌देश्य यह नहीं था बल्कि उस का मूल्य उददेय , मनुष्य की परिपूर्णता है किंतु चूँकि मूल उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्य के पास अधिकार व चयन शक्ति का होना आवश्यक है। इस लिए इस अधिकार व चयन शक्ति के गलत प्रयोग द्वारा मनुष्यों का विनाश व पतन संभव है क्योंकि ईश्वर यह नहीं चाहता कि सारे के सारे लोग सत्य के मार्ग पर चलें जब कि ऐसा करने की उन की इच्छा न हो ।

3. इस बात के दृष्टिगत ईश्वरीय तत्वदर्शिता व ज्ञान के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अधिक से अधिक और उच्च श्रेणी में कल्याण व परिपूर्णता तक पहुँचे तो क्या बेहतर नहीं था कि ईश्वर , अपने विशेष संदेशों द्वारा प्रकृति के रहस्यों से लोगों को अवगत करा देता ताकि वे विभिन्न प्रकार की नेमतों और प्रकृति के उपहारों से लाभ उठाते हुए परिपूर्णता की अपनी इस यात्रा की गति को और तीव्र कर सकते ? जैसा कि हालिया शताब्दियों में प्रकृति की कई शक्तियों की खोज और विभिन्न प्रकार के साधनों के अविष्कार ने सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है तथा इस प्रकार से बहुत

---

[1] सूरए हूद–आयत 7 ,सूरए कहफ–आयत 7 , सूरए मुल्क– आयत 2 आदि ।

[2] सूरए अनआम– आयात , 35,107,112,137,128 , सूरए अनआम – आयत 99, सूरए युनुस – आयत118 आदि ।

से रोगों से लड़ना और बहुत सी समस्याओं का निवारण सरल हुआ है यहॉ तक कि इस से सूचना व संचार के क्षेत्र में भी अत्याधिक विकास हुआ है। स्पष्ट है कि अगर ईश्वरीय दूत , आश्चर्यजनक विज्ञान द्वारा विकसित साधनों से मनुष्य के जीवन को सरल बनाते तो निश्चित रूप से उन के प्रभाव व राजनीतिक शक्ति में वृद्धि होती जिस से उन्हें अपने लक्ष्य तक पहुॅचने में भी सहायता ही मिलती।

इस का उत्तर यह है कि ईश्वरीय संदेश व ईश्वरीय दूतों की उपस्थिति की मुख्य आवश्यकता , उन विषयों में है कि जिन्हें मनुष्य साधारण ज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता और अगर उन का पता न हो तो वह परिपूर्णता के मार्ग पर आगे नहीं बढ़ सकता । दूसरे शब्दों में ईश्वरीय दूतों का मुख्य कर्तव्य , यह है कि वे लोगों की सही जीवन शैली और परिपूर्णता की ओर बढ़ने में सहायता करें ताकि वह हर स्थिति में अपने कर्तव्यों को पहचानें और अपनी समस्त शक्तियों व क्षमताओं को अपने लक्ष्य तक पहुॅचने के लिए प्रयोग करें ।अब चाहे वह लोग शिविरों में रहने वाले बंजारे हों अथवा समुद्र में यात्रा करने वाले नाविक , सभी लोगों के लिए मानवीय मूल्यों की पहचान प्राप्त करना आवश्यक है और उन्हें यह जानना चाहिए कि वह ईश्वर की उपासना के संदर्भ में क्या कर्तव्य रखते हैं तथा अन्य लोगों के बारे में उन पर कौन से दायित्व आते हैं तथा अन्य प्राणियों व वस्तुओं के प्रति उन का व्यवहार कैसा होना चाहिए ताकि इस प्रकार से वह परिपूर्णता तक पहुॅच सकें , किंतु योग्यताओं व साधनों तथा प्राकृतिक व औद्योगिक संभावनाओं व साधनों में विभिन्नता , चाहे किसी विशेष युग में हो या फिर कई युगों में , एक ऐसा विषय है जो विशेष परिस्थितियों व कारकों के अतंर्गत पैदा होता है और वास्तविक परिपूर्णता व कल्याण में उन की कोई भूमिका नहीं होती जैसा कि वर्तमान युग का वैज्ञानिक विकास,जो सांसारिक सुख भोग में सरलता का कारण बना है , लोगों के आध्यात्मिक विकास में किसी भी प्रकार से प्रभाव शाली नहीं है बल्कि

यह कहा जा सकता है कि इस से मनुष्य के आध्यात्म पर नकारात्मक प्रभाव ही पड़े हैं ।

निष्कर्ष यह निकला कि ईश्वर की तत्वदर्शिता व ज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य भौतिक साधनों व वस्तुओं का प्रयोग करते हुए अपना सांसारिक जीवन व्यतीत करे और बुद्धि व ईश्वरीय संदेश की सहायता से , परिपूर्णता की ओर अग्रसर होने की दिशा का निर्धारण करे किंतु शारीरिक व आत्मिक क्षमताओं में विभिन्नता और इसी प्रकार प्रकृतिक व सामाजिक परिस्थितियों में विविधता तथा उद्योग व विज्ञान से लाभ उठाने की शैलियों में अंतर , विशेष प्रकार की परिस्थितियों के अंर्तगत होता है कि जो कारक व परिणाम के सिद्धान्त के अंतर्गत संभव होता है और यह विभिन्नता , मनुष्य के अंतिम कल्याण व परिपूर्णता को निर्धारित करने में प्रभावी नहीं होता क्योंकि बहुत से लोग अत्यन्त साधारण साधनों के साथ जीवन व्यतीत करने के बावजूद परिपूर्णता व आध्यात्म की उच्च्य श्रेणियों तक पहुँचने में सफल होते हैं और बहुत से लोग आधुनिक जीवन शैली व सुख व समृद्धता के समस्त साधनों के साथ जीवन व्यतीत करने के बावजूद अकृतज्ञता व घमंड तथा अन्य लोगों पर अत्याचार के कारण भ्रष्टाचार व पतन की गहरी खॉइयों में गिर जाते हैं।

यद्यपि ईश्वरीय दूतों ने अपने मुख्य कर्तव्य के पालन अर्थात मनुष्य को परिपूर्णता व कल्याण की ओर ले जाने के अतिरिक्त भी बेहतर सांसारिक जीवन के लिए मनुष्य की बहुत सहायता की है और जहॉं भी ईश्वर ने उचित समझा , उन्हों ने प्रकृति के रहस्यों से पर्दा हटाकर , मानव सभ्यता के विकास में सहायता की है। इस प्रकार के उदाहरण हज़रत दाऊद, सुलैमान और ज़ुलक़रनैन अलैहिमुस्सलाम जैसे ईश्वरीय दूतों की जीवनियों में पाए जाते हैं। इसी प्रकार ईश्वरीय दूतों ने समाज के संचालन और प्रशासन की दिशा में भी अत्याधिक प्रयास किये हैं जैसा कि ईश्वरीय दूत, हज़रत युसुफ ने मिस्र में किया किंतु यह सब कुछ उन के मूल कर्तव्य के अतिरिक्त सेवाएं थीं।

जहॉं तक इस बात का प्रश्न है कि क्यों ईश्वरीय दूतों ने अपने लक्ष्यों तक पहुँचने के लिए अपनी औद्योगिक, आर्थिक व सैनिक शक्तियों का प्रयोग नहीं किया तो इस संदर्भ में यह कहना चाहिए कि ईश्वरीय दूतों का लक्ष्य, जैसा कि बार बार बताया गया है, चेतनापूर्ण चयन की भूमिका प्रशस्त करना था और अगर वह अपनी असाधारण शक्तियों के बल पर आंदोलन आंरभ करते तो मनुष्य के लिए स्वेच्छिक रूप से परिपूर्णता की ओर बढ़ने का लक्ष्य पूरा न होता बल्कि लोग उन की असाधारण व अलौकिक शक्तियों के दबाव में उन का अनुसरण करते न कि ईश्वर की आज्ञापालन की भावना और चयन शक्ति व अधिकार के साथ।

हज़रत अली अलैहिस्स्लाम इस संदर्भ में फरमाते हैं :

**यदि ईश्वर चाहता तो अपने दूतों को भेजते समय सोने व चॉंदी की खानें और बहूमूल्य रत्नों व जवाहर और फलों से भरे हुए बाग़ उन्हें दे देता और हवा में उड़ने वाले पंछियों और धरती पर चलने वाले पशुओं को उन की सेवा का आदेश देते और अगर ऐसा करता तो परीक्षा और प्रतिफल समाप्त हो जाता।**

**... और अगर वह चाहता तो अपने दूतों को असीम शक्ति और अभेद्य सम्मान और ऐसा साम्राज्य देता कि दूसरे लोग डर अथवा लोभ में उन के सामने झुक जाते और अंह व घमंड व गर्व को छोड़ देते और उस स्थिति में, भावनाएं व कारक समान हो जाते किंतु ईश्वर ने ऐसा चाहा कि ईश्वरीय दूतों का अनुसरण और उस की भेजी हुई किताब की पुष्टि और लोगों में आज्ञापालन, केवल ईश्वरीय भावनाओं के अंतर्गत और बिना किसी लोभ के हो। और परीक्षा व दुख जितना बड़ा होगा प्रतिफल व पुण्य उतना ही अधिक होगा।** [1]

[1] नहजुल बलागा– क़ासेआ

यद्यपि जब कुछ लोग अपनी रूचि व इच्छा के साथ और स्वतंत्र चयन द्वारा सत्य धर्म को ग्रहण करते हैं और ईश्वर को प्रिय समाज की रचना करते हैं , विभिन्न प्रकार की शक्तियों का प्रयोग ईश्वरीय उद्देश्यों की पूर्ति विशेषकर अतिक्रमण कारियों और अत्याचारियों के दमन तथा सुकर्मियों की रक्षा के लिए ही होता है । जैसा कि हज़रत सुलैमान की सत्ता में यह उदाहरण देखने को मिलता है ।[1]

## प्रश्न

1. क्या सभी ईश्वरीय दूतों को किसी विशेष क्षेत्र में भेजा गया है ? क्या?

2. क्यों ईश्वरीय दूतों का संदेश विश्व के सभी क्षेत्रों तक नहीं पहुँचा ?

3. क्यों ईश्वर ने ऐसा वातावरण नहीं बनाया कि जिस में भ्रष्टाचार व पापों को रोकना संभव होता ?

4. ईश्वरीय दूतों ने क्यों प्रकृति के रहस्यों से लोगों को अवगत नहीं कराया ताकि इस प्रकार से उन के अनुयाई अधिक भौतिक सुखभोग करते ?

5. ईश्वरीय दूतों ने क्यों अपनी शक्ति को औद्योगिक व आर्थिक विकास के लिए प्रयोग नहीं किया ?

---

[1] सूरए अंबिया– आयत 81 – 82 आदि ।

चौबीसवाँ पाठ

# ईश्वरीय दूतों की पवित्रता

- ईश्वरीय संदेश की सुरक्षा की आवश्यकता
- पवित्रता के अन्य अवसर
- ईश्वरीय दूतों की पवित्रता

## ईश्वरीय संदेश का सुरक्षित होना

इस बात के सिद्ध हो जाने के बाद कि आवश्यक पहचान प्राप्त करने और मानव ज्ञान की कमियों की भरपाई के लिए ईश्वरीय संदेश एक अन्य साधन के रूप में आवश्यक होता है , एक दूसरा विषय समाने आता है और वह यह है :

इस बात के दृष्टिगत कि साधारण मनुष्य अपरोक्ष रूप से पहचान के इस साधन तक नहीं पहुँच सकता और हर एक में ईश्वरीय संदेश प्राप्त करने की योग्यता नहीं होती , विवशतः ईश्वरीय संदेश उन व्यक्तियों से विशेष हो जाता है जिन में यह योग्यता पाई जाती है अर्थात ईश्वरीय दूत तो फिर इस बात की क्या ज़मानत है कि यह संदेश सही होगें? और किस प्रकार से यह विश्वास प्राप्त किया जा सकता है कि ईश्वरीय दूत ने ईश्वरीय संदेश को सही रूप से प्राप्त किया है और उसी सही रूप में उसे लोगों तक पहुँचाया है ? और अगर ईश्वर और उस के दूत के मध्य कोई तीसरा भी हो तो इस बात की क्या ज़मानत है कि उस ने सही रूप में ईश्वरीय संदेश को उस के दूत तक पहुँचाया है? क्यों कि ईश्वरीय संदेश का मार्ग , उसी समय उपयोगी हो सकता है और मानव ज्ञान के पूरक की भूमिका निभा सकता है कि जब स्रोत से गंतव्य तक उस में किसी भी प्रकार की जान बूझ कर अथवा गलती से फेर बदल न की गयी हो अन्यथा साधनों और मध्यस्थों में गलती की आंशका के रहते या जानबूझ कर फेर बदल के संदेह के साथ , लोगों तक पहुँचने वाले संदेश में गलती और असत्य की संभावना उत्पन्न हो जाएगी और इस प्रकार` उस

संदेश से विश्वास ही उठ जाएगा। तो फिर[1] किस प्रकार से इस बात का विश्वास प्राप्त किया जा सकता है कि ईश्वरीय संदेश सही रूप में लोगों तक पहुँचा है ?

स्पष्ट है कि जब ईश्वरीय संदेश की वास्तविकता से लोग अनभिज्ञ होंगे और उन में ईश्वरीय संदेश को प्राप्त करने की भी योग्यता नहीं होगी तो फिर उस के सही अथवा गलत होने के बारे में पता लगाना भी उन के बस में नहीं होगा और वे केवल उसी समय ईश्वरीय संदेशों के गलत होने का अनुमान लगा सकते हैं जब कोई संदेश तर्क व बुद्धि के विपरीत हो । उदाहरण स्वरूप अगर कोई यह दावा करके के उस के पास ईश्वर का यह संदेश आया है कि दो विरोधाभासी विषयों का एक साथ होना संभव और अनिवार्य है या यह कि ईश्वर में संख्या व पतन संभव है तो ऐसी दशा में तर्क व बुद्धि द्वारा यह समझा जा सकता है कि ईश्वरीय संदेश आने का उस का दावा झूठा है किंतु लोगों को ईश्वरीय संदेश की आवश्यकता उन विषयों में होती है जिन में बुद्धि द्वारा उन्हें सही अथवा गलत सिद्ध करने की संभावना नहीं होती और संदेश के विषय पर विचार करके उस के सही अथवा गलत होने को समझना संभव नहीं होता । ऐसी स्थिति में किस प्रकार से ईश्वरीय संदेश के सही होने के प्रति विश्वास प्राप्त किया जा सकता है?

उत्तर यह है : जब बुद्धि , बाईसवें पाठ में वर्णित तर्क के आधार पर ईश्वरीय तत्वदर्शिता व ज्ञान के दृष्टिगत यह समझ लेती है कि वास्तविकताओं और व्यवहारिक कर्तव्यों की सही पहचान के लिए एक अन्य मार्ग का होना भी आवश्यक है , भले ही उसे मूल वास्तविकता का ज्ञान न हो , तो वह इसी प्रकार यह भी समझ लेती है कि ईश्वरीय कृपा व ज्ञान के लिए यह भी

---

[1] इस संदर्भ में कुरआन में आया है: **और ईश्वर तुम्हें अन्जानी व भविष्य की बातों से अवगत कराने वाला तो नहीं है किंतु ईश्वर अपने दूतों में से जिसे चाहता है इस के लिए चुन लेता है।** सूरए आले इमरान – आयत 179

आवश्यक है कि उस के संदेश सही रूप में लोगों तक पहुँचें अन्यथा उस का उद्देश्य पूरा नहीं होगा ।

दूसरे शब्दों में : जब यह पता चल गया कि ईश्वरीय संदेश एक या कई माध्यमों से जनता तक पहुँचते हैं ताकि मनुष्य की अधिकार परिधि पूर्ण हो सके और मानव की रचना में जो ईश्वर का उद्देश्य है वह पूरा हो सके तो फिर ईश्वरीय गुणों के दृष्टिगत यह भी सिद्ध हो जाता है कि यह संदेश हर प्रकार की गलती व हेर फेर से बचे रहेगें क्योंकि अगर ईश्वर यह न चाहे कि उस के संदेश सही रूप से उस के दासों तक पहुँचें तो यह उस की कृपा व तत्वदर्शिता के विपरीत होगा और यह स्थिति ईश्वर के सूझबूझ से परिपूर्ण इरादों और उस के अनन्त ज्ञान के विपरीत होगी और अगर वह अपने संदेश को लोगों तक पहुँचाने के लिए योग्य साधन का चयन न कर पाए और उन्हें दुष्ट लोगों से सुरक्षित न रख पाए तो यह स्थिति उस की अनन्त शक्ति से मेल नहीं खाएगी ।

तो फिर इस बात के दृष्टिगत कि ईश्वर को हर वस्तु का ज्ञान है यह संभावना प्रकट नहीं की जा सकती कि वह ऐसे माध्यम का चयन करे जिस की गलतियों का उसे ज्ञान ही न हो [1] और उस की अनन्त शक्ति के दृष्टिगत यह नही सोचा जा सकता कि वह अपने संदेश को भ्रष्टों और दुष्टों द्वारा हेर फेर और भूल व गलती के कारकों से सुरक्षित रखना चाहा ही नहीं है। तो इस आधार पर ईश्वरीय ज्ञान व शक्ति और तत्वदर्शिता के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने संदेश को सुरक्षित और बिना किसी परिवर्तन के अपने दासों तक पहुँचाए और इस प्रकार से ईश्वरीय संदेश का सुरक्षित होना बौद्धिक तर्कों से सिद्ध होता है।

---

[1] क़ुरआन मजीद इस सदंर्भ में कहता है : **ईश्वर को ज्ञान है कि वह अपना संदेश व दायित्व कहाँ रखे ।** सूरए अनआम– 124

इसी प्रकार इस चर्चा द्वारा , ईश्वरीय संदेश लाने वाले फरिश्तों तथा वह संदेश लेने वाले ईश्वरीय दूतों अर्थात पैगम्बरों का पवित्र व ज़िम्मेदार होना सिद्ध होता है और इसी प्रकार ईश्वरीय संदेश को लोगों तक पहुँचाते समय किसी भी प्रकार की भूल चूक से उन का सुरक्षित रहना भी सिद्ध होता है।

इस प्रकार से कुरआन मजीद में फरिश्तों के अमानतदार व विश्वस्नीय होने और संदेश की सुरक्षा में उनकी शक्ति और पैगम्बरों की पवित्रता तथा ज़िम्मेदारी के साथ उसे लोगों तक पहुँचाने के बारे में जो आयतें हैं और जिस प्रकार से इस विषय पर बल दिया गया है उस से सब कुछ स्पष्ट हो जाता है। [1]

## पवित्रता के अन्य स्थान

इस तर्क से ईश्वरीय दूतों और फरिश्तों की जिस प्रकार की पवित्रता सिद्ध होती है वह संदेश प्राप्त करने और उसे पहुँचाने के बारे में है किंतु इस प्रकार की पवित्रता की अन्य अवसरों पर भी आवश्यकता होती है कि जिसे इस तर्क द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता। इन अवसरों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है , पहला भाग फरिश्तों की पवित्रता व सुरक्षा से संबंधित है और दूसरा पैगम्बरों और ईश्वरीय दूतों की पवित्रता से संबंधित है और तीसरा भाग कुछ लोगों जैसे पैगम्बरों के उत्तराधिकारियों , हज़रत मरयम और हज़रत फातेमा सलामुल्लाह अलैहा की पवित्रता से संबंधित है।

फरिश्तों की पवित्रता के बारे में ईश्वरीय संदेश से हटकर भी पवित्रता के बारे में दो विषयों को प्रस्तुत किया जा सकता है:

प्रथम यह कि फ़रिश्तों की उन विषयों में पवित्रता , जो ईश्वरीय संदेश पहुँचाने से संबंधित नहीं होते और दूसरे अन्य फरिश्तों की पवित्रता, जिन का

---

[1] सूरए शोअरा– आयत 193 , तकवीर– आयत 20, 21 , आराफ– आयत 68, शोअरा–आयत 107,125 ,143,162,178,सूरए दुख़ान – आयत 18 , नज्म – आयत 5, अलहाक़्क़ह आयत– 44ऋ47 आदि ।

ईश्वरीय संदेश पहुँचाने से कोई संबधं नहीं है जैसे आजीविका , कर्म पत्र और मृत्यु जैसे कामों पर तैनात फरिश्ते ।

उन विषयों के सदंर्भ में जो , पैगम्बरों की ज़िम्मेदारियों का भाग नहीं है,, उन की पवित्रता के बारे में दो विषयों को पेश किया जा सकता है, प्रथम यह कि पैगम्बरों का जानबूझ कर किए गये पापों से पवित्र होना और दूसरे गलती व भूल से भी किए जाने वाले पापों से उन की पवित्रता । और इन्हीं दो विषयों पर ईश्वरीय दूतों अर्थात पैगम्बरों के अलावा अन्य लोगों की पवित्रता के बारे में भी चर्चा की जा सकती है।

किंतु ईश्वरीय संदेशों को लेने और पहुँचाने के विषय से हटकर फरिश्तों की पवित्रता , उस समय बौद्धिक तर्क से समझी जा सकती है जब फरिश्तों की वास्तविकता का ज्ञान हो । किंतु फरिश्तों की वास्तवकिता के बारे में चर्चा न सरल है और न ही इस भाग में उस के बारे में चर्चा करना उचित है। इस लिए यहाॅ पर हम कुरआन मजीद की केवल उन दो आयतों का उल्लेख ही करेगें जो फरिश्तों के पवित्र होने को दर्शाती हैं। कुरआन के सूरए अंबिया की आयत 27 में आया है : **बल्कि वे ईश्वर के सम्मानीय दास हैं उस से पहले कुछ बोलते नहीं और उस के आदेश का पालन करते हैं** । इसी प्रकार सूरए तहरीम की आयत 6 में आया है : **वह आदेशों के पालन के बारे में अवज्ञा नहीं करते और जो उन्हें आदेश दिया जाता है उस का पालन करते हैं**। कुरआन की यह दो आयतें स्पष्ट रूप से यह दर्शाती हैं कि फरिश्ते ईश्वर के वह दास हैं जो केवल ईश्वर के आदेशों का पालन करते हैं और कभी भी उस की अवज्ञा नहीं करते हॉलाकि इस बात पर चर्चा की जा सकती है कि यह आयतें सारे फरिश्तों के लिए हैं या कुछ विशेष फरिश्तों के लिए ।

किंतु ईश्वरीय दूतों अर्थात पैगम्बरों के अलावा कुछ अन्य मनुष्यों की पवित्रता के बारे में चर्चा , ईश्वरीय दूतों के उत्तराधिकार अर्थात इमामत के अध्ययाय में उचित रहेगी । इसी लिए यहाॅ पर हम पैगम्बरों की पवित्रता के

बारे में चर्चा करेगें हॉलाकि इस संदर्भ में बहुत से विषयों का समाधान केवल कथनों और इतिहासिक तथ्यों द्वारा ही संभव है किंतु विषय पर ध्यान देते हुए उन का उल्लेख यहीं करना उचित होगा । यहॉ पर हम कुरआन और पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के चरित्र को एक प्रमाण के रूप में स्वीकार करेगें और बाद में इन दोनों विषयों पर विस्तार से चर्चा होगी ।

## पैग़म्बरों की पवित्रता

इस बारे में कि पैगम्बर किस सीमा तक पापों से दूर हैं , मुसलमानों के विभिन्न समूदायों के मध्य मतभेद है: बारह इमामों को मानने वाले शीओं का मानना है कि पैगम्बर अर्थात ईश्वरीय दूत , जन्म से मृत्यु तक छोटे बड़े हर प्रकार के पापों से पवित्र होता है बल्कि गलती व भूल से भी वह पाप नहीं कर सकता किंतु कुछ अन्य गुट , पैगम्बरों को केवल , बड़े पापों से ही पवित्र मानते हैं और कुछ लोगों का मानना है कि युवा होने के बाद वे पापों से पवित्र होते हैं और कुछ अन्य का मानना है कि जब उन्हें औपचारिक रूप से पैगम्बरी दी जाती है तब और कुछ अन्य लोग इस प्रकार की पवित्रता का ही इन्कार करते हैं और यह मानते हैं कि ईश्वरीय दूतों से भी यहॉ तक कि जानबूझकर भी पाप हो सकता है। पैगम्बरों की पापों से दूरी के विषय को प्रमाणित करने से पहले कुछ बातों की ओर संकेत करना उचित होगा पहली बात तो यह कि पैगम्बरों या कुछ लोगों के पवित्र होने का आशय , केवल पाप न करना ही नहीं है क्योंकि संभव है , एक साधारण व्यक्ति भी पाप न करे विशेषकर उस स्थिति में जब उस की आयु छोटी हो। बल्कि इस का अर्थ यह है कि उन में ऐसी शक्ति हो कि जो कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उन्हें पाप करने से रोके, एक ऐसी शक्ति जो पापों की बुराई के प्रति पूर्ण ज्ञान और आंतरिक इच्छाओं पर नियंत्रण के लिए सुदृढ़ इरादे द्वारा प्राप्त होती है । और चूँकि इस प्रकार की शक्ति ईश्वर की विशेष कृपा द्वारा प्राप्त होती है इस लिए उसे ईश्वर से

संबंधित बताया जाता है । किंतु ऐसा नहीं है कि ईश्वर ,पापों से पवित्र लोगों को , बलपूर्वक पापों से दूर रखता है और उस से अधिकार व चयन शक्ति छीन लेता है । बल्कि पैगम्बरों और इमामों की पापों से पवित्रता का अर्थ यह होता है कि ईश्वर ने उन की पवित्रता की ज़मानत ली है। दूसरी बात यह कि किसी भी व्यक्ति के पापों से पवित्र होने का अर्थ , उन कामों को छोड़ना है जिन का करना उस के लिए वर्जित हों जैसे वह पाप जिन का करना सभी धर्मों में ग़लत समझा जाता है और वह काम जो उस के धर्म में वर्जित हो। इस आधार पर किसी पैगम्बर की पवित्रता वह काम करने से जो स्वंय उस के धर्म में वैध हो और उस से पूर्व के ईश्वरीय धर्म में वर्जित हो , या बाद में वर्जित हो जाए , भंग नहीं होती । तीसरी बात यह कि पाप, जिस से पवित्र व्यक्ति दूर होता है , उस काम को कहते हैं जिसे इस्लामी शिक्षाओं में हराम कहा जाता है और इसी प्रकार पाप उन कामों को न करने को भी कहा जाता है जिन का करना आवश्यक हो और जिसे इस्लामी शिक्षाओं में वाजिब कहा जाता है। किंतु पाप के अतिरिक्त अवज्ञा व बुराई आदि के जो शब्द हैं उन के अर्थ अधिक व्यापक होते हैं और उन में श्रेष्ठ कार्य को छोड़ना भी होता है और इस प्रकार के काम पवित्रता को भंग नहीं करते ।

## प्रश्न

1.ईश्वरीय संदेश क्यों फेर बदल से सुरक्षित होते हैं ?

2. ईश्वरीय संदेश प्राप्त करने और पहुँचाने के अतिरिक्त पवित्रता के और क्या अर्थ होते हैं ।

3. फरिश्तों की पवित्रता को किस प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है ?

4. पैगम्बरों की पवित्रता के बारे में कितने प्रकार के कथन पाए जाते हैं? और शीओं का क्या मानना है ?

5. पापों से पवित्रता की परिभाषा करें और उस के आवश्यक तत्वों का वर्णन करें ।

पच्चीसवाँ पाठ

# पैग़म्बरों की पवित्रता का तर्क

- भूमिका
- पैगम्बरों की पवित्रता के बौद्धिक तर्क
- पैगम्बरों की पवित्रता के इतिहासिक तर्क
- पैगम्बरों की पवित्रता का रहस्य

## भूमिका

ईश्वरीय दूतों की जान बूझ कर और भूल से किए गये पापों से पवित्रता में विश्वास, शीओं का एक महत्वपूर्ण विश्वास व आस्था है जिस की इमामों ने शिक्षा दी है और विभिन्न शैलियों में इस विचार धारा के विरोधियों के सामने तर्क पेश किए हैं। इस संदर्भ में इमाम रज़ा अलैहिस्सलाम का एक तर्क अत्यन्त विख्यात है जिस का उल्लेख ऐतिहासिक पुस्तकों में मिलता है ।

किंतु पैगम्बरों और उन के सही उत्तराधिकारियों की साधारण कार्यों में भी भूल चूक से पवित्रता के विषय पर थोड़ा बहुत मतभेद पाया जाता है और इस संदर्भ में पैगम्बरे इस्लाम के परिजनों के जो कथन इतिहास की पुस्तकों में आए हैं उस संदर्भ में भी मतभेद पाया जाता है कि जिस के बारे में व्यापक अध्ययन की आवश्यकता है इस आधार पर इस विश्वास को आवश्यक आस्थाओं में नहीं गिना जा सकता है।

किंतु पैगम्बरों की पापों और गलतियों से दूरी के बारे में जो तर्क पेश किए जाते हैं वह दो प्रकार हैं : बौद्धिक व ऐतिहासिक व कथनों पर आधारित तर्क ।

हालाँकि अधिकतर भरोसा इतिहास में वर्णित कथनों आदि पर ही किया गया है किंतु यहाँ पर हम इस संदर्भ में दो बौद्धिक तर्कों का वर्णन करेगें और उस के बाद कुरआन मजीद में पेश किए गये तर्कों पर चर्चा करेंगे ।

## पैगम्बरों की पवित्रता के बौद्धिक तर्क

पैगम्बरों के पापों से दूर रहने का प्रथम बौद्धिक तर्क यह है कि उन्हें भेजने का मूल उद्देश्य मनुष्य का उन वास्तविकताओं और कर्तव्यों की ओर मार्गदर्शन है जो ईश्वर ने उन के लिए निर्धारित किए हैं और वे वस्तुतः मनुष्यों के लिए ईश्वर के प्रतिनिधि होते हैं कि जिन का कर्तव्य दूसरों को सही मार्ग की ओर बुलाना होता है। अब अगर यह दूत और प्रतिनिधि ईश्वरीय आदेशों पर कटिबद्ध न रहें और स्वंय ही अपने दायित्वों और संदेशों का पालन न करें तो लोग उन की करनी व कथनी के अतंर को समझने के बाद उन की बातों पर भी आवश्यक विश्वास नहीं करेंगे और परिणाम स्वरूप उन के धरती पर आने का मूल उद्देश्य पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हो पाएगा । इस लिए ईश्वर की तत्वदर्शिता के लिए आवश्यक है कि उन के दूत अर्थात पैगम्बर , पापों से दूर और पवित्र हों बल्कि गलती व भूल से भी वह गलत काम न करें ताकि लोगों को ऐसा न लगे कि यह ईश्वरीय दूत भूल व गलती को पाप करने का बहाना बना रहे हैं ।

पैगम्बरों की पवित्रता का दूसरा बौद्धिक तर्क यह है कि उन का कर्तव्य होता है कि मनुष्य को सही मार्ग दिखाएं और उन तक ईश्वरीय संदेश पहुँचाएं किंतु इस के साथ ही उन का एक कर्तव्य यह भी होता है कि वह लोगों का शुद्धिकरण करें और क्षमता रखने वालों को परिपूर्णता के अंतिम चरण तक पहुँचाएं । दूसरे शब्दों में लोगों के मार्गदर्शन के साथ ही साथ पैगम्बरों का यह भी कर्तव्य होता है कि वह लोगों को उन के आध्यात्मिक गतंव्य तक पहुँचाएं अर्थात सम्पूर्ण मार्गदर्शन करें और यह मार्गदर्शन समाज के अत्याधिक क्षमता रखने वाले और बुद्धिजीवियों के लिए भी होता है तो फिर इस प्रकार का काम केवल वही कर सकता है जो मानव की परिपूर्णता के अंतिम चरण में हो और

पापों से दूरी की चरम सीमा अर्थात हर प्रकार की बुराईयों से दूरी की क्षमता उस में मौजूद हो ।

इस के अतिरिक्त भी, मूल रूप से दूसरों के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षक की करनी , कथनी से कई गुना अधिक प्रभाव शाली होती है और जिस की करनी में त्रुटियॉ और कमियॉं पाई जाती होंगी उस के कथन भी प्रभावशाली नहीं होगें । इस लिए समाज के मागदर्शक और प्रशिक्षक के रूप में ईश्वरीय दूतों को भेजने का उद्देश्य उसी समय पूरा होगा जब उन की करनी व कथनी दोनों हर प्रकार की बुराई व अक्षमता से दूर रहे।

## ऐतिहासिक व कुरआनी प्रमाण

1. कुरआन मजीद ने कुछ लोगों को ष्मुख़लसष अर्थात ष ईश्वर को समर्पित ष के नाम से याद किया है । यहॉ तक कि इन लोगों को पथभ्रष्ट करने का इरादा शैतान के मन में भी नहीं आया और न ही आएगा और कुरआन में शैतान की घटना के वर्णन के समय जब उस की उस शपथ का उल्लेख किया गया है जिस में वह आदम की सतांन को पथभ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा करता है तो भी वह ईश्वर को समर्पित इन लोगों को अलग करता है । कुरआन में इस का उल्लेख इस प्रकार प्रकार से हुआ है : **और उस ने कहा तेरी प्रतिष्ठा की सौगंध मैं उन सब को बहकाउॅगा सिवाए तेरे लिए समर्पित दासों के ।** निश्चित रूप से अगर शैतान इन लोगों को न बहकाने की बात करता है तो यह उन्हें प्राप्त ईश्वरीय सुरक्षा के कारण है अन्यथा शैतान ईश्वरीय दूतों का भी शत्रु है और अगर उस के बस में होता तो वह अवश्य उन्हें पथभ्रष्ट करने का प्रयास करता।

इस आधार पर ईश्वर के लिए समर्पित लोग ष्मासूमष कहे जाते हैं जिस का अर्थ ,पापों और गलतियों से पवित्र लोग, होता है । इसी प्रकार कुरआन के सूरए सॅाद की आयत 45 – 46 में कहा गया है।

**और वर्णन करो हमारे दासों इब्राहीम व इसहाक़, व याकूब का जो हाथ और ऑखे रखते थे । हम ने उन्हें विशेष किया परलोक की याद के लिए ।** इसी प्रकार कुरआन में एक अन्य स्थान पर कहा गया है : **और पुस्तक में मूसा का वर्णन करो वह समर्पित थे और ईश्वरीय दूत व पैगम्बरे थे ।** या फिर कुरआन के सूरए युसुफ की आयत 24 में कहा गया है : **और इसी तरह है ताकि हम बुरी घटना और बुराई को उन से दूर करें वह हमारे लिए समर्पित दासों में से थे ।**

2. कुरआन मजीद में पैगम्बरों के पूर्ण रूप से अनुसरण का आदेश दिया गया है जैसा कि सूरए निसाअ की आयत नंबर 63 में कहा जाता है : **और हम ने हर पैगम्बर को इस लिए भेजा ताकि उस का अनुसरण किया जाए ।** और किसी भी मनुष्य का पूर्ण रूप से अनुसरण उसी स्थिति में सही होगा कि जब उस के सभी कर्म ईश्वर के लिए और उसी के आदेशानुसार हों और उस का अनुसरण ईश्वर की आज्ञापालन के विपरीत न हो अन्यथा ईश्वर का आज्ञापालन और ऐसे लोगों का आज्ञापालन जो ईश्वरीय आदेशों का उल्लंघन करते हों एक साथ संभव नहीं हो सकता ।

3. कुरआन मजीद ने ईश्वरीय पदों को ऐसे लोगों से विशेष बताया है जो हर प्रकार के अत्याचार से पवित्र हों । अपनी संतान के लिए लोगों के मार्गदर्शन का पद ईश्वर से मॉगने पर ईश्वरीय दूत हज़रत इब्रहीम के उत्तर में ईश्वर ने कहा है कि **मेरा पद अत्याचारियों तक नहीं पहुँचेगा।** और यह हमें अच्छी तरह से पता है कि हर पाप कम से कम स्वंय पर अत्याचार तो होता ही है और कुरआन की परिभाषा में हर पापी ‘अत्याचारी’ कहा जाता है तो इस प्रकार से ईश्वरीय पैगम्बरों के लिए हर प्रकार की गलती और पाप से पवित्र होना आवश्यक है।

कुरआने मजीद की अन्य आयतों और इसी प्रकार बहुत से कथनों और इतिहासिक तथ्यों से भी पैगम्बरों के लिए इस प्रकार की पवित्रता को सिद्ध किया जा सकता है।

## पैगम्बरों की पवित्रता का रहस्य

इस पाठ के अंत में , उचित होगा कि हम पैगम्बरों की पवित्रता के रहस्य की ओर भी संकेत करते चलें ।

सब से पहली बात तो यह है कि ईश्वरीय संदेश की प्राप्ति के समय हर प्रकार की गलती व भूल से ईश्वरीय दूतों के सुरक्षित रहने का रहस्य यह है कि मूल रूप से ईश्वरीय संदेश की प्राप्ति और उस के बोध की क्षमता , ऐसा ज्ञान व बोध नहीं है जिस में गलती की संभावना पाई जाए और जिस में भी ईश्वरीय संदेश को प्राप्त करने की क्षमता होती है वह एक प्रकार से ज्ञान की वास्तविकता तक पहुँच जाता है और साक्षात रूप में उसे देखता है और ईश्वरीय संदेश से उस ज्ञान का जो संबधं होता है उसे महसूस करता और देखता है और यह नहीं हो सकता कि वहि अर्थात ईश्वरीय संदेश प्राप्त करने वाला इस शंका में पड़ जाए कि उसे संदेश मिला है या नहीं ?

या यह कि किस ने उस तक यह संदेश पहुँचाया है ?

या यह कि ईश्वरीय संदेश का विषय क्या है ?

इस लिए अगर कुछ ईश्वरीय दूतों के बारे में इस प्रकार की बातें की जाती हैं कि उन्हें ईश्वरीय संदेश की प्राप्ति में शंका हुई तो यह सब कुछ मनगढ़न्त और निराधार बातें हैं और इस प्रकार की बातों का अर्थ यह होता है कि कोई मनुष्य ऑखों के सामने मौजूद किसी वस्तु या अपने मन में उठी बात के होने या न होने के बारे में शंका ग्रस्त हो जाए!!

किंतु ईश्वरीय कर्तव्यों के पालन और ईश्वरीय संदेशों को लोगों तक पहुँचाने के मामले में ईश्वरीय दूतों की पवित्रता के रहस्य की व्याख्या से पूर्व एक भूमिका का उल्लेख आवश्यक है ।

और वह भूमिका यह है :

मनुष्य के स्वेच्छा से किए जाने वाले काम कुछ इस प्रकार से होते हैं कि उस के मन में किसी इच्छित काम का विचार उत्पन्न होता है और फिर विभिन्न प्रकार के कारकों के अंतर्गत यह विचार इच्छा का रूप धारण करता है और फिर मनुष्य विभिन्न बोधों और ज्ञान द्वारा उस उद्देश्य तक पहुँचने के मार्ग खोजता है और अपनी उस इच्छा की पूर्ति के लिए आवश्यक कार्य करता है और अगर विभिन्न प्रकार की परस्पर विरोधी इच्छाएं पैदा हो जाएं तो फिर मनुष्य प्रयास करता है कि उस में सर्वश्रेष्ठ व अधिक महत्वपूर्ण इच्छा का चयन करे और उस का पालन करे । किंतु कभी कभी ज्ञान व अनुभव के अभाव के कारण वह गलती कर बैठता है या सर्वश्रेष्ठ कार्य के चयन में गलती या निम्नस्तरीय कार्य में रुचि के कारण उस का चयन गलत हो जाता है और फिर उसे सही करने और सुधारने का अवसर ही नहीं मिलता ।

तो फिर मनुष्य जितना अधिक वास्तविकताओं से परिचित होगा और जितना अधिक वास्तविकताओं पर ध्यान देगा तथा विभिन्न कार्यों के मूल्य व महत्व का उसे जितना अधिक ज्ञान होगा और इस के साथ ही अपनी अन्य इच्छाओं पर नियंत्रण हेतु उस के पास जितना अधिक शक्तिशाली इरादा होगा उतना ही अधिक उस के सही चयन की संभावना होगी और उतना ही अधिक वह गलतियों से सुरक्षित रहेगा ।

यही कारण है कि अधिक ज्ञान व अनुभव रखने वाले योग्य व्यक्ति सही प्रशिक्षण के साथ परिपूर्णता के विभिन्न चरणों तक पहुँचने में सफल होते हैं यहॉ तक कि ईश्वरीय सुरक्षा कवच व पवित्रता के दायरे में आ जाते हैं और उस दशा में गलत कार्य और पाप का विचार भी उन के मन में नहीं आता जैसा कि कोई भी बुद्धि रखने वाला व्यक्ति ज़हरीली दवा पीने या गन्दी और सड़ी गली वस्तुओं को खाने के बारे में नहीं सोचता ।

अब अगर हम यह समझें कि वास्तविकताओं के प्रति किसी की पहचान अपनी चरम सीमा पर होती है और इस के साथ ही उस का मन व उस की आत्मा भी उचित स्तर तक स्वच्छ व पवित्र होती है और कुरआन के शब्दों

में ज़ैतून के तेल की भाँति शुद्ध व स्वच्छ और बिना आग से निकट किए ही जलने के लिए तैयार होती है और इसी योग्यता व मन की स्वच्छता के कारण ईश्वरीय कृपा का पात्र बनता है और फरिश्ते उस के मन की स्वच्छता की पुष्टि करते हैं तो ऐसा व्यक्ति असाधारण रूप से तीव्र गति के साथ परिपूर्णता के मार्ग पर अग्रसर होगा और सौ वर्ष का मार्ग एक रात में पूरा कर लेगा बल्कि बचपन और अपनी माँ की कोख में भी वह बहुत से अन्य लोगों से श्रेष्ठ होगा। ऐसे व्यक्ति के लिए अच्छाई, बुराई और पापों के वास्तविकता उसी प्रकार स्पष्ट होगी जैसा कि एक बुद्धिमान व्यक्ति के लिए विष व गंदी वस्तुओं के खाने की बुराई स्पष्ट होती है और जिस प्रकार से एक बुद्धिमान व्यक्ति की विष व गंदी वस्तुओं से दूरी उस की इच्छा से होती है उसी प्रकार पवित्र पैगम्बरों की पापों से दूरी भी स्वेच्छा के साथ होती है और यह किसी भी रूप में मनुष्य को प्राप्त अधिकार व चयन क्षमता से विरोधाभास नहीं रखती।

## प्रश्न

1. पैगम्बरों की पवित्रता को बौद्धिक तर्कों से सिद्ध करें।

2. कुरआने मजीद की कौन सी आयतें ईश्वरीय दूतों के पवित्र होने को प्रमाणित करती हैं ?

3. ईश्वरीय संदेश को प्राप्त करने में पैगम्बरों की गलतियों से दूरी का रहस्य क्या है?

4. पैगम्बरों की पापों से दूरी किस प्रकार से मनुष्य की चयन क्षमता व अधिकार से मेल खाती है ?

छब्बीसवाँ पाठ

# कुछ शकांओं का निवारण

- पापों से पवित्र लोगों को प्रतिफल का क्या अधिकार है ?
- क्यों पवित्र लोगों ने पापों को स्वीकारा है?
- पैगम्बरों के संदर्भ में शैतान की अधिकार सीमा पवित्रता के मेल खाती है?
- हज़रत आदम के बारे में अवज्ञा व भूल की बात किस प्रकार से की जाती है
- कुछ पैगम्बरों द्वारा झूठ की बात
- हज़रत मूसा द्वारा क़िब्ती जाति के एक व्यक्ति की हत्या
- पैगम्बरे इस्लाम द्वारा अपने कर्तव्यों में संदेह की मनाही

## कुछ शकांओं का निवारण

पैगम्बरों की पवित्रता के बारे में कई प्रकार की शंकाएं और आपत्तियॉं की जाती हैं जिन में कुछ के उत्तर हम यहॉं दे रहे हैं :

1. पहली आपत्ति यह है कि अगर ईश्वर ने पैगम्बरों को पापों से दूर रखा है और यह पवित्रता उन के कर्तव्यों के निर्वाह के लिए आवश्यक भी है तो इस स्थिति में अधिकार व स्वेच्छा की उन में विशिष्टता बाक़ी नहीं रह जाती है और इस प्रकार से उन्हें अच्छे काम करने और बुरे कामों के प्रतिफल का भी अधिकार नहीं होगा क्योंकि अगर ईश्वर किसी भी व्यक्ति को यह विशिष्टता प्रदान करता तो वह भी पापों से दूर रहता ।

इस शकां का उत्तर पिछली बातों में ही निहित है जिस का निचोड़ यह है कि पवित्र होने का अर्थ कर्तव्यों के पालन और पापों से दूरी रखने पर विवशता नहीं हैं जैसा कि पिछले पाठों में स्पष्ट हुआ है और ईश्वर द्वारा पैगम्बरों को पापों व बुराईयों से दूर रखने का अर्थ भी यह नहीं है कि स्वेच्छा से किए गये उन के काम , वास्तव में उन के नहीं होते हैं क्योंकि यह सही है कि हर काम व प्रक्रिया अन्त में ईश्वर के इरादे पर निर्भर होती है किंतु अगर ईश्वर द्वारा किसी विशेष प्रकार के सबंध का वर्णन किया गया हो तो यह निर्भरता और अधिक बढ़ जाती है किंतु ईश्वर का इरादा मनुष्य के इरादे के ऊपर है न कि उस के बराबर और न ही उस के इरादे के स्थान पर ।

किंतु पवित्र लोगों और पैगम्बरों पर ईश्वर की विशेष कृपा , विशेष लोगों को प्राप्त अन्य सुविधाओं , कारकों और विशिष्टताओं की भॉति , उन के कर्तव्य को अधिक भारी व संवेदन शील बना देती है और जिस प्रकार से उन के अच्छे कर्मो का इनाम अधिक होता है उसी प्रकार से उन के बुरे कामों का प्रतिफल भी भारी होता है और इस प्रकार से इनाम व दंड के मध्य संतुलन स्थापित हो जाता है यद्यपि पवित्र व्यक्ति अपनी शक्तिशाली चयन क्षमता के कारण कभी भी दंड का पात्र नहीं बनेगा । इस प्रकार के संतुलन को उन सभी लोगों में देखा जा सकता है जिन्हें किसी भी प्रकार की विशिष्टता प्राप्त हुई है जैसा कि धर्म गुरूओं और पैगम्बरे इस्लाम के परिजनों की जिम्मेदारी अधिक भारी व संवेदन शील है इस लिए जिस प्रकार से उन के अच्छे कर्मो का इनाम अधिक है उसी प्रकार उन के बुरे कर्मो का दंड भी अधिक होता है यद्यपि अगर ऐसा हो तो और यही कारण है कि जिसे भी अधिक उच्च आध्यात्मिक स्थान प्राप्त होगा , उस के पतन का खतरा भी अधिक होगा और पाप से उस का भय भी अधिक होगा।

2. दूसरी शकां यह है कि पैग़म्बरों और इमामों तथा अन्य मागदर्शकों की प्रार्थनाओं का इतिहास में उल्लेख है जिन में उन्हों ने स्वयं ईश्वर से अपने पापों की क्षमा मॉगी है तो फिर इस प्रकार की स्वीकारोक्ति के बाद भी उन्हें पापों से दूर और पवित्र कैसे माना जा सकता है?

इस का उत्तर यह है कि पवित्र लोग थोड़े बहुत अंतर के साथ आध्यात्म व परिपूर्णता की चरम सीमा पर पहुँचे हुए होते थे और अपने लिए आम लोगों की तुलना में अधिक संवेदनशील व भारी कर्तव्यों को लागू समझते थे बल्कि ईश्वर के अतिरिक्त किसी भी अन्य वस्तु की ओर ध्यान देने को भी पाप समझते थे और इसी लिए वह पापों के लिए ईश्वर से क्षमा मॉगते थे । इस से पूर्व बताया जा चुका है कि पैग़म्बरों का पापों से दूर रहने का अर्थ यह नहीं है कि वे हर उस काम से दूर थे जिस में किसी न किसी प्रकार से पाप का

संदेह और पहलू पाया जाता हो बल्कि इस से आशय ईश्वरीय आदेशों के पालन और धर्म में वर्जित कार्यों व वस्तुओं से दूरी है।

3. तीसरी शकां यह है कि पैगम्बरों की पवित्रता को सिद्ध करने के लिए कुरआन के हवाले से पेश किए गये एक प्रमाण में कहा गया है कि वे लोग ष्मुखलस ष्व ईश्वर के लिए समर्पित लोग होते हैं और शैतान भी उन्हें बहकाने का प्रयास नहीं करता जब कि स्वंय कुरआन ही में शैतान द्वारा पैगम्बरों को बहकाने की बात की गयी है जैसा कि सूरए आराफ़ की आयत नंबर 27 में आया है : **हे आदम की संतान ! शैतान तुम्हें धोखा न देने पाए जैसा कि उस ने तुम्हारे पिता को जन्नत से निकलवा दिया था** । इस आयत का साफ अर्थ है कि हज़रत आदम और उन की पत्नी हव्वा को बहका कर जन्नत से उन्हें निकलवाने का काम शैतान का है । इसी प्रकार कुरआन मजीद के सूरए सॉद में भी हज़रत अय्यूब के हवाले से कहा गया है : **उस ने अपने पालनहार को पुकारा मुझे शैतान ने दंड का पात्र बना दिया** । इसी प्रकार सूरए हज की आयत 52 में सभी ईश्वरीय दूतों के लिए शैतान द्वारा बहकाने के प्रयासों की धारणा को बल मिलता है आयत में कहा गया है : **और हम ने तुम से पहले कोई भी पैगम्बर और ईश्वरीय दूत नहीं भेजा है सिवाए इस के जब उस ने आकांक्षा की तो शैतान ने उन्हें उस में प्रोत्साहन दिया ...**

इस का उत्तर यह है कि किसी भी आयत में , शैतान के ऐसे बहकावे की बात सिद्ध नहीं होती जिस से यह प्रमाणित होता हो कि शैतान ने ईश्वरीय दूतों को बुराईयों पर बाध्य करने में सफलता प्राप्त की हो किंतु कुरआन मजीद के सूरए आराफ़ की आयत 27 में उस ष्वर्जित वृक्षष के फल को खाने के बारे में बहकावे को शैतान का काम कहा गया है कि जिस का फल खाना ,हराम नहीं किया गया था और आदम व हव्वा को केवल यह चेतावनी दी गयी थी कि उस फल को खाना , जन्नत से निकलने और धरती पर जाने का कारण बनेगा और शैतान का बहकाना , इस मनाही की उपेक्षा का कारण बना। और मूल

रूप से उस काल और उस स्थान में कर्तव्य या उस के निर्वाह का अवसर ही नहीं था अर्थात ईश्वर द्वारा कुछ कार्यों को करने और कुछ कार्यो से दूरी का आदेश, धरती पर मनुष्यों की रचना के बाद और ईश्वरीय दूतों के आने के बाद दिया गया है किंतु यह घटना उस से पूर्व के काल से संबधं रखती है । इसी प्रकार सूरए सॉद की आयत 41 में भी उन दुखों और कठिनाइयों की ओर संकेत किया गया कि जो शैतान के कारण हज़रत अय्यूब को सहन करनी पड़ी थीं किंतु इस आयत में कोई ऐसी बात नहीं है जिस से यह सिद्ध होता हो कि ईश्वरीय दूत हज़रत अय्यूब ने किसी ईश्वरीय आदेश का उल्लंघन किया हो। इसी प्रकार सूरए हज की आयत 52 में शैतान द्वारा उत्पन्न की जाने वाली उन बाधाओं की ओर संकेत है जो वह ईश्वरीय दूतों के मार्ग में खड़ी करता था और लोगों को परिपूर्णता तक पहुँचाने की उन की आकांक्षाओं को विफल करता था और अन्ततः ईश्वर शैतान की दुष्टताओं को विफल बनाते हुए अपने धर्म को सफलता के तट पर पहुँचाता है।

4. चौथी शकां यह है कि सूरए ताहा की आयत 121 में अवज्ञा और इसी सूरे की आयत 115 में भूल की बात हज़रत आदम अलैहिस्सलाम के लिए कही गयी है तो फिर इस प्रकार की बात किस तरह से ईश्वरीय दूतों के पवित्र होने में विश्वास के साथ मेल खाती है?

इस शकां का उत्तर इस से पहले कही गयी बातों में निहित है अर्थात यह भूल उस समय से संबंधित है जब ईश्वर ने किसी प्रकार के धर्म और किसी कार्य के पालन का आदेश ही नहीं दिया था ।

5. पॉचवीं शकां यह की जाती है कि कुरआन मजीद में कुछ ईश्वरीय दूतों के लिए झूठ की बात कही गयी है जैसा कि सूरए साफ्फात की आयत 89 में हज़रत इब्राहीम के बारे में कहा गया है : **तो उन्हों ने कहा मैं बीमार हूँ ।** हालॉकि वे उस समय बीमार नहीं थे इसी प्रकार सूरए अंबिया की आयत 63 में उन्हीं के हवाले से कहा गया है : **और कहा यह काम उन के इस बड़े ने किया है।** जब कि स्वयं उन्हों ने उन प्रतिमाओं को तोड़ा था । इसी प्रकार

सूरए यूसुफ की आयत 70 में आया है: **फिर एक पुकारने वाले ने पुकार कर कहा लज्जा करो तुम लोग चोर हो ?** जब कि हज़रत युसुफ के भाईयों ने चोरी नहीं की थी।

इस का उत्तर यह है कि इस प्रकार की बातें जैसा कि इमामों ने स्पष्ट किया है अन्य आशय व दूसरे अर्थ को मन में रखकर कही गयी हैं और इन का उद्देश्य अधिक महत्वपूर्ण हितों की रक्षा करना था और कुछ आयतों से यह समझा जा सकता है कि यह सब कुछ ईश्वर की प्रेरणा से था जैसा कि हज़रत युसुफ़ अलैहिस्सलाम के बारे में कुरआन में कहा गया है : **और इस प्रकार से हम ने युसुफ के लिए चाल चली ।** प्रत्येक दशा में , इस प्रकार के झूठ, पाप नहीं है और पवित्रता के विपरीत भी नहीं है।

6. छठी शकां यह है कि हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम की जीवनी में आया है कि उन्हों ने बनी इस्राईल अर्थात हज़रत मूसा के एक अनुयाई से लड़ रहे क़िब्ती जाति के एक व्यक्ति की हत्या कर दी और इसी लिए वे मिस्र से भागने पर विवश हुए और जब ईश्वर ने मिस्र के शासक फिरऔन और उस के अनुयाईयों को ईश्वरीय धर्म की ओर बुलाने का उन्हें आदेश दिया तो उन्हों ने कहा : **उन के लिए मुझ पर पाप है इस लिए मुझे डर है कि वे लोग मुझे कहीं मार न डालें ।**[1] फिर फिरऔन ने जब उस हत्या की याद दिलाई तो हज़रत मूसा ने उस के उत्तर में कहा : **मैं ने यह तो कर लिया है अब मैं भटकने वालों में से हूँ।** [2] तो प्रश्न यह है कि यह घटना किस प्रकार से ईश्वरीय दूतों की पवित्रता में विश्वास से मेल खाती है?

इस का उत्तर यह है कि पहली बात तो यह कि उस क़िब्ती जाति के व्यक्ति की हत्या जानबूझ कर उन्हों ने नहीं की थी बल्कि एक घूँसा मारते ही उस की मृत्यु हो गयी थी और दूसरी बात यह कि ``उन के लिए मुझ पर पाप है

---

[1] सूरए शोअरा– आयत 14

[2] सूरए शाअरा– आयत 20

ъ का अर्थ यह है कि उन की दृष्टि में मैं अपराधी हूँ अर्थात हज़रत मूसा का आशय यह था कि फिरऔन और उस के अनुयाई मुझे हत्यारा और अपराधी समझते हैं और मुझे डर है कि बदले की कार्यवाही के अंतर्गत कहीं वे लोग मुझे मार न डालें। तीसरी बात यह कि जो उन्हों ने कहा है कि ष्मैं भटकने वालों में से हूँ ष्तो इस का आशय भी फिरऔन और उस के अनुयाइयों को सत्य की ओर बुलाना था अर्थात वे कह रहे थे कि ठीक उस समय मैं भटकने वालों में से था किंतु इस समय मैं ईश्वर की ओर से ठोस प्रमाणों और चिन्हों के साथ तुम्हारे पास आया हूँ । या फिर वे भटकने की बात द्वारा यह कहना चाहते थे कि उन्हें उस कार्य के अन्त का ज्ञान नहीं था किंतु प्रत्येक दशा में यह इस बात को कदापि सिद्ध नहीं करता कि उन्हों ने ईश्वर की अवज्ञा की थी ।

7. सातवीं शंका यह है कि सूरए यूनुस की आयत 94 में पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को संबोधित करके कहा गया है : **तो फिर अगर हम ने तुम पर जो कुछ उतारा है उस के बारे में तुम्हें संदेह है तो फिर उन लोगों से पूछ लो जो लोग तुम से पूर्व किताब पढ़ते थे । निश्चित रूप से तुम्हारे पास तुम्हारे पालनहार की ओर से सत्य आ गया है तो फिर आनाकानी करने वालों में से न हो ।** इसी प्रकार सूरए बक़रह की आयत 147 , सूरए आले इमरान की आयत 60, सूरए अनआम की आयत 114 , सूरए हूद की आयत 17 और सूरए सजदा की आयत 23 में पैगम्बरे इस्लाम को शकां व संदेह से रोका गया है तो फिर किस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि ईश्वरीय संदेश को प्राप्त करने के ज्ञान व बोध में शंका व संदेह का स्थान नहीं होता ?

इस शंका का उत्तर यह है कि यह सारी आयतें पैगम्बरे इस्लाम में शंका व संदेह को सिद्ध नहीं करतीं बल्कि यह इस बात का वर्णन करती हैं कि पैगम्बरे इस्लाम की पैगम्बरी , कुरआन तथा उस में वर्णित समस्त तथ्यों में किसी भी प्रकार की शंका की गुंजाइश नहीं है और इस प्रकार से जो पैगम्बरे इस्लाम को संबोधित किया गया है तो वह वास्तव में दूसरे लोगों के लिए था

और कुरआन में इस प्रकार की शैली को कई अन्य स्थानों पर भी प्रयोग किया गया है अर्थात अन्य लोगों को किसी कार्य विशेष से मना करने के लिए पैगम्बरे इस्लाम को संबोधित किया गया है ।

8. आठवीं शकां यह है कि कुरआन मजीद में पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के कुछ ऐसे गुनाहों और पापों की बात की गयी है जिन्हें क्षमा कर दिया गया जैसा कि सूरए फत्ह की पहली आयत में आया है : **ताकि तुम्हारे पहले और बाद के गुनाहों को माफ कर दे ।**

इस शकां का उत्तर यह है कि इस आयत में ' गुनाह ' से वह पाप आशय हैं जो पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के पलायन से पहले और बाद में अनेकेश्वर वादियों की नज़र में थे उन का मानना था कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने उन के देवताओं का अपमान किया है और यहॉ पर माफ करने से आशय उन परिणामों की संभावना को समाप्त करना जो संभवतः अनेकेश्वरवादियों के इस विचार के कारण सामने आ सकते थे और इस बात का प्रमाण यह है कि ईश्वर ने इन पापों को माफ करने का कारण मक्का नगर पर विजय को बताया है जैसा कि आयत के पहले भाग में है : **निश्चित रूप से हम ने तुम्हें एक स्पष्ट विजय प्रदान की ताकि तुम्हारे पहले और बाद के गुनाहों को माफ कर दे ।** स्पष्ट सी बात है कि अगर यहॉ पर गुनाह से वही पाप आशय होता तो फिर माफी का कारण मक्का नगर पर विजय बताना तार्किक नहीं होता ।

9. नवीं शकां यह है कि कुरआने करीम ने पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के उन के दत्तक पुत्र ज़ैद की पूर्व पत्नी से विवाह की घटना का वर्णन करते हुए सूरए अहज़ाब की आयत 37 में कहा है : **और तुम लोगों से डरते हो और ईश्वर डरे जाने का अधिक योग्य है।** तो फिर यह बात ईश्वरीय दूतों की पवित्रता के विश्वास से साथ कैसे मेल खाती है ?

इस शकां का उत्तर यह है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को इस बात की आशकां थी कि लोग धर्म पर विश्वास में कमज़ोरी के कारण , एक गलत परपंरा तो तोड़ने के लिए ईश्वर के आदेश से किए गये इस काम को उन की व्यक्तिगत रुचि न समझ बैठें और इस प्रकार से धर्म पर उन का विश्वास ही उठ जाए इसी लिए ईश्वर इस आयत में अपने पैग़म्बरे को बताता है कि इस परपंरा को तोड़ने में जो लाभ है वह इस परपंरा को तोड़ने के ईश्वरीय आदेश के विरोध से डरने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । इस प्रकार से इस आयत में कहीं से भी पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की आलोचना का पहलू नज़र नहीं आता ।

10. दसवीं शंका यह है कि कुरआन मजीद ने पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के कुछ कामों पर अप्रसन्नता प्रकट की है जैसा कि सूरए तौबा की आयत 43 में पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम द्वारा कुछ लोगों को युद्ध में भाग न लेने की अनुमति दिए जाने के संदर्भ में आया है : **ईश्वर नें उन्हें अनुमति देने के मामले में तुम्हें माफ कर दिया है ।** इसी प्रकार पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम द्वारा अपनी पत्नी को प्रसन्न करने के लिए कुछ वैध वस्तुओं को प्रयोग न करने की घटना को लेकर कुरआन के सूरए शोअरा की आयत 3 में आया हैः **हे पैगम्बर ! तुम अपनी पत्नियों को प्रसन्न करने के लिए अपने लिए उन वस्तुओं को क्यों वर्जित करते हो जिन्हें ईश्वर ने तुम्हारे लिए वैध बनाया है ।** तो फिर इस प्रकार की अप्रसन्नता व डॉट किस प्रकार से हर गलती व पाप से पैगम्बरों के सुरक्षित रहने में विश्वास को मज़बूत कर सकती है ?

इस का उत्तर यह है कि इस प्रकार का संबोधन वास्तव में डॉट के रूप में सराहना की शैली को लिए हुए है जो अरबी साहित्य में एक प्रचलित शैली है। बल्कि इस से तो पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के प्रति ईश्वर की अत्यन्त कृपा व स्नेह का ही पता चलता है कि वे

मिथ्याचारियों और अधर्मी लोगों को भी निराश नहीं करते थे और उन के मन की बात को दूसरे पर प्रकट नहीं करते थे और इसी प्रकार अपनी पत्नियों की इच्छाओं को अपनी इच्छा पर प्राथमिकता देते थे और बहुत से ऐसे कामों को अपने लिए वर्जित कर लेते थे जो वास्तव में उन के लिए वैध थे परन्तु यह समझना सही नहीं होगा कि वे इस प्रकार से ईश्वर द्वारा वैध वस्तुओं को लोगों के लिए वर्जित कर देते थे ।

वास्तव में , यह आयतें एक दृष्टि से उन आयतों से मिलती जुलती हैं जो अनेकेश्वरवादियों के मार्गदर्शन के लिए पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के अनथक प्रयासों की ओर संकेत करती हैं जैसे सूरए शोअरा की आयत 3 में आया है : **और शायद तुम्हारा बड़ा दिल चाहता है कि काश वह लोग ईश्वर पर आस्था रखने वालों में से हो जाएं ।** या फिर उन आयतों की भाँति हैं जो ईश्वरीय संदेश को दूसरों तक पहुँचाने में पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के अपार प्रयासों और परिश्रम की ओर संकेत करती हैं जैसे : **ताहा** ; पैगम्बरे इस्लाम **द्ध हम ने कुरआन तुम पर इस लिए नहीं उतारा है कि तुम अपने आप को थका डालो ।** कुल मिलाकर यह आयतें भी ईश्वरीय दूतों की पवित्रता के विश्वास के विपरीत नहीं हैं ।

## प्रश्न

1. पापों से पवित्र व्यक्ति को अन्य लोगों की तुलना में क्या विशिष्टताएं प्राप्त होती हैं? और ईश्वर की विशेष कृपा के परिणाम में किए जाने वाले काम पर इनाम किस प्रकार से मिल सकता है ?

2. ईश्वरीय दूत और उस के विशेष दास क्यों स्वंय को पापी समझते हुए ईश्वर से अपने पापों को क्षमा करने की प्रार्थना किया करते थे ?

3. ईश्वरीय दूतों के प्रति शैतान का व्यवहार उन की पापों से पवित्रता के साथ किस प्रकार से सामजंस्य रखता है ?

4. हज़रत आदम अलैहिस्लाम की जिस भूल और अवज्ञा का उल्लेख है वह किस प्रकार से पापों से उन की पवित्रता में विश्वास से मेल खाती है ?

5. अगर सारे ईश्वरीय दूत पापों से पवित्र थे तो फिर क्यों हज़रत युसुफ और हज़रत इब्राहीम ने झूठ बोला ?

6. हज़रत मूसा की पवित्रता के बारे में शकां और उस के उत्तर का वर्णन करें

7. अगर ईश्वरीय संदेश को प्राप्त करने में गलती की कोई संभावना नहीं है तो फिर ईश्वर ने क्यों बार बार पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को अपने कर्तव्यों के बारे में शंका करने से मना किया है ?

8. कुरआन मजीद के सूरए फत्ह में पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के जिस गुनाह का वर्णन हुआ है उस के होते हुए पापों से उन की पवित्रता में किस प्रकार से विश्वास रखा जा सकता है ?

9. ज़ैद से संबंधित घटना के बारे में शंका और उस के उत्तर का वर्णन करें ?

10. पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम से अप्रसन्नता के बारे में शकां क्या है ? उस का उत्तर दें ।

सत्ताइसवाँ पाठ

# मोजिज़ा या चमत्कार

- पैगम्बरी सिद्ध करने के मार्ग
- मोजिज़े की परिभाषा
- असाधारण काम
- ईश्वर के असाधारण कार्य
- पैग़म्बरों के चमत्कारों की विशेषताएं

## पैग़म्बरी सिद्ध करने के मार्ग

पैग़म्बरी के बारे में चर्चा का तीसरा महत्वपूर्ण भाग यह है कि सच्चे ईश्वरीय दूतों की सत्यता और झूठे दावे करने वालों के झूठ को किस प्रकार दूसरों के सामने सिद्ध किया जा सकता है ?

निश्चित रूप से अगर कोई व्यक्ति कुकर्मी है और ऐसे गलत काम करता है जिन की बुराई बुद्धि के द्वारा भी समझी जा सकती है तो ऐसे व्यक्ति पर विश्वास नहीं किया जा सकता और ईश्वरीय दूतों में पापों से पवित्रता की शर्त के दृष्टिगत इस प्रकार के किसी व्यक्ति के पैगम्बरी के दावों को बड़ी सरलता से झूठ सिद्ध किया जा सकता है विशेष कर उस समय यह काम और भी सरल होगा जब वह ऐसे कामों का आह्वान करे जो मानव प्रवृत्ति के विपरीत हों या फिर उस की बातों में विरोधाभास पाया जाता हो।

दूसरी ओर , संभव है कि किसी व्यक्ति का अतीत व आचरण कुछ इस प्रकार का हो कि साधारण लोग उस की सच्चाई पर विश्वास करें विशेषकर उस स्थिति में कि जब बुद्धि भी उस की कही हुई बातों की पुष्टि करती हो । इस के साथ ही यह भी संभव है कि कोई पैगम्बर अपने से पूर्व के पैग़म्बर की भविष्यवाणी या उस के द्वारा चिन्हित किए जाने के बाद , ईश्वरीय दूत का पद संभाले। इस स्थिति में भी सत्य के खोजियों के लिए शकां की कोई गुजांइश बाक़ी नही रहती ।

किंतु जब लोगों के पास सन्तोषजनक चिन्ह व जानकारी न हो और अन्य किसी ईश्वरीय दूत का कोई कथन अथवा भविष्य वाणी भी मौजूद न हो

तो स्वाभाविक रूप से किसी व्यक्ति की पैगम्बरी को सिद्ध करने के लिए एक अन्य मार्ग की आवश्यकता होगी और कृपालु ईश्वर ने अपने असीम ज्ञान के कारण यह मार्ग दर्शाया है और अपने दूतों को ऐसे मोजिज़े व चमत्कार दिए हैं जिस के द्वारा वे अपने दावों को लोगों के सामने सही सिद्ध कर सकते हैं और यही कारण है कि इस प्रकार के चमत्कारों को ‘चिन्ह’ कहा जाता है।

निष्कर्ष यह निकला कि सच्चे पैग़म्बरों की सच्चाई को सिद्ध करने के तीन मार्ग है:

1. संतोषजनक जानकारियों और व्यवहार के कारण उदाहरण स्वरूप पैगम्बरी का दावा करने वाले की सत्यता, पवित्र आचरण और पूरी आयु में न्याय के मार्ग से एक क्षण के लिए भी विचलित न होना आदि किंतु यह मार्ग केवल उन्हीं पैगम्बरों के लिए है कि जिन्हों ने वर्षों तक लोगों के मध्य जीवन व्यतीत किया हो और लोग उन के आचरण को भलीभाँति जानते हों क्योंकि अगर उदाहरण स्वरूप अगर किसी पैगम्बर को उस की युवास्था में ही , अर्थात इस से पूर्व कि लोग उस के व्यक्तित्व के हर पहलू और उस के आचरण के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर सकें , उसे पैगम्बर का पद दे दिया जाए उदाहरण स्वरूप किशोरावस्था में ही तो फिर ऐसे पैगम्बर की सत्यता को उस के आचरण व व्यवहार द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता ।

2. किसी समकालीन अथवा अतीत के पैगम्बर द्वारा आने वाले या अन्य किसी पैगम्बर की ओर संकेत किया जाए किंतु यह साधन भी केवल उन्हीं लोगों के मध्य प्रभावी होगा जो पहले भी ईश्वरीय दूतों से अवगत हों और किसी अन्य परिचित ईश्वरीय दूता द्वारा की गयी पुष्टि की भी जानकारी रखते हों । इसी लिए स्वाभाविक रूप से किसी समुदाय के मध्य पहले पैगम्बर की सत्यता को इस प्रकार से सिद्ध नहीं किया जा सकता।

3. चमत्कारों और मोजिज़ो द्वारा कि जो अधिक व्यापक रूप से प्रभावी हो सकता है । यहाँ पर हम इसी संदर्भ में थोड़ा विस्तार से चर्चा करेगें ।

## चमत्कार की परिभाषा

चमत्कार या मोजिज़ा उस काम को कहते हैं जो असाधारण रूप से ईश्वर के आदेश से पैगम्बरी का सच्चा दावा करने वाले को सच्चा सिद्ध करता हो।

जैसा कि आप ने देखा ही होगा इस परिभाषा के तीन भाग हैं :

पहला : कुछ ऐसी घटनाएं भी होती हैं जो साधारण व प्रचलित कारकों का परिणाम नहीं होती

दूसरा : इस प्रकार के कुछ असाधारण कार्य , ईश्वर के इरादे और उस की विशेष अनुमति के बाद पैग़म्बरों द्वारा किए जाते हैं

तीसरा : इस प्रकार का आसाधारण काम अगर किसी पै़गम्बर द्वारा अपनी पैग़म्बरी को सिद्ध करने के लिए हो तो उसे मोजिज़ा कहा जा सकता है। अब यहाॅं पर हम इस संदर्भ में अधिक चर्चा करेगें ।

## मोजिज़ा या चमत्कार की परिभाषा

मोजिज़ा या चमत्कार उस असाधारण काम को कहते हैं कि जो ईश्वर के आदेश से पैगम्बरी का दावा करने वाला व्यक्ति करता है ताकि वह काम उस के दावे की सत्यता का प्रमाण हो जाए ।

जैसा आप ने देखा कि यह परिभाषा तीन भागों पर आधारित है।

पहला : कुछ ऐसी असाधारण प्रक्रियाएं भी होती हैं जो साधारण व सामान्य कारकों के बल पर नहीं होतीं ।

दूसराः कुछ असाधारण कार्य , ईश्वर के इरादे और उस की विशेष अनुमति के साथ पैगम्बरों द्वारा किए जाते हैं।

तीसरा : इस प्रकार के असाधारण कार्य , यदि पैगम्बर के दावों के सही होने का प्रमाण हो सकते हैं तो उस दशा में उन्हें मोजिज़ा या चमत्कार कहा जाता है।

अब हम इन तीनों की परिभाषा करेंगे ।

## असाधारण प्रकियाएं

इस संसार में घटने वाली घटनाएं अधिकाशं उन कारकों के आधार पर होती हैं कि जिन्हें विभिन्न प्रकार के प्रयोगों द्वारा समझा जा सकता है उदाहरण स्वरूप रसायनिक व भौतिक शास्त्र के अधिकांश परिवर्तन किंतु कभी कभी इन में से कुछ घटनाएं किसी दूसरी शैली में घटती हैं और उन के समस्त कारकों को महसूस करके पहचाना तथा उन के प्रमाणों को देखा जा सकता है जैसे कि कुछ योगी असाधारण काम करते हैं या विभिन्न ज्ञानों के विशेषज्ञ स्वीकार करते हैं कि इस प्रकार के काम भौतिक ज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर नहीं होते । इस प्रकार के कामों और प्रक्रियाओं को असाधारण कहा जाता है।

## ईश्वर के असाधारण कार्य

असाधारण कार्यो को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: एक वह काम जो साधारण कारक के आधार पर नहीं होते किंतु किसी सीमा तक उस के कारक मनुष्य के अधिकार में होते हैं और उस काम को विभिन्न प्रकार के अभ्यासों और प्रशिक्षण द्वारा हर एक के लिए करना संभव होता है उदाहरण स्वरूप योगियों के बहुत से असाधारण कार्य किंतु इस का दूसरा भाग वह असाधारण कार्य हैं जिन का होना ईश्वर की विशेष अनुमति पर निर्भर करता है और ऐसे काम वह लोग नहीं कर सकता जिन का ईश्वर से विशेष सपंर्क न हो इस आधार पर इस प्रकार के असाधारण कामों की दो मूल विशेषताएं होती हैं पहली तो यह कि यह काम सीखे या सिखाए नहीं जा

सकते और दूसरे उन पर अधिक शक्तिशाली किसी अन्य शक्ति का प्रभाव नहीं पड़ता और वह किसी अन्य कारक के प्रभाव में नहीं आते । इस प्रकार के असाधारण कार्य , ईश्वर के चुने हुए दासों से विशेष हैं और किसी भी स्थिति में पथभ्रष्ट और पापी लोग ऐसे काम करने में सक्षम नहीं होते किंतु इस के बावजूद इस प्रकार के कार्य केवल पैगम्बरों और ईश्वरीय दूतों से ही विशेष नहीं हैं बल्कि ईश्वर के अन्य विशेष दास भी इस प्रकार के असाधारण कार्य करने की क्षमता रखते हैं । इस आधार पर इस प्रकार के सभी कार्यो को ष्मोजिज़ाॽ नहीं कहा जा सकता बल्कि आम तौर पर अगर इस प्रकार के कामों को ईश्वरीय दूतों के अलावा किसी अन्य ने किया हो तो उसे ष्करामत ॽ अर्थात ष्चमत्कारॽ कहा जाता है।इसी प्रकार ईश्वर से संबंधित असाधारण विद्या भी केवल पैगम्बरों को प्राप्त होने वाले ईश्वरीय संदेश पर ही निर्भर नहीं है किंतु ईश्वर की ओर से जब इस प्रकार की विद्या और ज्ञान पैगम्बरों के अलावा किसी अन्य को प्राप्त होता है तो उसे ष्इल्हामॽ अर्थात प्रेरणा आदि कहा जाता है।

इस के साथ ही ईश्वरीय और गैर ईश्वरीय असाधारण कार्यो को पहचानने का मार्ग भी स्पष्ट हो गया अर्थात अगर कोई असाधारण कार्य सीखे और सिखाए जाने योग्य हो या कोई अन्य कर्ता उसे करने या न होने देने में सक्षम हो तो वह ईश्वरीय असाधारण कार्यो में शामिल नहीं होगा । जैसे कोई असाधारण कार्य करने वाले भ्रष्ट व पापी व्यक्ति के आचरण के दृष्टिगत भी उस के असाधारण कार्यो के गैर ईश्वरीय और शैतानी होने को समझा जा सकता है।

यहाँ पर उचित होगा कि एक अन्य विषय की ओर संकेत करें और वह यह है कि ईश्वरीय असाधारण कार्यो का कर्ता , ईश्वर को समझा जा सकता है। इस दृष्टि से इन कामों का होना ईश्वर की विशेष अनुमति पर निर्भर होता है और उसे फरिश्तों या पैगम्बरों के काम कहा जा सकता है क्योंकि वे इस असाधारण ईश्वरीय कार्य के होने का साधन होते हैं जैसा कि कुरआन मजीद

में मरे हुए लोगों को जीवित करने , रोगियों को स्वस्थ करने और पंछी बनाने जैसे कार्यों को हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के कार्य कहा गया है जब कि वास्तव में वह सब ईश्वर की विशेष अनुमति से होने वाले कार्य थे किंतु इस के बावजूद हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के कर्ता होने और ईश्वर के कर्ता होने में कोई टकराव नहीं है क्योंकि ईश्वर मनुष्य से ऊपर रह कर काम करता है।

## पैग़म्बरों के मोजिज़ों की विशेषताएं

तीसरा विषय कि जिस की ओर मोजिज़े की परिभाषा में संकेत किया गया यह है कि ईश्वरीय दूतों के मोजिज़े , उन की बातों के सही होने का प्रमाण होते हैं और इस दृष्टि से जब किसी असाधारण कार्य को उस की विशेष परिभाषा के साथ ष्मोजिज़ाष कहा जाता है तो वह ईश्वर की विशेष अनुमति के अर्थ के साथ ही साथ पैगम्बरों की सत्यता का प्रमाण भी होता है और थोड़े से अधिक व्यापक अर्थ को अगर ध्यान में रखा जाए तो वह उन असाधारण कार्यों को भी कहा जा सकता है जो इमामों की इमामत की सत्यता का प्रमाण हो सकते हैं । तो इस प्रकार से ष्करामतष मोजिज़े के अलावा उन असाधारण कार्यों को कहा जाता है कि जो ईश्वर के अन्य विशेष दास करते हैं और यह उन असाधारण कार्यों के मुकाबले में होता है जो शैतानी और दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों द्वारा किया जाता है जैसे जादू टोना आदि। इस प्रकार के कार्य सीखे और सिखाए जा सकते हैं और इस के साथ ही अपने से अधिक शक्तिशाली शक्ति के प्रभाव में भी आ जाते हैं और इस प्रकार के कार्यो को ईश्वरीय न होने को इन कार्यो के करने वालों के भ्रष्टाचार व गलत आचरण से भी समझा जा सकता ।

यहाँ पर इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि पैगम्बरों के मोजिज़ो से सीधे रूप से जो बात सिद्ध होती है वह उन की सत्यता है किंतु उन के संदेश की सत्यता और उस का अनुसरण आवश्यक होना परोक्ष रूप से सिद्ध

होता है । दूसरे शब्दों में पैगम्बरों की पैगम्बरी बौद्धिक तर्क और उन के संदेश की विश्वस्नीयता और कुरआन व इमामों के कथनों से सिद्ध होती है।[1]

## प्रश्न

1. सच्चे पैगम्बरों को किस प्रकार से पहचाना जा सकता है ? और पहचानने के मार्गों में अंतर क्या है ?

2. झूठे दावे करने वालों को कैसे पहचाना जा सकता है ?

3. मोजिज़े की परिभाषा करें ।

4. असाधारण कार्य क्या हैं ?

5. ईश्वरीय असाधारण कार्यो और गैर ईश्वरीय असाधारण कार्यो में अंतर क्या है?

6. ईश्वरीय असाधारण कार्य को किस प्रकार से पहचाना जा सकता है ?

7. ईश्वरीय असाधारण कार्यो में पैगम्बरों के मोजिज़ो की क्या विशेषता है ?

8. मोजिजा और करामत की परिभाषा करें

9. मोजिज़ा ईश्वर का कार्य है या पैगम्बरों का ?

10. मोजिज़ा पैगम्बरों की सत्यता का प्रमाण है या उन के संदेश की विश्वस्नीयता का ?

---

[1] .इसी किबात के चौथे व इक्कीसवें पाठ को देखें

अट्ठाइसवाँ पाठ

# कुछ शकांओं का निवारण

- क्या मोजिज़ा कारक व परिणाम के सिद्धान्त को नकारता है ?
- क्या असाधारण कार्य ईश्वरीय परंपरा के विपरीत नहीं है ?
- पैग़म्बरे इस्लाम क्यों मोजिज़ा नहीं दिखाते थे ?
- मोजिज़ा बौद्धिक तर्क है या सन्तोष दिलाने वाला तर्क ?

## कुछ शकांओं का निवारण

मोजिज़े के संदर्भ में , कुछ शंकाएं पेश की जाती हैं जिस पर हम चर्चा करते हुए उन का निवारण करेगें ।

1. पहली शंका यह है कि प्रत्येक भौतिक प्रक्रिया के लिए विशेष कारक की आवश्यकता होती है जिसे वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा पहचाना जा सकता है और अगर किसी प्रक्रिया के कारक का पता न लगाया जा सके तो यह प्रयोग व पहचान के साधनों की कमी के कारण होगा और किसी भौतिक प्रक्रिया के कारक की पहचान न होना इस अर्थ में नहीं है कि उस के लिए कोई कारक ही नहीं है । इस आधार पर असाधारण प्रक्रिया व कार्यों के कारक को केवल इस रूप में स्वीकार किया जा सकता है कि उस के कारक की पहचान नहीं हो सकी है और अधिक से अधिक उन कार्यों को उस समय तक मोजिज़ा या चमत्कार समझा जा सकता है जब तक उन कार्यों की पहचान नही की जा सकी है अन्यथा वैज्ञानिक साधनों द्वारा पहचान योग्य कारकों के इन्कार का अर्थ कारक व परिणाम के सिद्धान्त के विपरीत होने के कारण अस्वीकारीय है।

इस का उत्तर यह है कि कारक व परिणाम के सिद्धान्त का अर्थ केवल यही होता है कि प्रत्येक निर्भर अस्तित्व के लिए एक कारक का होना आवश्यक है किंतु जहॉ तक इस बात का प्रश्न है कि प्रत्येक कारक को निश्चित रूप से प्रयोग शाला में विभिन्न प्रयोगों द्वारा पहचानने योग्य होना चाहिए , किसी भी प्रकार से कारक व परिणाम के सिद्धान्त के लिए आवश्यक

बात नहीं है और इस का कोई प्रमाण भी नही पाया जा सकता है क्योंकि वैज्ञानिक प्रयोग भौतिक वस्तुओं तक ही सीमित होते हैं और भौतिकता के दायरे से अलग वस्तुओं और प्रक्रियाओं के होने या न होने को प्रयोगशाला के साधनों से समझा नहीं जा सकता ।

इस के अतिरिक्त मोजिज़े व चमत्कार के बारे में यह कहना सही नहीं है कि वह उसी समय तक चमत्कार रहेगा जब तक उस के कारकों का पता नहीं चला है , क्योंकि अगर उन कारकों को भौतिक साधनों से पहचानना संभव होता तो फिर वह असाधरण कार्य भी सामान्य व साधारण भौतिक प्रक्रियाओं की भॉति होते और उसे किसी भी प्रकार से असाधारण कार्य नहीं कहा जा सकता और अगर यह पहचान असाधारण रूप से प्राप्त हो तो निश्चित रूप से वह भी चमत्कार होगा और अगर वह असाधारण कार्य ईश्वर के कामों में गिना जाए और पैगम्बरी की सत्यता का प्रमाण भी हो तो मोजिज़े की एक क़िस्म समझा जाएगा जैसा कि लोगों के खाने पीने के बारे में हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम का ज्ञान , उन के चमत्कारों में से है।[1] किंतु मोजिज़े की यही एक क़िस्म नहीं है ।अन्ततः यह प्रश्न रह जाता है कि कारक व परिणाम के सिद्धान्त की दृष्टि से मोजिज़े और अन्य असाधारण कामों में क्या अन्तर है?

2. दूसरी शंका यह है कि ईश्वर की परंपरा रही है कि हर प्रक्रिया के लिए एक विशेष कारक हो और कुरआन मजीद की आयतों और ईश्वरीय परंपराओं के अनुसार उस में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।[2] इस आधार पर असाधारण काम एक प्रकार से ईश्वरीय परंपरा में बदलाव है जिसे कुरआन की आयतें नकारती हैं ।

---

[1] सूरए आले इमरान आयत 49 ।

[2] सूरए इसरा – आयत 77 । सूरए अहज़ाब – आयत 62 । सूरए फातिर आयत – 43 ।और सूरए फत्ह आयत 23 ।

यह शंका , पहले वाली शंका की भॉति है अंतर केवल यह है कि वहॉ केवल बौद्धिक तर्क पेश किया गया था और यहॉ कुरआन की आयत का हवाला दिया गया है । इस शंका का उत्तर है : प्रक्रियाओं के कारकों व कारणों को ईश्वर की अपरिवर्तनीय परंपराओं में गिनना , ऐसी बात है कि जिस का कोई प्रमाण नहीं है और इस का उदाहरण यह है कि जैसे कोई दावा करे कि अग्नि में ही उष्मा का होना , ईश्वर की न बदलने वाली परंपराओं में से है ! इस प्रकार के दावों के जवाब में यह कहा जा सकता है कि विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाओं के लिए कई प्रकार के कारकों का होना , तथा कारकों का एक दूसरे का स्थान लेना तथा साधारण कारक के स्थान पर असाधारण कारक का होना एक ऐसी वास्तविकता है जो सदैव ही मौजूद रही है इसी लिए इस प्रक्रिया को ईश्वर की परंपरा कहना चाहिए ।[1] और कारकों के साधारण कारकों तक ही सीमिति रहने को ईश्वर की परंपरा में परिवर्तन समझना चाहिए जिसे कुरआने मजीद में नकारा गया है।

प्रत्येक दशा में , ईश्वरीय परंपराओं में परिवर्तन को नकारने वाली आयतों का यह अर्थ निकालना कि साधारण कारकों का कोई अन्य कारक स्थान नहीं ले सकता बिना प्रमाण की बात है । बल्कि ऐसी बहुत सी दूसरी आयतें हैं जो इस प्रकार के अर्थ के गलत होने को सिद्ध करती हैं । इस प्रकार इस आयत की सही व्याख्या को, कुरआन की व्याख्या की किताबों में खोजना चाहिए किंतु यहॉ पर हम संक्षेप में उस का वर्णन करते हुए यही कहेंगे कि इस प्रकार की आयतें कारक के निश्चित परिणाम को अनिश्चित बनाने की प्रक्रिया को नकारती हैं न कि कारकों में विविधता अथवा साधारण कारक के स्थान पर असाधारण कारक के प्रभावी होने को । बल्कि शायद यह

---

[1] अर्थात एक साधारण कारक के स्थान पर असाधारण कारक का आना जैसे आग लगने के लिए आग की उपस्थिति आवश्यक है किंतु ईश्वर अगर चाहे तो बिना आग के किसी जगह आग लगा दे । वास्तव में ईश्वर क परंपरा यह है ।

भी कहा जा सके कि इन आयतों से जो बात निश्चित रूप से सिद्ध होती है , वह असाधारण कारकों का प्रभाव है।

3. तीसरी शंका यह है कि कुरआन मजीद में आया है कि लोग बार बार पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम से मोजिज़े व चमत्कार दिखाने को कहते थे किंतु पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो व अलैहे व आलेही व सल्लम इस प्रकार की माँगों को प्रायः रद्द कर दिया करते थे [1] तो फिर अगर मोजिज़ा , पैगम्बरी सिद्ध करने का साधन है तो क्यों पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम इस प्रकार की माँग स्वीकार नहीं करते थे?

इस शंका का उत्तर यह है कि इस प्रकार की आयतें , उन माँगों के बारे में हैं जो तीनों मार्गों अर्थात पैगम्बर के सही होने के चिन्ह , पूर्व पैगम्बर की भविष्य वाणी और मोजिज़े के बाद केवल हठधर्मी व शत्रुता तथा अन्य उद्देश्यों के लिए की जाती थीं और वास्तविकता को जानने की कोई भावना नहीं होती थी ।

अधिक स्पष्ट शब्दों में कहें कि मोजिज़े का उद्देश्य , कि जो इस संसार पर व्याप्त व्यवस्था से अपवाद होता है और कभी लोगों की माँग के बाद [2] और कभी बिना किसी माँग के [3] दिखाया जाता था , ईश्वरीय दूत को पहचनवाने और लोगों के सामने तर्क लाने के लिए था न कि पैगम्बरों के संदेश और ज़बरदस्ती उन का अनुसरण स्वीकार करवाने के लिए और न ही लोगों के मनोरंजन और विश्व की व्यवस्था में गड़बड़ी के लिए । इसी लिए मोजिज़ा दिखाने की हर माँग को स्वीकार करना उचित नहीं था बल्कि कुछ माँगों को स्वीकार करना तो उद्देश्य की पूर्ति के मार्ग में बाधा भी बन सकता

---

[1] सूरए अनआम – आयत 37 व 109। सूरए यूनुस – आयत 20, सूरए रअद – आयत 7 , सूरए अंबिया – आयत 5 ।

[2] जैसा कि हज़रत सालेह से ऊँटनी की माँग की गयी थी ।

[3] जैसा कि हज़रत ईसा ने किया ।

था उदाहरण स्वरूप ऐसे मोजिज़ों की मॉग जिस को पूरा करने के बाद लोगों के सामने पैगम्बरों को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग न बचता क्योंकि इस प्रकार की मॉगों को स्वीकार करके ऐसे चमत्कार दिखाने का अर्थ लोगों को पैगम्बर के अनुसरण पर बाध्य करना और उन की चयन क्षमता को खत्म करना होता या वह मॉगे जो हठधर्मी , शत्रुता तथा वास्तविकता की खोज के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य के अंतर्गत की जाती थीं। क्योंकि एक ओर तो मोजिज़ा दिखाना निरर्थक हो जाता और लोग मनोरंजन के रूप में उसे देखते या फिर अपने व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के लिए पैगम्बरों से निकट होते तथा दूसरी ओर परीक्षा व स्वतंत्र चयन की संभावना भी समाप्त हो जाती और लोगों को ज़बरदस्ती तथा दबाव में आकर पैगम्बरों का अनुसरण स्वीकार करना पड़ता। जैसा कि पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने बहुत से मोजिज़े दिखाए हैं जिन में बहुत से इतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध भी हो चुके हैं। इन में मुख्य रूप से पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम का सदैव रहने वाला मोजिज़ा , क़ुरआन मजीद है जिस पर चर्चा होगी ।

4. चौथी शकां यह है कि मोजिज़ा ईश्वर की विशेष अनुमति पर निर्भर है इस लिए वह ईश्वर और मोजिज़ा दिखाने वाले के मध्य एक विशेष प्रकार के सबंध का सूचक हो सकता है क्योंकि ईश्वर ने उसे विशेष अनुमति दी है बल्कि दूसरे शब्दों में :अपने काम को उस के हाथों और उस के इरादे की सहायता से करता है । किंतु इस प्रकार के संबधं का बौद्धिक रूप से यह अर्थ निकालना अनिवार्य नहीं है कि मोजिज़ा दिखाने वाले और ईश्वर के मध्य इस विशेष संबधं के अतिरिक्त , उस के संदेशों को लेने और उस का दूत होने जैसे संबधं भी हैं । तो इस प्रकार से मोजिज़े को पैगम्बरी के दावे की सत्यता की बौद्धिक दलील व प्रमाण नहीं माना जा सकता बल्कि इसे एक प्रकार से अनुमान व संतोषजनक प्रमाण ही कहा जा सकता है।

इस का उत्तर यह है कि असाधारण कार्य – चाहे वह ईश्वरीय असाधारण कार्य ही क्यों न हो – स्वयतः ईश्वरीय संदेश प्राप्त करने से संबंधित नहीं है इस आधार पर पैगम्बरों के अलावा ईश्वर के अन्य विशेष दासों के मोजिज़ों को उन की पैगम्बरी का प्रमाण नहीं समझा जाता किंतु हमारी बात उन लोगों के बारे में है जिन्हों ने पैगम्बर होने का दावा किया है और अपने इस दावे के प्रमाण के रूप में मोजिज़े का प्रदर्शन किया है । अगर यह समझा जाए कि उन में से किसी ने पैगम्बर होने का झूठा दावा किया हो अर्थात लोक परलोक खराब करने वाला सब से बुरा पाप किया हो [1] तो फिर किसी भी प्रकार से ईश्वर से इस प्रकार के विशेष संबधं की योग्यता नहीं रखता और ईश्वर किसी भी स्थिति में ऐसे व्यक्ति को मोजिज़ा दिखाने की शक्ति प्रदान नहीं कर सकता क्योंकि इस प्रकार से वह अन्य लोगों को पथभ्रष्ट करने में अधिक सक्षम हो जाएगा। [2]

निष्कर्ष यह निकला कि बुद्धि स्पष्ट रूप से यह समझ सकती है कि जो इस बात की क्षमता व योग्यता रखता होगा कि ईश्वर से विशेष प्रकार के संबधं रख सके और उस से मोजिज़े की शक्ति प्राप्त कर सके तो वह ईश्वर की अवज्ञा और लोगों को पथभ्रष्ट भी नहीं कर सकता।

---

[1] सूरए अनआम, आयत 21, 93, 144, आराफ – 37, यूनुस – 17, हूद 18, कहफ 15, अनकबूत 68 शूरा 24 ।

[2] सूरए हाक़्क़ह आयात 44 – 46

## प्रश्न

1. कारक सिद्धान्त का मुख्य आशय क्या है , और उस के लिए क्या आवश्यक है ?

2. क्यों कारक के सिद्धान्त को स्वीकार करने और मोजिज़े को स्वीकार करने में विरोधाभास नहीं है।

3. किस प्रकार से मोजिज़े की व्याख्या अन्जान कारकों की पहचान के रूप में करना सही नहीं है ?

4. क्या मोजिज़े को स्वीकार करना ईश्वर की परंपराओं के अपरिवर्तनीय होने के विपरीत है ? क्यों ?

5. क्या पैगम्बर स्वंय ही मोजिज़ा दिखाते थे या लोगों की मॉग पर यह काम करते थे ?

6. पैगम्बर मोजिज़े की हर मॉग को स्वीकार क्यों नही करते थे ।

7. इस बात को स्पष्ट करें कि मोजिज़ा केवल सन्तोष व अनुमान पर आधारित एक प्रमाण नहीं है बल्कि पैग़म्बरी के दावे की सत्यता का एक बौद्धिक प्रमाण है ।

उन्तीसवाँ पाठ

# पैग़म्बरों के गुण

- पैग़म्बरों की बहुतायत
- पैग़म्बरों की संख्या
- नबी और रसूल
- अतिविशिष्ट पैग़म्बर
- कुछ बातें

## पैगम्बरों बहुतायत

अब तक पैगम्बरों और उन के दायित्वों के बारे में तीन मूल विषयों पर चर्चा हो चुकी है और हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मनुष्य में लोक व परलोक के कल्याण को निश्चित करने के लिए आवश्यक ज्ञान के अभाव के कारण ईश्वर ने यह आवश्यक समझा कि कुछ महान लोगों को अपने दूत के रूप में इस धरती पर भेजे और उन्हें आवश्यक जानकारियाँ दे ताकि पैग़म्बर ईश्वरीय जानकारियाँ और ज्ञान उस के सही रूप में मनुष्य तक पहुँचाएं और दूसरी ओर इन ईश्वरीय पैग़म्बरों का परिचय मनुष्यों से कुछ इस प्रकार कराए कि उन के लिए कोई बहाना न रह जाए और इस का सर्वश्रेष्ठ मार्ग मोजिज़ा है ।

हम ने इस विषयों को बौद्धिक तर्कों से प्रमाणित किया किंतु पेश किए गये तर्क पैगम्बरों की बहुतायत अथवा ईश्वरीय ग्रंथों के एक से अधिक होने को प्रमाणित नहीं करते और अगर मानव जीवन कुछ इस प्रकार से होता कि एक ही पैगम्बर पूरे विश्व के समस्त लोगों की आवश्यकताओं को पूरा कर सकता और वह भी इस प्रकार से कि पूरे इतिहास में हर व्यक्ति और हर जाति उस पैग़म्बर के संदेशों की सहायता से अपने कर्तव्यों को पहचान लेती तो पेश किए गये तर्कों के आधार पर यह कोई अनहोनी न होती ।

किंतु हम यह जानते हैं कि प्रथम यह कि पैगम्बरों सहित हर मनुष्य की आयु सीमित होती है और सृष्टि की रचना की विशेषताओं के अंतर्गत यह

सही नहीं होता कि एक ही पैगम्बर आंरभ से लेकर अंत तक जीवत रहता और स्वंय ही सारे मनुष्यों का मार्गदर्शन करता ।

दूसरी बात यह कि विभिन्न युगों और परिस्थितियों में मानव जीवन समान नहीं होता और यह विविधता विशेष कर सामाजिक संबधों में धीरे धीरे आने वाली जटिलता, समाजिक नियमों व मान्यताओं को संख्या व शैली की दृष्टि से प्रभावित कर सकती है और किसी काल विशेष में विशेष प्रकार के नियमों की आवश्यकता पड़ सकती है और अगर यह नियम किसी ऐसे पैगम्बर द्वारा पेश किए गये हों जो हज़ारों वर्ष पूर्व धरती पर भेजा गया हो तो यह काम निरर्थक होता क्योंकि इस दशा में उन नियमों व शिक्षाओं का पालन और हर युग की विशेष परिस्थितियों से उन का समन्वय अत्याधिक कठिन काम होता ।

तीसरी बात यह कि अतीत में पैगम्बरों के संदेशों के प्रसार व प्रचार की सुविधा इस प्रकार नहीं थी कि एक पैग़म्बर समस्त विश्व वासियों तक अपनी बात व ईश्वरीय संदेश को पहुँचा सकता ।

चौथी बात यह कि हर पैगम्बर की शिक्षाओं में उन्हीं लोगों के मध्य कि जिन के बीच पैगम्बर को भेजा गया होता समय बीतने के साथ फेर बदल कर दिया जाता और बहुत से लोग अपने विशेष हितों के लिए पैगम्बरों की शिक्षाओं की ग़लत व्याख्या कर देते और कुछ ही दिनों बाद उस पैगम्बर द्वारा लाया हुआ ईश्वरीय धर्म अंधविश्वासों और धारणाओं पर आधारित एक मत बन जाता जैसा कि हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम द्वारा लाया हुआ एकेश्वरीय धर्म कुछ ही दिनों बाद तीन ईश्वर को मानने वाला धर्म बन गया।

इन बातों के दृष्टिगत , पैगम्बरों की अधिक संख्या और कुछ विशेष और समाजिक शिक्षाओं के नियमों में बदलाव का कारण स्पष्ट हो जाता है। [1]हालॉकि सारे ईश्वरीय धर्म मूल विश्वासों , नैतिक शिष्टाचारों और

---

[1] सूरए माएदा – आयत 48, सूरए हज – आयत 67 ।

व्यक्तिगत व सामाजिक शिक्षाओं की दृष्टि से समान थे।[1] उदाहरण स्वरूप नमाज़ सभी ईश्वरीय धर्मों में मौजूद थी भले ही उसे पढ़ने की शैली भिन्न रही हो या फिर ज़कात[2] व दान दक्षिणा सभी ईश्वरीय धर्मों में रही है भले ही उन की मात्रा व शैली में अतंर रहा हो।

प्रत्येक दशा में सभी ईश्वरीय दूतों पर विश्वास और उन की पैगम्बरी को स्वीकार करने की दृष्टि से उन में हर प्रकार के अतंर को नकारना हर एक के लिए अनिवार्य है[3] और किसी भी एक पैगम्बर को झुठलाने का अर्थ सभी पैगम्बरों को झुठलाना तथा किसी भी एक ईश्वरीय आदेश को अस्वीकार करने का अर्थ सभी ईश्वरीय आदेशों को अस्वीकार करना है।[4] यद्यपि हर जाति के लिए अनुकरणीय धर्म वही होता है जो उस के काल के पैगम्बर ने उसे बताया हो ।

यहॉ पर एक और बात जिस की ओर हम संकेत करना चाहेगें यह है कि मनुष्य की बुद्धि इन वर्णित तथ्यों के आधार पर ईश्वरीय दूतों व ईश्वरीय ग्रंथों की विविधता और ईश्वरीय धर्मों में अतंर का कारणों को समझ सकती है किंतु पैगम्बरों और ईश्वरीय किताबों की बहुतायत के लिए कोई निश्चित नियम नहीं प्राप्त हो सकता अर्थात यह नहीं हो सकता कि मनुष्य किसी ऐसे नियम को प्राप्त करने में सफल हो जाएगा जिस के अंतर्गत वह यह समझ सके कि किस युग में और किस स्थान पर कोई अन्य ईश्वरीय दूत भेजा जाना चाहिए या नये धर्म भेजा जाना चाहिए। बल्कि केवल यही समझा जा सकता है कि जब भी मानव समाज की परिस्थितियॉ ऐसी हों कि ईश्वरीय दूत का संदेश समस्त विश्व वासियों तक पहुँच जाए और उस के संदेश

---

[1] सूरए बक़रह – आयत 131 – 137 , 285 , आले इमरान – 19 , 20

[2] ज़कात अर्थात अपने धन व कुछ अनाजों और पशुओं में से एक विशेष भाग निर्धनों और आवश्यकता रखने वालों को विशेष नियमों के साथ देना ।

[3] सरूए शूरा – आयत 13 , निसाअ – आयत 136 , 152 , आलेइमरान – 84 – 85 ।

[4] सूरए निसाअ आयत 150 , बक़रह – आयत 85 ।

आगामी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रहें और नये धर्म व शिक्षाओं में परिवर्तन का कारण बनने वाले सामाजिक परिवर्तन भी हों तो किसी अन्य ईश्वरीय दूत को भेजने की आवश्यकता नहीं होती है।

## पैग़म्बरों की संख्या

जैसा कि बताया गया हमारी बुद्धि के पास ईश्वरीय किताबों और दूतों की संख्या निर्धारित करने का कोई साधन नहीं है बल्कि इस प्रकार के तथ्यों को सिद्ध करना कथनों और इतिहास में वर्णित घटनाओं के आधार पर ही संभव है । कुरआने मजीद में भी हालाँकि इस बात पर बल दिया गया है कि ईश्वर ने हर जाति व समुदाय के लिए कोई पैग़म्बर भेजा है।[1] किंतु कितनी जातियों और कितने पैगम्बरों को भेजा है इस बात का निर्धारण नहीं किया गया है। केवल बीस से कुछ अधिक पैगम्बरों के नामों का कुरआन मजीद में उल्लेख है यद्यपि कुछ अन्य ईश्वरीय दूतों का भी बिना नाम के उल्लेख किया गया है ।[2] किंतु इतिहासिक किताबों में इमामों के कथनों का उल्लेख किया गया है कि कुल ईश्वरीय दूतों की संख्या एक लाख चौबीस हज़ार थी । ईश्वरीय दूतों का कम हज़रत आदम अलैहिस्सलाम से आंरभ हुआ और हज़रत मोहम्मद पुत्र अब्दुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम पर समाप्त हुआ ।

ईश्वरीय दूतों को ष्नबीष् अर्थात खबर देने वाला के अलावा भी कई नामों से बुलाया जाता है जैसे ष्नज़ीर ष्अर्थात ष्डराने वालाष्, ष्बशीरष् अर्थात ष्शुभसूचनाष् देने वाला तथा इसी प्रकार ईश्वर के ष्सुकर्मी दासष् और ष्ईश्वर को समर्पितष् जैसी उपाधियों से भी उन्हें याद किया जाता है । कुछ ईश्वरीय

---

[1] सूरए फातिर, आयत 24, सूरए नेहल आयत 36।

[2] सूरए बक़रह – आयत 246 व 256 ।

दूत रिसालत की पदवी रखते थे और उन्हें ष्रसूलष् कहा जाता है और कुछ इतिहासिक कथनों के अनुसार रसूलों की संख्या तीन सौ तेरह रही है।[1]

इसी लिए यहॉ पर हम ष्नबी ष्और रसूल के मध्य अतंर पर चर्चा करेगें ।

## नबी और रसूल

रसूल का अर्थ संदेश लाने वाला और नबी का अर्थ अगर यह शब्द नबा से हो तो इस का अर्थ ष्महत्वपूर्ण संदेश वाला और अगर नुबू से हो तो उच्च स्थान वाला व्यक्ति होता है।

कुछ लोगों का यह विचार है कि नबी का अर्थ रसूल से अधिक व्यापक होता है इस प्रकार से कि नबी उसे कहते हैं जिस पर ईश्वर की ओर संदेश से आता हो चाहे दूसरों तक पहुॅचाना उस की ज़िम्मेदारी हो या न हो किंतु रसूल का अर्थ होता है वह जिस का कर्तव्य संदेश को पहुॅचाना हो ।

किंतु यह दावा , सही नहीं है क्योंकि कुरआन की कुछ आयतों में ष्नबीष् को रसूल के शब्द के बाद प्रयोग किया गया है।[2] किंतु इस दावे के अनुसार अधिक व्यापक अर्थ वाले शब्द अर्थात नबी को रसूल के शब्द से पहले आना चाहिए । इस के अलावा भी कोई ऐसा प्रमाण भी मौजूद नहीं है जिस से यह सिद्ध होता हो कि संदेश पहुॅचाने की जिम्मेदारी केवल रसूलों पर ही होती है।

कुछ कथनों में आया है कि नबी के लिए यह आवश्यक है कि वह ईश्वरीय संदेश लाने वाले फ़रिश्ते को नींद की अवस्था में देखे और जागते समय केवल उस की आवाज़ सुने जब कि जो रसूल होता है वह सोते जागते दोनों अवस्था में ईश्वरीय संदेश को लाने वाले फरिश्ते को देखता है। प्रत्येक दशा में जो बात स्वीकार की जा सकती है वह यह है कि नबी जिन लोगों पर

---

[2] सूरए मरमय – आयत 51 व 54

यथार्थ होता है उन को अगर दृष्टिगत रखा जाए तो स्पष्ट होता है कि नबी का अर्थ रसूल से अधिक व्यापक होता है अर्थात सारे ईश्वरीय दूत नबी थे किंतु कुछ लोग रसूल भी थे और इतिहासिक कथनों से अनुसार उन की संख्या तीन सौ तेरह थी और निश्चित रूप से उन का स्थान अन्य ईश्वरीय दूतों से उच्च था जैसा कि स्वंय रसूलों के मध्य भी स्थान व पदवी में अतंर था। [1] और उन में से कुछ लोग इमाम भी थे। [2]

## अतिविशिष्ट पैगम्बर

कुरआन मजीद में कुछ पैगम्बरों को उलुल अज़्म के नाम के याद किया गया[3] है किंतु उन की विशेषताओं के बारे में कुछ नहीं कहा गया है यद्यपि इतिहासिक पुस्तकों में इमामों के कथनों से जो बात पता लगती है वह यह है कि उन की संख्या पॉच थी। जो इस प्रकार है : हज़रत नूह , हज़रत इब्राहीम , हज़रत मूसा , हज़रत ईसा और हज़रत मोहम्मद अलैहिमुस्सलाम।इन लोगों की विशेषता , सयंम व संघर्ष के अलावा , कि जिस पर कुरआन मजीद में भी बल दिया गया है , यह थी कि इन लोगों में प्रत्येक पैगम्बर किताब और विशेष धर्म रखता था और उन के समकालीन व उन के बाद आने वाले पैगम्बर उन्हीं के धर्म का प्रचार करते थे यहॉ तक कि कोई अन्य अतिविशिष्ट पैगम्बर ईश्वर की ओर से भेजा जाता ।

इस के साथ ही यह भी स्पष्ट हुआ कि एक ही काल में दो पैगम्बरों की उपस्थिति संभव है जैसा कि हज़रत लूत , हज़रत इब्राहीम अलैहिमुस्सलाम के काल में मौजूद थे और इसी प्रकार हज़रत हारून , हज़रत मूसा

---

[1] सूरए बक़रह – आयत 253 ,सूरए इसरा – आयत 55 ।

[2] सूरए बक़रह – आयत 124 , सूरए अंबिया – आयत 73 , सूरए सजदह आयत 24 ।

[3] सूरए अहक़ाफ़– आयत 35

अलैहिस्सलाम के काल में मौजूद थे तथा हज़रत यहया , हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के काल में थे ।

## कुछ बातें

इस पाठ के अंत में पैगम्बरी के बारे में कुछ बातों की ओर संक्षिप्त रूप से संकेत कर रहे हैं :

1. ईश्वरीय पैगम्बरों ने एक दूसरे की पुष्टि की है तथा अपने बाद आने वाले पैगम्बर की सूचना दी है।[1] इस आधार पर अगर कोई पैगम्बर होने का दावा करे किंतु अपने से पहले वाले पैगम्बरों को झुठलाए तो वह स्वयं झूठा होगा ।

2. पैगम्बर और ईश्वरीय दूत अपने कर्तव्यों के पालन और लोगों तक ईश्वरीय संदेश पहुँचाने के बदले उन से कुछ नहीं लेते थे।[2] केवल पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने लोगों से इस के बदले अपने अनुसरण की मॉग की थी जो वास्वत में लोगों के ही हित में था ।[3]

3. कुछ ईश्वरीय दूतों के पास लोगों के मध्य फैसला करने और उन पर शासन करने जैसे अधिकार भी थे उदाहरण स्वरूप हज़रत दाउद और हज़रत सुलैमान अलैहिमुस्सलाम को पेश किया जा सकता है और सूरए निसाअ की आयत 64 में समस्त पैग़म्बरों के पूर्ण रूप से अनुसरण व आज्ञापालन पर जो बल दिया गया है उस से यह समझा जा सकता है कि यह अधिकार समस्त ईश्वरीय दूतों को प्राप्त था ।

4. जिन्नों मे से, जो इच्छा व चयन शक्ति रखने वाली ईश्वरीय रचना हैं और सामान्य परिस्थिति में मनुष्य उन्हें देख नहीं सकता , कुछ जिन्न

---

[1] सूरए आले इमरान – आयत 81

[2] सूरए अनआम – आयत 90, यासीन – 21 , तूर – 40 , क़लम – 46 , यूनुस 72 , हूद 29–51 फुरक़ान 57 , शोअरा – 109,127,145,164,180,यूसुफ –104, सॉद – 86 ।

[3] सूराए शूरा आयत – 23 , सबा – 47 ।

पैगम्बरों के संदेशों का ज्ञान रखते थे और उन में से अच्छे लोग पैगम्बरों का अनुसरण भी करते थे तथा उन लोगों में हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम और हज़रत मोहम्मद सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के अनुयाई मौजूद हैं इसी प्रकार बहुत से जिन्न शैतान के अनुयाई हैं और उन्हों ने पैगम्बरों की पैगम्बरी का इन्कार किया है।[1]

## प्रश्न

1. कई पैगम्बर होने का कारण बताएं ।

2. सभी पैगम्बरों के संदेशों के प्रति लोगों का क्या कर्तव्य है ?

3. किस स्थिति में नये दूत को भेजने की आवश्यकता नहीं रह जाती ?

4. नबियों और रसूलों की संख्या बताएं ?

5. नबी और रसूल के मध्य अंतर क्या है ? और उन की एक दूसरे से किस प्रकार से तुलना की जा सकती है ?

6. पैगम्बरों को ईश्वर द्वारा सौंपे गये कर्तव्यों की दृष्टि से किस प्रकार एक दूसरे पर वरीयता प्राप्त थी ?

7. अतिविशिष्ट पैगम्बर कौन लोग होते हैं और उन की विशेषताएं क्या होती हैं ?

8. क्या एक ही समय में कई ईश्वरीय दूत हो सकते हैं ? अगर ऐसा है तो फिर उस का उदाहरण दें ।

9. ईश्वरीय दूतों की अन्य विशेषताओं का वर्णन करें ?

10. ईश्वरीय दूतों की पुष्टि अथवा उन के इन्कार के प्रति जिन्नों का व्यवहार कैसा रहा है ?

---

[1] सूरए अहक़ाफ – 29 – 32 सूरए जिन्न 1 – 14 ।

तीसवाँ पाठ

# लोग और ईश्वरीय दूत

- भूमिका
- पैगम्बरों के प्रति लोगों की प्रतिकिया
- पैगम्बरों के विरोध का कारण
- पैगम्बरों के प्रति व्यवहार
- समाज संचालन के बारे में कुछ ईश्वरीय परंपराएं

## भूमिका

कुरआन मजीद  जब भी पिछले पैगम्बरों के बारे में कुछ कहता है या उन के पवित्र जीवन के किसी काल पर प्रकाश डालता है तो पैगम्बरों के संदेशों पर लोगों की प्रतिक्रिया को बहुत महत्व के साथ बताता है । एक ओर पैगम्बरों के प्रति लोगों के व्यवहार व प्रतिक्रियाओं और विरोधों का वर्णन करता है  तो दूसरी ओर पैगम्बरों द्वारा मार्गदर्शन की शैलियों तथा पथभ्रष्टता के विरूद्ध उन के संघर्ष की शैली की ओर संकेत करता है तथा इसी प्रकार समाजों के संचालन में ईश्वरीय पंरपराओं तथा लोगों और पैगम्बरों के मध्य संबधं की दृष्टि से , बहुत सी बातों का वर्णन करता है जो अत्यन्त शिक्षाप्रद विषयों को अपने भीतर समेटे हुए हैं।

हालॅाकि इन विषयों का धर्म पर विश्वास के मूल सिद्धान्तों से कोई विशेष संबधं नहीं है किंतु पैगम्बरों के बारे में अपनी बात को अधिक स्पष्ट रूप से पेश करने के लिए तथा इस संदर्भ में संभावित रूप से सामने आने वाली शंकाओं के निवारण के लिए तथा मनुष्य की नैतिक रचना और उस के आचरण में इन बातों के महत्व के दृष्टिगत हम इस पाठ में कुछ महत्वपूर्ण विषयों की ओर संकेत करेगें ।

## पैग़म्बरों के बारे में लोगों की प्रतिकिया

जब पैगम्बर अपना आंदोलन आंरभ करते थे और लोगों को एक ईश्वर की उपासना की ओर बुलाते थे[1] और शैतानों और दुष्ट लोगों तथा मनुष्य द्वारा बनाए गये देवताओं को छोड़ने और अत्याचार व भ्रष्टाचार व पापों तथा बुरे कामों से दूर रहने का आह्वान करते थे तो प्रायः उन्हें आम लोगों के विरोध का सामना करना पड़ता था।[2] विशेषकर शासकों और समाज के प्रभावी लोगों की ओर से जो सांसारिक सुखभोग में लिप्त होते और अपने ज्ञान व धन के अहं में डूबे रहते थे। यह लोग पूरी शक्ति के साथ पैगम्बरों का विरोध करते और आम लोगों को उन के विरूद्ध भड़काते थे तथा सही मार्ग अपनाने से उन्हें रोकते थे।[3] किंतु धीरे धीरे समाज का एक वर्ग जो प्रायः शोषित होता था पैगम्बरों की पुष्टि करता था और उन के मार्ग को अपना लेता था और ऐसा बहुत कम ही होता था कि किसी समाज का गठन ,न्याय व समानता तथा ईश्वर पर आस्था व धर्म की प्रतिबद्धता के आधारों पर हो जैसा कि हज़रत सुलैमान के काल में हुआ था। हॉलाकि पैगम्बरों की शिक्षाओं के कुछ भाग धीरे धीरे समाज का भाग बन जाते थे तथा एक समाज से दूसरे समाज तक पहुँचते थे किंतु कभी कभी पैगम्बरों की शिक्षाओं से भ्रष्ट शासक भी लाभ उठाते और उसे अपने हित में और अपनी ओर से प्रस्तुत विषय के रूप में समाज में पेश करते थे और ऐसा आज भी होता है।

---

[1] सूरए नेह्ल आयत 36 , अंबिया आयत 25 ...

[2] सूरए इब्राहीम आयत 9 , मोमेनून आयत 44

[3] कुरआन में यह सब कुछ बताया गया है।

## पैगम्बरों के विरोध का कारण

पैगम्बरों का विरोध, प्रतिबंधों में अरूचि तथा अश्लीलता में रूचि जैसे आम कारकों के अलावा भी कई अन्य कारणों के अंतर्गत किया जाता था ।[1] उदाहरण स्वरूप आत्ममुग्धता, घमंड आदि जैसे कारकों को समाज के प्रतिष्ठत व प्रभावी समझे जाने वाले लोगों द्वारा ईश्वरीय दूतों के विरोध के मुख्य कारणों में समझा जा सकता है ।

इस के अलावा पैगम्बरों के विरोध के कारणों में लोगों में प्रचलित परम्पराएं और अंध विश्वास व धारणाएं तथा अपने पूर्वजों के अनुसरण की भावनाएं भी सम्मिलित थीं ।[2]

इसी प्रकार आर्थिक स्रोतों व समाजिक प्रतिष्ठा व स्थान की सुरक्षा भी पुंजीपतियों व शासकों तथा समाज के जानकार लोगों द्वारा पैगम्बरों के विरोध का कारण बनती थी ।[3] दूसरी ओर, लोगों में अज्ञानता आदि भी इस बात का कारण बनती कि आम लोग समाज के प्रभावी व भ्रष्ट लोगों के बहकाने में आ जाएं । प्रभावी लोगों की बातों से आम लोग धोखा खा जाते थे और अंध विश्वासों तथा गलत रीति – रिवाजों के अनुसरण में प्रसन्न रहते और उस पर कार्यबद्धता को अपने कल्याण का साधन मानते थे । इसी लिए सदैव ही समाज के बहुत कम लोगों को पैगम्बरों पर आस्था रही और वह कम लोग भी प्रायः समाज में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखते थे और पैगम्बरों पर विश्वास और उन की पुष्टि के बाद उन्हें समाज के प्रभावी लोगों द्वारा समाजिक बहिष्कार का भी सामना करना पड़ता था। जिस के बाद उन पर विभिन्न प्रकार के दबाव डाले जाते ।[4]

---

[1] सूरए माएदा आयत 70

[2] सूरए बक़रह आयत 170, माएदा 104 आदि

[3] सूरए हूद आयत 84 – 86 तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

[4] सूरए इब्राहीम आयत 21 तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

## पैगम्बरों के प्रति व्यवहार

पैगम्बरों के विरोधी उन के अभियान के मार्ग में बाधा उत्पन्न करने के लिए विभिन्न प्रकार के हथकंडों का प्रयोग करते थे जिन में से कुछ इस प्रकार हैं :

1. **अपमान व उपहास** कुछ लोग ईश्वरीय दूतों के महत्व व उन के समाजिक स्थान को अपमान व उपहास द्वारा कम करने का प्रयास करते थे ताकि लोगों के ह्रदय से उन का सम्मान समाप्त हो जाए [1]

2. **आरोप और निराधार बातें** उस के बाद यह लोग आरोप का सहारा लेते और बहुत सी गलत बातें पैगम्बरों से संबंधित बताते उदाहरण स्वरूप वे पैगम्बरों को मूर्ख व पागल कहते ।[2] किंतु जब पैगम्बर अपनी सत्यता को सिद्ध करने के लिए कोई मोजिज़ा दिखाते तो उन्हें जादूगर कहते । जैसा कि वह लोग पैगम्बरों के संदेशों को काल्पनिक कहानियाँ बताते।[3]

3. **वाद – विवाद तथा भ्रम** और जब ईश्वरीय दूत ज्ञान पूर्ण व तार्किक बातों से लोगों को अपनी ओर बुलाते या लोगों को उपदेश देते तथा गलत व निराधार बातों व अंधविश्वास की ओर से सचेत करते तथा ईश्वर की उपासना के अच्छे परिणामों और फलों से लोगों को अवगत कराते तो भ्रष्ट लोग और समाज के प्रभावी नेता लोगों को उन की बातें सुनने से मना करते फिर अतार्किक बातों द्वारा तथा बिना कोई प्रमाण पेश किए विभिन्न प्रकार की निराधार बातों द्वारा लोगों को धोखा देने का प्रयास करते ताकि इस प्रकार से लोगों को पैगम्बरों के अनुसरण से रोका जाए । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे अपनी धन व सपंति का प्रदर्शन करते तथा पैगम्बरों के मानने वालों की

---

[1] सूरए हिज्र आयत 11 तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

[2] सरूए आराफ आयत 66 तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

[3] सूरए अनआम आयत 25 तथा कुरआन की अन्य बहुत सी आयतें ।

संसारिक दुर्दशा को उन के विचारों के गलत होने के प्रमाण के रूप में पेश करते ।[1] इस के साथ ही वे लोगों से कहते कि ईश्वर ने अपने दूतों को फरिश्तों में से क्यों नहीं चुना ? क्यों उस ने अपने दूतों को सासांरिक धन व सपंति नहीं प्रदान की और कभी कभी तो उन की हठधर्मी इतनी बढ़ जाती थी कि वे कहते थे कि हम केवल उसी स्थिति में ईश्वर पर विश्वास करेगें जब स्वंय हमारे पास उस का संदेश आए या ईश्वर को देख लें और उस की बातें सीधे रूप से सुन लें ।[2]

**4. धमकी व प्रलोभन** कुरआन मजीद में पैगम्बरों के विरोधियों की एक अन्य शैली अर्थात धमकी व प्रलोभन की ओर भी संकेत किया गया है । कुरआन मजीद के अनुसार बहुत से पैगम्बरों और उन के अनुयाईयों को विभिन्न प्रकार के लोभ दिए जाते तथा यातना व देश निकाले और हत्या की धमकियाँ भी दी जातीं ।

**5. हिंसा व हत्या** और अन्ततः जब पैगम्बरों के विरोधी पैगम्बर और उन के अनुयाईयों के धैर्य व सयंम व दृढ़ संकल्प को देखते और उन के मार्ग में पैदा की जाने वाली बाधाओं की ओर से निराश हो जाते तो फिर अपनी धमकियों को व्यवहारिक बनाते और हिंसा का मार्ग अपनाते इसी लिए कई पैग़म्बरों की हत्याएं भी की गयीं। इस प्रकार से वे मानव समाज को ईश्वर की सर्वोत्तम कृपा और इन महान मार्गदर्शकों से वंचित कर देते थे ।

## समाज संचालन के संदर्भ में कुछ ईश्वरीय पंरपराएं

हॉलाकि ईश्वरीय दूतों के आने का मुख्य उद्देश्य यह था कि वह लोक – परलोक में कल्याण के लिए मनुष्य का मार्गदर्शन करें तथा मानव ज्ञान व बुद्धि में मौजूद कुछ कमियों को ईश्वरीय संदेशों द्वारा दूर करें । दूसरे शब्दों

---

[1] सूरए युनुस आयत 88 तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

[2] सूरए बक़रह – आयत 118 , अनमाम आयत 7– 9 आदि ,

में उन के आने का उद्देश्य था कि मनुष्य के पास ईश्वर को न पहचानने का कोई बहाना न रहे । किंतु ईश्वर ने अपनी विशेष कृपा के अंतर्गत ऐसे विशेष उपाय भी किए जिस की सहायता से पैगम्बरों के संदेशों को स्वीकार करने के लिए आवश्यक भूमिका भी तैयार हुई ताकि इस प्रकार से मनुष्य को परिपूर्णता तक पहुँचने में सहायता प्रदान की जा सके और चूँकि ईश्वर के इन्कार और धर्म से विमुखता का सब से बड़ा कारण, मनुष्य की इस बात से अनभिज्ञता थी कि उसे ईश्वर की हर क्षण आवश्यकता है इस लिए पैगम्बरों ने ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कीं जिस से लोगों को अपने जीवन में ईश्वर और उस की शिक्षओं तथा धर्म की आवश्यकता का आभास हो और अहं व घमंड के अंधेरों से निकल कर प्रकाश में आ जाएं इसी लिए कुछ समस्याएं व कठिनाइयाँ ईश्वर द्वारा उत्पन्न की जाती थीं ताकि मनुष्य को अपनी अक्षमता व शक्ति की सीमा का आभास हो और वह शक्ति व क्षमता के स्रोत अर्थात ईश्वर की ओर आकृष्ट हो।[1]

किंतु इस कारक का प्रभाव व्यापक नहीं था और बहुत से लोग विशेषकर जिन लोगों के पास भौतिक सुख – सुविधा के साधन मौजूद थे और जिन्हों ने वर्षों तक लोगों पर अत्याचार और कमज़ोरों के शोषण द्वारा धन व संपति इकटठा की थी और कुरआन के शब्दों में जिन के दिल पत्थर के हो चुके थे , उन के लिए यह उपाय प्रभावी नहीं होते थे ।[2] और वह लोग यथावत अचेतना की नींद में डूबे रहते और गलत मार्ग पर अग्रसर रहते । इसी लिए उन पर पैगम्बरों के उपदेश भी अपना प्रभाव नहीं छोड़ते थे । और जब ईश्वर उन पर आई आपदाओं को टाल देता और लोगों को पुनः अपनी अनन्त कृपा का पात्र बनाता तो यह लोग कहते कि इस प्रकार की आपदाएं और कठिनाइयाँ व उतार – चढ़ाव जीवन में साधारण सी बात है और ऐसा होता ही रहता है और

---

[1] सूरए अनमाम आयत 42 व सूरए आराफ आयत 94 ।

[2] सूरए अनआम आयत 43 , सूरए मोमेनून आयत 76 ।

ऐसा हमारे पूर्वजों के साथ भी हुआ है । फिर वह पुनः अत्याचारों व शोषण का कम आंरभ कर देते तथा अन्याय के साथ धन व संपति इकटठा करने लगते किंतु उन्हें इस का ज्ञान नहीं होता कि ईश्वर ने उन्हें यह अवसर दिया है ताकि वह अपना परलोक अधिक खराब करें और अपने पापों की गठरी और अधिक भारी करें ।

प्रत्येक दशा में , जब भी संख्या व भौतिक साधन उपलब्ध होते और एक स्वतंत्र समाज की रचना संभव होती और शत्रुओं से युद्ध तथा आत्म रक्षा संभव होती तो उन्हें ईश्वर की ओर से लड़ने का भी आदेश मिलता था।[1] ईश्वर उन के द्वारा भ्रष्ट व पापियों को दंडित करता था और अगर इस प्रकार की स्थिति नहीं होती थी तो ईश्वर और उस के पैगम्बर पर विश्वास रखने वाले लोग , भ्रष्ट लोगों व अधर्मियों से दूर हो जाते फिर उन समाजों पर ईश्वर का प्रकोप आता जिन के सुधरने की समस्त आशाएं समाप्त हो चुकी होती थीं और यह मानव समाज के बारे में ईश्वर की ऐसी परम्परा है जिस में बदलाव नहीं आया ।[2]

## प्रश्न

1. ईश्वरीय दूतों के संदेशों के प्रति लोगों की प्रतिकिग्रा क्या रही ?
2. ईश्वरीय दूतों के विरोध के कारणों का वर्णन कीजिए ।
3. ईश्वरीय दूतों के विरोधियों की क्या शैलियाँ रहीं ?
4. पैगम्बरों को भेजने और लोगों की प्रतिक्रिया के बारे में ईश्वरीय परंपरा क्या रही है ?

---

[1] सूरए आले इमरान – आयत 146

[2] सूरए फ़ातिर – आयत 43 व सूरए ग़ाफिर आयत 85 ।

इक्तीसवाँ पाठ

# पैग़म्बरे इस्लाम

- भूमिका
- पैगम्बरे इस्लाम की पैगम्बरी के प्रमाण

## भूमिका

दसियों हज़ार पैगम्बरों ने विभिन्न कालों में धरती के विभिन्न क्षेत्रों में ईश्वरीय संदेश लोगों तक पहुँचाया तथा लोगों के मार्गदर्शन के अपने अत्याधिक महत्वपूर्ण कर्तव्य का पालन किया तथा मानव समाज की अत्यन्त मूल्यवान सेवा की । सारे पैगम्बरों ने कुछ लोगों को सही सिद्धान्तों व शिक्षाओं तथा उच्च मूल्य व मान्यताओं का पाठ दिया तथा इस के साथ ही उन की इन शिक्षाओं से दूसरे लोग भी परोक्ष रूप से प्रभावित हुए । कुछ पैगम्बर तो एकेश्वरवाद और ईश्वरीय शिक्षाओं के आधार पर समाज की रचना में भी सफल हुए तथा उस समाज का नेतृत्व किया ।

इन लोगों में हज़रत नूह , हज़रत इब्राहीम , हज़रत मूसा और हज़रत ईसा अलैहेमुस्सलाम को ईश्वर ने व्यक्तिगत , समाजिक व कानूनी नियमों पर आधारित पुस्तक भी दी थी जो उन के युगों के लिए उचित थी किंतु यह पुस्तकें समय बीतने के साथ ही पूर्ण रूप से नष्ट हो गयीं या फिर उन में इतनी अधिक फेर – बदल हुई कि उन का मूल रूप व आधार ही बिगड़ गया । जैसा कि हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम की किताब तौरैत में बहुत अधिक बदलाव किया गया और आज हज़रत ईसा की इंजील नाम की किसी पुस्तक का अस्तित्व नहीं है बल्कि उन के अनुयाई कहे जाने वालों के हाथों से लिखे हुए कुछ पृष्ठों को जोड़ कर उसे हज़रत ईसा के ग्रंथ का नाम दे दिया गया है ।

जो भी हज़रत ईसा पर उतरी इन्जील कही जाने वाली वर्तमान किताब पर बिना किसी भेदभाव के, वास्तविकता की खोज के उद्देश्य से नज़र

डालेगा उसे तत्काल इस बात का पता चल जाएगा कि इन में से कोई भी किताब हज़रत मूसा अथवा हज़रत ईसा पर उतारी हुई नहीं है। जहाँ तक तौरैत का प्रश्न है तो उस में तो न केवल यह कि ईश्वर को मानव की भाँति बताया गया है बल्कि यह भी कहा गया है कि उसे बहुत सी बातों का ज्ञान भी नहीं है।[1] और बार बार वह अपने कामों पर पछताता है। और अपने एक दास अर्थात हज़रत याकूब से कुश्ती लड़ता है किंतु उन से जीत नहीं पाता और अन्ततः उन से अनुरोध करता है कि उस का पीछा छोड़ दे ताकि लोग अपने ईश्वर को उस दशा में न देखें ।[2] इस के अलावा भी उन्हों ने ईश्वरीय दूतों पर आलोचनीय आरोप भी लगाए जैसा कि हज़रत दाउद अलैहिस्सलाम पर विवाहित महिला के साथ अवैध संबधं रखने,[3] हज़रत लूत पर निकट संबधियो के साथ अवैध संबधं बनाने और शराब पीने जैसे घिनावने आरोप लगाए[4] और तौरैत को लाने वाले अर्थात हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम की मृत्यु के बारे में भी उन की लाई हुई किताब में सारा विवरण है कि उन का कब , कैसे और कहाँ निधन हुआ।

क्या केवल यही बात यह समझने के लिए पर्याप्त नहीं है कि यह किताब हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम की लाई हुई नहीं है ?!

और जहाँ तक इंजील की बात है तो उस की दशा तो तौरैत से भी बुरी है क्योंकि जो किताब हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम लाए थे उस का कोई चिन्ह मौजूद ही नहीं है और स्वंय ईसाई भी इस का दावा नहीं करते कि वर्तमान इंजील वही किताब है जो हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम लेकर आए थे बल्कि उस में मौजूद चीज़ें हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के कुछ अनुयाइयों की बातें हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के हवाले से हैं ।

---

[1] तौरैत जन्म यात्रा , तीसरा अध्याय , 8– 12 , तीसरा अध्याय , 6

[2] तौरैत , सृष्टि की यात्रा , तीसरा अध्याय , 32 कमांक 24–32

[3] सेमूईल ,द्वीतीय किताब , अध्याय 11 ।

[4] तौरैत , सृष्टि की यात्रा , अध्याय 19 , कमांक 30 – 38

इस के अलावा शराब पीने का सुझाव और उसे बनाने को हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम का मोजिज़ा बताया गया है।[1]

और फिर हज़रत ईसा के जन्म के बाद छठीं ईसवी शताब्दी में जब पूरे विश्व पर अज्ञानता व अत्याचार का अंधकार छाया हुआए था और किसी भी क्षेत्र में ईश्वरीय मार्गदर्शन का प्रकाश नहीं था तो ईश्वर ने अपने अंतिम और सर्वश्रेष्ठ दूत तो विश्व के सब से अधिक अंधकारमय व अज्ञानता से भरे हुए क्षेत्र में भेजा ताकि ईश्वरीय संदेश की मशाल सदैव के लिए और सभी लोगों के लिया जलती रहे । ईश्वर ने उन के साथ अपनी सदैव बाक़ी रहने वाली किताब भेजी और उसे हर प्रकार के फेर – बदल से सुरक्षित रखा ताकि लोगों को ईश्वरीय शिक्षाओं व जीवन के सही सिद्धान्तों से अवगत कराया जा सके और समस्त मानव जाति को लोक– परलोक के कल्याण की ओर बुलाया जा सके ।[2]

अमीरुल मोमेनीन हज़रत अली अलैहिस्सलाम पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के उस विशेष काल के बारे में एक स्थान पर कहते हैं :

**ईश्वर ने पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को ऐसी स्थिति में पैगम्बरी का पद सौंपा कि जब पिछले पैगम्बरों को गये काफी समय बीत चुका था , लोग गहरी व लंबी नींद में डूब चुके थे , पथभ्रष्टता व अराजकता की आग ने पूरे विश्व को अपनी लपेट में ले रखा था और सारे काम अस्त – व्यवस्त थे । युद्ध की आग भड़क चुकी थी , पाप व अज्ञानता का अधंकार छाया हुआ था, धोखा व दुष्टता स्पष्ट रूप से जारी थी। मानव जीवन के वृक्ष के पत्ते पीले हो रहे थे और उस में फल लगने की आशा समाप्त हो चुकी थी।**

---

[1] इंजील , युहन्ना , दूसरा अध्याय ।

[2] सूरए जुमाअ – आयत 2, 3 ।

**जलस्तर नीचे हो चुका था और मार्गदर्शन की मशालें ठंडी होकर बुझ चुकी थीं , पथभ्रष्टता व पाप के झंडे लहरा रहे थे । पतन ने मनुष्य पर धावा बोल दिया था और उस का कुरूप स्पष्ट हो चुका था । इस गड़बड़ी व अज्ञानता के परिणाम में अराजकता व पथभ्रष्टता के अतिरिक्त कुछ भी सामने नहीं आता था और भय व आतंक व असुरक्षा के आगे हार जाने वाले लोगों के सामने रक्तपिपासु तलवार की छाया के अतिरिक्त कोई अन्य शरण स्थल नहीं रह गया था।** [1]

पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के काल के बाद से वास्तविकता की खोज करने वाले प्रत्येक मनुष्य के लिए ईश्वर के बाद पैगम्बरे इस्लाम के संदेशों तथा इस्लाम की सत्यता के बारे में खोज करना अत्यन्त महत्वपूर्ण विषयों में शामिल रहा है। इस विषय के प्रमाणित होने के साथ, ही फेर बदल से सुरक्षित एक मात्र ईश्वरीय ग्रंथ के रूप में मनुष्य के पास मौजूद कुरआन की सत्यता भी सिद्ध हो जाएगी ,और जब तक संसार रहेगा तब तक के लिए सही धर्म व मनुष्य को कल्याण तक पहुँचने वाला मार्ग भी स्पष्ट हो जाएगा। इस प्रकार विचारधारा व सही धर्म से संबंधित सभी समस्याओं का समाधान निकल आएगा ।

## पैगम्बरे इस्लाम की सत्यता का प्रमाण

पिछले सत्ताइसवें पाठ में बताया गया है कि पैगम्बरों की सत्यता को तीन मार्गों से सिद्ध किया जा सकता है एक यह कि जिन लोगों के मध्य उसे भेजा गया हो वह पहले से ही उसे जानते हों और उसे एक सत्यप्रेमी व सही व्यक्ति के रूप में स्वीकार करते हों तथा पहले से ही कुछ चिन्ह लोगों के

---

[1] नहजुल बलाग़ह , भाषण 187 ।

सामने स्पष्ट हों। दूसरा मार्ग यह कि पहले के किसी पैगम्बर ने उस के बारे में भविष्यवाणी की हो और तीसरा मार्ग मोजिज़ा व चमत्कार है।

पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की पैगम्बरी तीनों मार्गों से सिद्ध होती है। वे मक्का वासियों के मध्य चालीस वर्षों से रह रहे थे और इस दौरान मक्का नगर के लोगों ने उन्हें निकट से देखा था और उन्हें उन के आरचरण व चरित्र में किसी भी प्रकार की कोई कमी नज़र नहीं आई थी इसी लिए पैगम्बरे इस्लाम को उन की पैगम्बरी की घोषणा से पूर्व ही ७अमीन७ और ७सादिक७ अर्थात लोगों की अमानत का अत्याधिक ख्याल रखने वाला और सदैव सच बोलने वाला कहा जाता था । इस प्रकार से मक्का वासी यह नहीं सोच सकते कि पैगम्बरे इस्लाम ने अचानक चालीस वर्षों के बाद झूठ बोलना आंरभ कर दिया ।

दूसरी ओर उन से पहले के पैगम्बरों ने उन की पैगम्बरी के बारे में भविष्यवाणी की थी [1] और ईश्वरीय धर्मों के अनुयाई कुछ लोग उन की प्रतीक्षा भी कर रहे थे क्योंकि उन्हें बहुत से प्रतीकों व चिन्हों का ज्ञान था [2] बल्कि वह लोग तो मक्का के अनेकेश्वरवादियों से कहा करते थे कि हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम की संतान में से जिस में अधिकांश अरब थे , किसी को ईश्वरीय दूत के रूप में चुना जाएगा और वह अपने से पहले के ईश्वरीय दूतों के धर्मों की पुष्टि करेगा। [3] और बहुत से ईसाई व यहूदी विद्वान , इन्हीं भविष्यवाणियों के कारण पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम पर ईमान ले आए हॉलाकि बहुतों ने अपनी आंतरिक इच्छाओं व मोह माया के जाल में फंसे होने के कारण इस्लाम को स्वीकार करने से इन्कार भी किया ।

---

[1] सूरए सफ आयत 6

[2] सूरए आराफ – आयत 157 तथा बहुत सी अन्य आयतें ।

[3] सरूए बक़रह आयत – 89

कुरआन मजीद इस संदर्भ में कहता है : क्या उन के लिए यह चिन्ह नहीं था कि उन्हें इस्राईल की संतान के विद्वान पहचानते थे [1]

पहले के पैगम्बरों की भविष्यवाणियों और चिन्हों के आधार पर यहूदी विद्वानों द्वारा पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को पहचानना जिस प्रकार से समस्त ईसाईयों और यहूदियों के लिए एक ठोस प्रमाण था उसी प्रकार यह पहचान भविष्य वाणी करने वाले और जिस के बारे में भविष्यवाणी की गयी है उन दोनों की सत्यता की भी प्रमाण थी। क्योंकि इन भविष्य वाणियों की सच्चाई तथा किसी एक पर उस के यर्थाथ होने को उन लोगों ने अपनी आँखों से देखा और अपनी बुद्धि से समझा था ।

विचित्र बात तो यह है कि इसी बदली हुई तौरैत व इंजील में भी , इस प्रकार की शुभसूचनाओं को मिटाने के लिए किये गये समस्त प्रयासों के बावजूद , बहुत सी ऐसी बातें मिल जाती हैं जो सत्य के खोजी को विश्वास व संतोष दिलाने के लिए पर्याप्त होती हैं और यही कारण है कि बहुत से यहूदी व ईसाई धर्म गुरूओं ने जब सत्य की खोज की तो इन बातों पर ध्यान देते हुए इस्लाम को स्वीकार कर लिया। [2]

इसी प्रकार पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने बहुत से मोजिज़े दिखाए जिन का उल्लेख इतिहास की किताबों में निंरतरता के साथ मिलता है किंतु अपने अंतिम दूत की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए ईश्वर ने जो विशेष मोजिज़ा उन्हें दिया है वह कुरआने मजीद है जो सदैव ही बाकी रहने वाला है । अगले पाठ में हमारी चर्चा का विषय यही होगा।

---

[1] सूरए शोअरा – आयत 197 , इस्राईल की संतान अर्थात यहूदी ।

[2] उदाहरण स्वरूप तेहरान के वरिष्ठ यहूदी धर्मगुरू तथा यहूदियों के विरूद्ध प्रसिद्ध किताब लिखने वाले मिर्जा मोहम्मद रज़ा और यज़्द के वरिष्ठ यहूदी धर्म गुरू हाज बाबा क़ज़वीनी तथा पूर्व ईसाई धर्म गुरु प्रोफेसर अब्दुल अहद दाउद जैसे लोगों की ओर संकेत किया जा सकता है।

## प्रश्न

1. पहले के ईश्वरीय दूतों की लाई हुई किताबों की दशा का वर्णन करें

2. तौरैत में फेर – बदल के कुछ उदाहरण दीजिए।

3. वर्तमान इंजील के अविश्वस्त होने का कारण बताएं ।

4. पैगम्बरे इस्लाम की पैगम्बरी के महत्व का वर्णन करें ।

5. पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की सत्यता सिद्ध करने के मार्ग बताएं।

बत्तीसवाँ पाठ

# कुरआन का मोजिज़ा होना

- कुरआन का मोजिज़ा होना
- कुरआन के मोजिज़े के आयाम
- वाकपटुता व स्पष्टता
- कुरआन लाने वाले का पढ़ा लिखा न होना
- समन्वय होना और विपरीतता का न होना

## कुरआन का मोजिज़ा होना

कुरआन मजीद वह एकमात्र ईश्वरीय किताब है जो स्पष्ट रूप से यह घोषणा करती है कि किसी में भी उस जैसी किताब की रचना की शक्ति नहीं है बल्कि अगर सारे मनुष्य और जिन्न एक साथ हो जाऐं तो भी ऐसा कर पाने में सक्षम नहीं होगें। [1] और न केवल यह कि कुरआन जैसी एक पूरी किताब लाने की क्षमता नहीं रखते बल्कि उस के जैसे दस सूरे बल्कि एक सूरा और एक पंक्ति भी लाने में कोई सक्षम नहीं है। [2]

इस के बाद कुरआन में अधिक तीव्रता के साथ सारे लोगों को चुनौती दी गयी है और यह बार बार कहा गया है कि किसी में भी कुरआन जैसी कोई रचना लाने की क्षमता नहीं है और इस कार्य में सारे लोगों की अक्षमता को कुरआन और पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की सत्यता का प्रमाण बताया गया है। [3]

तो फिर इस में तो कोई शंका नहीं रह जाती है कुरआन में इस किताब को मोजिज़ा व चमत्कार कहा गया है और उसे पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की सत्यता के प्रमाण के रूप में विश्व वासियों के समक्ष पेश किया गया है। और इस समय भी चौदह सौ वर्षो से अधिक का

---

[1] सूरए इसरा – आयत 88

[2] सूरए युनुस – आयत 38, सूरए हूद आयत 13।

[3] सूरए बक़रह आयत 23, 24

समय बीत जाने के बाद भी यह ईश्वरीव चुनौती मित्र व शत्रु के प्रचार माध्यमों द्वारा विश्व वासियों के कानों में गूँजती रहती है ।

दूसरी ओर हमें यह पता है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को अपने इस महान अभियान के पहले दिन से ही अत्यन्त द्वेष रखने वाले शत्रुओं का सामना करना पड़ा कि जिन्हों ने इस ईश्वरीय धर्म के विरूद्ध लड़ाई और इसे मिटाने के सारे जतन कर डाले तथा धमकियों और प्रलोभन की प्रभावहीनता सिद्ध होने के बाद पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की हत्या का षडयन्त्र भी रचा कि जो गुप्त रूप से पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के मक्का से मदीना पलायन के कारण विफल हो गया । फिर पलायन के बाद भी पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने अपनी बाकी आयु अनेकेश्वरवादियों और उन के यहूदी समर्थकों के विरूद्ध संघर्ष में व्यतीत की और पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के स्वर्गवास के बाद से आज तक इस्लाम के आंतरिक व बाहरी शत्रु इस ईश्वरीय दीप को बुझाने के प्रयासों में लगे हुए हैं और अपने इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उन्हें किसी भी काम से संकोच नहीं है । इस लिए अगर कुरआन की भॉति किसी किताब की रचना संभव होती तो इस्लाम के शत्रु अवश्य यह काम करते ।

इस काल में भी लगभग सभी महाशक्तियॉ इस्लाम को अपने वर्चस्वाद के मार्ग की सब से बड़ी बाधा समझती हैं और उन्हों ने उस के विरूद्ध अभियान छेड़ रखा है तथा इस मार्ग में अपने सभी भौतिक , राजनीतिक व प्रचारिक हथकंडों व साधनों का भी प्रयोग कर रही हैं । इसी लिए अगर उन के लिए कुरआन मजीद जैसी एक पंक्ति भी लिखना संभव होता तो ऐसा करके सामूहिक संचार माध्यमों में उस का जमकर प्रचार– प्रसार किया जाता। क्योंकि यह सरल होने के साथ साथ कम खर्चे वाला भी होता ।

इस आधार पर , वास्तविकता का खोजी हर बुद्धिमान व्यक्ति इन बातों के दृष्टिगत इस विश्वास तक पहुँच जाएगा कि कुरआन मजीद

असाधारण और अद्वीतीय किताब है और कोई व्यक्ति अथवा गुट किसी भी प्रकार के प्रशिक्षण व शिक्षण व अभ्यास के बाद उस के जैसी किसी अन्य किताब की रचना नहीं कर सकता । अर्थात कुरआन में एक मोजिज़े की सारी विशेषताएं मौजूद हैं । इस आधार पर पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के संदेश के सही होने का सब से ठोस प्रमाण कुरआन है। तथा इस के साथ ही यह महान किताब मानव समाज के लिए महान ईश्वरीय कृपाओं में से भी है क्योंकि ईश्वर ने इस किताब को इस प्रकार से पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को प्रदान किया है और उसे ऐसा बनाया है कि वह सदैव के लिए एक चमत्कार के रूप में मानव समाज में बाकी रहेगी और कुरआन की इस विशेषता और उस के चमत्कारिक आयाम को समझने के लिए किसी प्रकार की दक्षता की भी आवश्यकता नहीं है बल्कि बड़ी सरलता से यह बात हर एक की समझ में आ सकती है।

## कुरआन के चमत्कारी आयाम

अब जब कि संक्षेप में यह बात पता चल चुकी है कि कुरआन मजीद ईश्वरीय कथन और चमत्कार है तो यहाँ पर हम उस के कुछ चमत्कारी पहलुओं पर चर्चा करेगें ।

### 1. कुरआन में सरलता व सुलभता

कुरआन मजीद की पहली विशेषता और चमत्कारी पहलु उस की सरलता व सुलभता है । अर्थात ईश्वर ने विभिन्न विषयों के वर्णन के समय हर स्थान पर ऐसे शब्दों और अर्थो का उच्चतम वाक्यों व बनावट के साथ प्रयोग किया है जो पूर्ण रूप से दृष्टिगत अर्थ को लोगों तक पहुँचाने में सक्षम हैं । इस प्रकार के शब्दों व वाक्य के ढॉचे का चयन केवल उसी के लिए संभव है जो सभी शब्दों व अर्थों का बिल्कुल सही रूप में ज्ञान रखता हो तथा उसे अलग

अलग शब्दों के मध्य पाए जाने वाले संबंधों तथा उन्हें एक साथ प्रयोग करने करने की दशा में सामने आने वाली स्थिति व अर्थ का भलीभाँति और पूर्ण ज्ञान हो तथा यह भी मालूम हो कि प्रयोग किए गये शब्द सर्वश्रेष्ठ और वाक्य की बनावट सर्वोत्तम है और इस प्रकार का ज्ञान ईश्वरीय संदेश के बिना किसी भी मनुष्य के लिए संभव नहीं है।

कुरआन मजीद का मनमोहक सुर सब के लिए और उस की विशेष शैली अरबी भाषा और अरबी साहित्य में रूचि रखने वाले जानकारों के लिए स्पष्ट है किंतु कुरआन के चमत्कार होने को ठोस प्रमाणों के साथ समझना केवल उन्हीं लोगों के लिए संभव है जिन्हें अरबी साहित्य में दक्षता प्राप्त हो और वे अन्य रचनाओं से कुरआन की तुलना करने में सक्षम हों और फिर अपने पूरे ज्ञान के साथ कुरआन की चुनौती को कसौटी पर परखें । और यह काम अरब के कवियों और साहित्य में ज्ञान रखने वाले बड़े बड़े बुद्धिजीवियों द्वारा ही संभव था क्योंकि कुरआन के आने के समय अरबों के मध्य सब से बड़ी व महत्वपूर्ण कला, साहित्य थी और इस्लाम के उदय के समय वह अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। उस काल में अरब सब से अच्छी कविताओं का चयन करते और उन्हें सर्वोत्तम रचना के रूप सुरक्षित रखते थे।

मूल रूप से ईश्वर की कृपा व उस के ज्ञान के लिए यह आवश्यक था कि प्रत्येक पैगम्बर का मोजिज़ा और चमत्कार उस काल में प्रचलित कला के अनुसार हो ताकि उस मोजिज़े के चमत्कारी पहलू को अच्छी तरह समझा जा सके जैसा कि जब इमाम अली नकी अलैहिस्सलाम से इब्ने सिक्कीत ने पूछा कि क्यों हज़रत मूसा का मोजिज़ा सफेद हाथ और अजगर था और हज़रत ईसा का मोजिजा , रोगियों को स्वस्था करना था पैगम्बरे इस्लाम का मोजिज़ा कुरआन मजीद था तो उन्हों ने उत्तर दिया : हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम के काल में जादू प्रचलित कला थी इस लिए ईश्वर ने उन्हें वैसा ही चमत्कार दिया था ताकि मोजिज़े के समान काम करने में लोगों को अपनी अक्षमता का पता चल सके। इसी प्रकार हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के काल में चिकित्सा का

बहुत ज़ोर था इसी लिए ईश्वर ने उन्हें असाध्य रोगों के निवारण का मोजिज़ा प्रदान किया था ताकि लोगों को उस के महत्व का भलीभाँति ज्ञान हो सके । किंतु पैगम्बरे इस्लाम के काल में कविता व साहित्य को अत्याधिक महत्व प्राप्त था इस लिए ईश्वर ने कुरआन को सर्वश्रेष्ठ शैली में पैगम्बरे इस्लाम को प्रदान किया ताकि लोगों को उन की श्रेष्ठता और चमत्कार का पता चल सके ।

उस काल के बड़े बड़े कवि और साहित्य का ज्ञान रखने वाले जैसे वलीद बिन मुगैरह मख़ज़ूमी , अतबह बिन रबीअह , तुफैल बिन अम्र आदि ने कुरआन मजीद के इस चमत्कारी आयाम की गवाही दी और उस की पुष्टि की है और लगभग सौ वर्षो बाद अबू इब्नेलअवजा , इब्ने मुकफ़्फ़अ , अबू शाकिर दीसानी तथा अब्दुल मलिक बसरी जैसे लोगों ने कुरआन की चुनौती का उत्तर देने का निर्णय लिया और पूरे एक वर्ष तक अनथक प्रयास के बाद भी जब उन्हें विफलता का मुँह देखना पड़ा तो अन्ततः विवश होकर उन्हों ने अपनी अक्षमता को स्वीकार कर लिया । मक्के में वह लोग काबे के निकट बैठ कर जब अपनी एक वर्ष की मेहनत की समीक्षा कर रहे थे तो इमाम जाफरे सादिक अलैहिस्सलाम ने उन के पास से गुज़रते हुए कुरआन की यह आयत पढ़ी :

**हे पैगम्बर कह दो अगर मनुष्य और जिन्न एक साथ हो जाएं ताकि इस कुरआन की भाँति कुछ ले आएं तो वह उस के जैसा कुछ नही ला पाएगें भले ही वे एक दूसरे की सहायता ही क्यों न करें ।**[1]

2. पैगम्बर का पढ़ा लिखा न होना भी कुरआन के ईश्वरीय रचना होने का एक प्रमाण है । कुरआन मजीद ऐसी किताब है कि जो अपने कम पृष्ठों के बावजूद विभिन्न प्रकार की व्यक्तिगत व सामाजिक जानकारियों व ज्ञान को अपने भीतर समेटे हुए है और उन सारे विषयों की समीक्षा के लिए विभिन्न क्षेत्रों में दक्ष समझे जाने वाले विशेषज्ञों की आवश्यकता है जो वर्षो तक अध्ययन करके उस में छिपे हुए रहस्यों से पर्दा हटाएं हालाँकि कुरआन के

---

[1] सूरए इसरा – आयत 88 ।

रहस्यों से पर्दा उठाना वास्तव में उन्हीं लोगों के बस की बात है जिन्हें ईश्वर ने विशेष ज्ञान प्रदान किया है ।

विभिन्न प्रकार की जानकारियों , उपदेशों , एतिहासिक घटनाओं और नियमों बल्कि एक शब्द में मनुष्य के लिए आवश्यक सभी प्रकार के नियमों व बातों पर आधारित यह किताब अभूतपूर्ण रचना शैली रखती है कुछ इस प्रकार से कि समाज का प्रत्येक सदस्य अपनी क्षमता के अनुसार इस से लाभ उठा सकता है।

इस प्रकार की एक किताब में इतनी अधिक जानकारियों को समेटना साधारण मनुष्य का काम नहीं हो सकता किंतु जो विषय अधिक आश्चर्यजनक है वह यह है कि इस महान किताब से मनुष्य को जिस ने परिचित कराया है उस ने किसी पाठ शाला अथवा किसी व्यक्ति से शिक्षा प्राप्त नहीं की थी और इस से भी अधिक विचित्र बात यह है कि उस महान व्यक्ति ने अपनी पैगम्बरी की घोषणा से पूर्व चालीस वर्षो तक कभी भी वैसी बात नहीं की थी जैसी कुरआन में वर्णित हैं । उन्हों ने ईश्वरीय संदेश के रूप में जो बातें लोगों तक पहुँचाई वह उन की अपनी शैली से पूर्ण रूप से भिन्न थी। और कुरआन के बाद भी पैगम्बरे इस्लाम के कथनों और ईश्वरीय संदेश के मध्य स्पष्ट अंतर को देखा जा सकता है।

**कुरआन मजीद ने मी इस ओर संकेत करते हुए कहा है : और तुम उस से पूर्व कोई किताब नहीं पढ़ते थे और न ही उसे अपने दाहिने हाथ से लिखते थे अन्यथा शंका करने वाले लोग संदेह में पड़ जाते ।**[1]

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर कुरआन में आया है : **कह दो अगर ईश्वर चाहता तो मैं उसे तुम्हारे लिए न पढ़ता और तुम्हें उस के बारे**

---

[1] सूरए अनकबूत आयत 48

**में न बताता मैं ने इस से पूर्व वर्षों तुम्हारे साथ जीवन व्यतीत किया है तो क्या तुम लोग समझते नहीं ।**[1]

### 3. समन्वय होना और विपरीतता न होना

कुरआन मजीद ,पैगम्बरे इस्लाम की पैगम्बरी के 23 वर्षो के दौरान कि जो संकटमयी काल तथा विभिन्न प्रकार की घटनाओं से भरा हुआ था , ईश्वर द्वारा भेजा गया किंतु इन 23 वर्षों के दौरान सामने आने वाली विभिन्न घटनाओं ने कुरआन मजीद की सुव्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं डाला । पूरे कुरआन में पाया जाने वाला विचित्र समन्वय भी उस का एक चमत्कारी आयाम है जैसा कि स्वंय कुरआने मजीद में इस ओर संकेत हुआ है :

**क्या वे कुरआन पर ध्यान नहीं देते अगर वह ईश्वर के अलावा किसी और के पास से होता तो उन्हें उस में बहुत से विरोधाभास दिखाई देते ।**[2]

यहॉ पर इस ओर ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य कम से कम दो प्रकार के परिवर्तनों का शिकार होता है।

प्रथम यह कि समय बीतने के साथ साथ उस के ज्ञान व जानकारी में वृद्धि होती है जिस का सीधा प्रभाव उस की बातों और क्षमताओं पर पड़ता है और स्वाभविक रूप से बीस वर्ष के दौरान उस की बातों में अंतर को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

दूसरी बात यह कि जीवन में घटने वाली विभिन्न घटनाएं, मनुष्य के भीतर विभिन्न प्रकार की मानसिक दशाओं के जन्म लेने का कारण बनती हैं जैसे आशा, निराशा, उत्साह, दुख , प्रसन्नता आदि और स्वाभाविक है कि इस प्रकार की दशाएं उस की विचार धाराओं और कथनों और चरित्र को भी

---

[1] सूरए युनुस आयत 16 ।

[2] सूरए निसाअ – आयत 82

प्रभावित करती हैं और स्वाभाविक रूप से इस प्रकार की भावनाएं जितनी तीव्र होंगी उतना ही उस की बातों में अंतर व विरोधाभास बढ़ता जाएगा। वास्तव में बातों में परिवर्तन , मानसिक दशाओं में परिवर्तन पर निर्भर होता है जो स्वंय ही प्राकृतिक व सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव में होती हैं । अब अगर यह मान लिया जाए कि कुरआन मजीद एक मनुष्य के रूप में पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की अपनी रचना है तो फिर पैगम्बरे इस्लाम के जीवन में आने वाले बड़े बड़े परिवर्तनों और विभिन्न प्रकार की घटनाओं के दृष्टिगत कुरआन में प्रारूप व अर्थ की दृष्टि से बहुत से विरोधाभास होने चाहिए थे किंतु आज तक कुरआन में ऐसा कोई विरोधाभास नज़र नहीं आया है।

तो इस प्रकार से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि कुरआन के विषयों में पाया जाने वाला समन्वय और विरोधाभास का न होना उस की सुन्दर शैली व साहित्य से अलावा चमत्कार का एक अन्य पहलू है जो इस बात को प्रमाणित करता है कि यह किताब स्थाई व अनन्त ज्ञान स्रोत अर्थात ईश्वर द्वारा भेजी गयी है जो पूरी सृष्टि का स्वामी है और बदलते युगों व परिस्थितियों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

## प्रश्न

1. किस प्रकार से कुरआन ने अपने आप को मोजिज़ा कहा है

2. कुरआन के मोजिजा होने का प्रमाण क्या है ?

3. क्या यह समझा जा सकता है कि किसी ने कुरआन का जवाब लाने का प्रयास ही नहीं किया या यह कि कुछ लोग कुरआन का जवाब लाए हैं किंतु हमें उस की जानकारी नहीं है।,

4. कुरआन की सुन्दर शैली व साहित्य संबधी चमत्कार का वर्णन करें।

5. पैगम्बरे इस्लाम का किसी पाठ शाला अथवा किसी व्यक्ति से पढ़ा हुआ न होने का कुरआन के मोजिज़े से क्या सबंध है?

6. कुरआन में किसी प्रकार के विरोधाभास न होने से उस के मोजिज़ा होने को कैसे समझा जा सकता है?

तैंतीसवाँ पाठ

# कुरआन की फेर– बदल से सुरक्षा

- भूमिका
- कुरआन में किसी वस्तु की वृद्धि न होना
- कुरआन में किसी वस्तु का कम न होना

## भूमिका

जैसा कि इस से पूर्व संकेत किया जा चुका है कि पैगम्बरों और ईश्वरीय दूतों के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह आवश्यक था कि ईश्वरीय संदेश सही अवस्था और बिना किसी फेर – बदल के लोगों तक पहुँचें ताकि लोग अपना लोक – परलोक बनाने के लिए उस से लाभ उठा सकें ।

इस आधार पर , लोगों तक पहुँचने से पूर्व तक कुरआने करीम का हर प्रकार के परिवर्तन से सुरक्षित रहना अन्य सभी ईश्वरीय पुस्तकों की भाँति चर्चा का विषय नहीं है किंतु जैसा कि हमें मालूम है अन्य ईश्वरीय किताबें लोगों के हाथों में आने के बाद थोड़ी बहुत बदल दी गयीं या कुछ दिनों बाद उन्हें पूर्ण रूप से भुला दिया गया जैसा कि आज हज़रत नूह और हज़रत इब्राहीम अलैहिमुस्सलाम की किताबों का कोई पता नहीं है और हज़रत मूसा व हज़रत ईसा अलैहिमुस्सलाम की किताबों के मूल रूप को बदल दिया गया है । इस बात के दृष्टिगत , यह प्रश्न उठता है कि हमें यह कैसे ज्ञात है कि अंतिम ईश्वरीय संदेश के नाम पर जो किताब हमारे हाथों में है यह वही कुरआन है जिसे पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम पर उतारा गया था और आज तक उस में किसी भी प्रकार का फेर – बदल नहीं किया गया और न ही उस में कोई चीज बढ़ाई गयी और न ही कम की गयी ?

यद्यपि जिन लोगों को इस्लामी इतिहास का थोड़ा भी ज्ञान होगा और कुरआन की सुरक्षा पर पैगम्बरे इस्लाम और उन के उत्तराधिकारियों द्वारा दिए जाने वाले विशेष ध्यान के बारे में पता होगा तथा मुसलमानों के मध्य कुरआन

की सुरक्षा के बारे में पाई जाने वाली संवेदनशीलता की जानकारी होगी तो वह इस किताब में किसी प्रकार के परिवर्तन की संभावना का इन्कार बड़ी सरलता से कर देगा । क्योंकि इतिहासिक तथ्यों के अनुसार केवल एक ही युद्ध में कुरआन को पूरी तरह से याद कर लेने वाले सत्तर लोग शहीद हुए थे। इस से कुरआन के स्मरण की परंपरा का पता चलता है जो निश्चित रूप से कुरआन की सुरक्षा में अत्याधिक प्रभावी है। इसी प्रकार गत चौदह सौ वर्षों के दौरान कुरआन की सुरक्षा में किए गये उपाय , उस की आयतों और शब्दों की गिनती आदि जैसे काम भी इस संवेदशनशीलता के सूचक हैं । किंतु इस प्रकार के विश्वस्त ऐतिहासिक प्रमाणों से हटकर भी बौद्धिक व ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित एक तर्क द्वारा कुरआन की सुरक्षा को सिद्ध किया जा सकता है अर्थात सब से पहले कुरआन में किसी विषय की वृद्धि को बौद्धिक तर्क द्वारा सिद्ध किया जा सकता है और जब यह सिद्ध हो जाए कि वर्तमान कुरआन ईश्वर की ओर से भेजा गया है तो फिर उस की आयतों को प्रमाण बना कर यह सिद्ध किया जा सकता है कि उस में से कोई वस्तु कम भी नहीं हुई है।

इस प्रकार से हम कुरआन में फेर – बदल न होने को दो अलग–अलग भागों में सिद्ध करेगें ।

### 1. कुरआन में कुछ बढ़ाया नहीं गया है

कुरआन में कुछ बढ़ाया नहीं गया है इस विषय पर मुसलमानों के सभी गुट सहमत हैं बल्कि विश्व के सभी जानकार लोगों ने भी इस की पुष्टि की है और कोई भी ऐसी घटना नहीं घटी है जिस के अंतर्गत कुरआन में जबरदस्ती कुछ बढ़ाना पड़ा हो और इस प्रकार की संभावना का कोई प्रमाण भी मौजूद नहीं है । किंतु इसी के साथ कुरआन में किसी वस्तु के बढ़ाए जाने की संभावना को बौद्धिक तर्क से भी इस प्रकार रद्द किया जा सकता है :

अगर यह मान लिया जाए कि कोई एक पूरा विषय कुरआन में बढ़ा दिया गया है तो फिर उस का अर्थ यह होगा कि कुरआन जैसी रचना दूसरे के

लिए भी संभव है किंतु यह संभावना कुरआन के चमत्कारी पहलू और कुरआन का जवाब लाने में मनुष्य की अक्षमता से मेल नहीं खाती । और अगर यह मान लिया जाए कि कोई एक शब्द या एक छोटी सी आयत उस में बढ़ा दी गयी है तो उस का अर्थ यह होगा कि कुरआन की व्यवस्था व ढॉचा बिगड़ गया जिस का अर्थ होगा कि कुरआन में वाक्यों के मध्य तालमेल का जो चमत्कारी पहलू था वह समाप्त हो गया है और इस दशा में यह भी सिद्ध हो जाएगा कि कुरआन में शब्दों की बनावट और व्यवस्था का जवाब लाना संभव है क्योंकि कुरआनी शब्दों का एक चमत्कार शब्दों का चयन तथा उन के मध्य संबधं भी है और उन में किसी भी प्रकार का परिवर्तन , उस के खराब होने का कारण बन जाएगा ।

तो फिर जिस तर्क के अंतर्गत कुरआन के मोजिज़ा होने को सिद्ध किया गया था उस का सुरक्षित रहना भी उन ही तर्कों व प्रमाणों के आधार पर सिद्ध होता है किंतु जहॉ तक इस बात का प्रश्न है कि कुरआन से किसी एक सूरे को कुछ इस प्रकार से नहीं निकाला गया है कि दूसरी आयतों पर उस का कोई प्रभाव न पड़े तो इस के लिए एक अन्य तर्क की आवश्यकता है।

## 2.कुरआन से कुछ कम नहीं हुआ है

शीआ और सुन्नी समुदाय के बड़े बड़े धर्म गुरूओं ने इस बात पर बल दिया है कि जिस तरह से कुरआन में कोई चीज़ बढ़ाई नहीं गयी है उसी तरह उस में से किसी वस्तु को कम भी नहीं किया गया है । और इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्हों ने बहुत से प्रमाण पेश किए हैं किंतु खेद की बात है कि कुछ गढ़े हुए कथनों तथा कुछ सही कथनों की गलत समझ के आधार पर कुछ लोगों ने यह संभावना प्रकट की है बल्कि बल दिया है कि कुरआन से कुछ आयतों को हटा दिया गया है।

किंतु कुरआन में किसी भी प्रकार के फेर – बदल न होने के बारे में ठोस ऐतिहासिक प्रमाणों के अतिरिक्त स्वंय कुरआन द्वारा भी उस में से किसी वस्तु के कम न होने को सिद्ध किया जा सकता है।

अर्थात जब यह सिद्ध हो गया कि इस समय मौजूद कुरआन ईश्वर का संदेश है और उस में कोई चीज़ बढ़ाई नहीं गयी है तो फिर कुरआन की आयतें ठोस प्रमाण हो जाएगीं । और कुरआन की आयतों से यह सिद्ध होता है कि ईश्वर ने अन्य ईश्वरीय किताबों के विपरीत कि जिन्हें लोगों को सौंप दिया गया था , कुरआन की सुरक्षा की जिम्मेदारी स्वयं ली है ।

उदारहण स्वरूप सूरए हिज्र की आयत 9 में कहा गया है : **निश्चित रूप से हम ने स्मरण[1] को उतारा है और हम ही उस की सुरक्षा करने वाले हैं ।**

यह आयत दो भागों पर आधारित है । पहला यह कि हम ने कुरआन को उतारा है जिस से यह सिद्ध होता है कि कुरआन ईश्वरीय संदेश है और जब उसे उतारा जा रहा था तो उस में किसी प्रकार का फेर बदल नहीं हुआ और दूसरा भाग वह है जिस में कहा गया है कि हम ही उस की सुरक्षा करने वाले हैं तो इस को जिस प्रकार से कहा गया है वह अरबी व्याकरण की दृष्टि से निरंतरता को दर्शाता है अर्थात ईश्वर सदैव कुरआन की सुरक्षा करने वाला है ।

यह आयत हॉलाकि कुरआन में किसी वस्तु की वृद्धि न होने को भी प्रमाणित करती है किंतु इस आयत को कुरआन में किसी प्रकार की कमी के न होने के लिए प्रयोग करना इस आशय से है कि अगर कुरआन में किसी विषय के बढ़ाए न जाने के लिए इस आयत को प्रयोग किया जाएगा तो हो सकता है यह कल्पना की जाए कि स्वयं यही आयत बढ़ाई हुई हो सकती है इस लिए हम ने कुरआन में किसी वस्तु के बढ़ाए न जाने को दूसरे तर्कों और प्रमाणों से सिद्ध किया है और इस आयत को कुरआन में किसी वस्तु के कम न होने को सिद्ध करने के लिए प्रयोग किया है । इस प्रकार से कुरआन में हर प्रकार के फेर – बदल की संभावना समाप्त हो जाती है।

---

[1] यहाँ पर कुरआन के लिए ज़िक्र का शब्द प्रयोग किया गया है जिस का अर्थ स्मरण और आशय कुरआन है।

अंत में इस ओर संकेत भी आवश्यक है कि कुरआन के परिवर्तन व बदलाव से सुरक्षित होने का अर्थ यह नहीं है कि जहाँ कहीं भी कुरआन की कोई प्रति होगी वह निश्चित रूप सही और हर प्रकार की लिपि की गलती से भी सुरक्षित होगी या यह कि निश्चित रूप से उस की आयतों और सूरों का कम भी बिल्कुल सही होगा तथा उस के अर्थों की किसी भी रूप में गलत व्याख्या नहीं की गयी होगी । बल्कि इस का अर्थ यह है कि कुरआन कुछ इस प्रकार से मानव समाज में बाकी रहेगा कि वास्तविकता के खोजी उस की सभी आयतों को उसी प्रकार से प्राप्त कर सकते हैं जैसे वह ईश्वर द्वारा भेजी गयी थीं । इस आधार पर कुरआन की किसी प्रति में मानवीय गलतियों का होना हमारी इस चर्चा के विपरीत नहीं है।

## प्रश्न

1. कुरआन में फेर – बदल न होने की भूमिका का वर्णन करें ।

2. कुरआन के सुरक्षित होने के ऐतिहासिक प्रमाण क्या हैं ?

3. कुरआने मजीद के सुरक्षित होने को किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है?

4. कुरआन में किसी प्रकार की वृद्धि न होने का प्रमाण पेश करें ।

5. किस प्रकार से कुरआन में किसी कमी के न होने को सिद्ध किया जा सकता है ?

6. क्या उसी प्रमाण से यह सिद्ध किया जा सकता है कि कुरआन में किसी वस्तु की वृद्धि नही हुई है ? किस प्रकार ?

7. यह बताएं कि कुरआन की कुछ प्रतियों में गलतियाँ या पढ़ने की शैली में अंतर या आयतों के लिखने और सूरों के कम में अंतर तथा कुछ गलत व्याख्याओं की उपस्थिति कुरआन के सुरक्षित रहने की चर्चा के विपरीत क्यों नहीं है ?

चौंतीसवाँ पाठ

# इस्लाम का विश्व व्यापी व सर्वकालिक होना

- भूमिका
- इस्लाम विश्व व्यापी है
- इस्लाम के विश्व व्यापी होने पर कुरआनी प्रमाण
- इस्लाम की सर्वकालीनता
- कुछ शंकाओं का निवारण

# भूमिका

यह स्पष्ट हो चुका है कि सभी पैगम्बरों पर विश्वास और उन के संदशों को स्वीकार करना आवश्यक है[1] और किसी एक पैगम्बर का इन्कार या उन के संदेशों के किसी एक भाग का इन्कार ईश्वरीय आदेश के इन्कार तथा शैतान की भाँति ईश्वर के इन्कार के समान है।

इस आधार पर , पैगम्बरे इस्लाम के ईश्वरीय दूत होने के विषय के सिद्ध होने के बाद उन पर और उन के द्वारा लाई गयी सभी आयतों और उन के द्वारा वर्णित सभी ईश्वरीय आदेशों की पुष्टि और उन पर ईमान आवश्यक है।

किंतु समस्त पैगम्बरों और उन के संदेशों पर ईमान और विश्वास का अर्थ यह नहीं है कि उन सभी की शिक्षाओं का पालन करना भी आवश्यक है । जैसा कि मुसलमान सभी पैगम्बरों और उन के द्वारा लाई गयी किताबों पर विश्वास रखते हैं किंतु उन की शिक्षाओं का पालन नहीं करते और न कर सकते हैं । और इस से पूर्व भी संकेत किया जा चुका है कि प्रत्येक राष्ट्र व समुदाय का कर्तव्य अपने मध्य भेजे गये ईश्वरीय दूत की शिक्षाओं का पालन है । इस प्रकार से इस्लाम की शिक्षाओं का पालन समस्त लोगों के लिए उसी समय सिद्ध होगा जब यह प्रमाणित हो जाए कि पैगम्बरे इस्लाम का संदेश किसी समुदाय अथवा जाति विशेष जैसे अरबों तक ही सीमिति नहीं था और यह कि पैगम्बरे इस्लाम के बाद कोई अन्य ईश्वरीय दूत धरती पर नहीं आया कि जो

---

[1] उन्तीसवाँ पाठ

उन की शिक्षाओं के स्थान पर नयी शिक्षाओं व नियमों का वर्णन करता । दूसरे शब्दों में इस्लाम विश्व व्यापी व सर्वकालिक धर्म हो ।

इस आधार पर इस विषय पर चर्चा आवश्यक है कि क्या पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम का संदेश और उन का दायित्व विश्व व्यापी व सर्वकालिक है या फिर उन का संदेश किसी जाति व युग से विशेष था ?

स्पष्ट सी बात है कि इस विषय को पूर्ण रूप से बौद्धिक तर्कों द्वारा की प्रमाणित करना संभव नहीं है बल्कि इस के लिए विभिन्न प्रकार के उपलब्ध व ऐतिहासिक प्रमाणों का सहारा लेना पड़ेगा ।

और जिस के लिए कुरआन मजीद और पैगम्बरे इस्लाम की पवित्रता सिद्ध हो चुकी होगी उस के लिए कुरआन और पैगम्बरे इस्लाम के कथनों व व्यवहार से अधिक कोई प्रमाण विश्वस्त नहीं हो सकता ।

## इस्लाम का विश्व व्यापी होना

इस्लाम का विश्व व्यापी होना और किसी जाति अथवा समूदाय से विशेष न होना इस ईश्वरीय धर्म के आवश्यक तत्वों में से है और जो लोग इस्लाम को स्वीकार नहीं करते उन्हें भी ज्ञात है कि इस्लाम का संदेश सर्वव्यापी था और किसी एक क्षेत्र से विशेष नहीं था ।

इस के अतिरिक्त भी बहुत से ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद हैं जिन से सिद्ध होता है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने रोम व ईरान के सम्राटों तथा मिस्र व वर्तमान एथोपिया तथा सीरियाई क्षेत्रों के शासकों तथा अरब आदि बहुत से कबीलों के सरदारों के नाम पत्र लिखे और उन के पास विशेष दूत भेजे और सब को पवित्र धर्म इस्लाम स्वीकार करने का निमंत्रण दिया और ईश्वर के इन्कार तथा इस्लाम को स्वीकार न करने की

हानियों व कुपरिणामों से उन्हें अवगत कराया ।[1] तो अगर इस्लाम धर्म विश्व व्यापी न होता तो इस प्रकार का आम आह्वान न किया जाता और इस स्थिति में अन्य समुदायों और जातियों के पास इस्लाम स्वीकार न करने का बहाना मौजूद होता ।

इस आधार पर इस्लाम की सत्यता पर विश्वास और इस ईश्वरीय धर्म की शिक्षाओं के पालन को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। कुछ लोगों को इस ईश्वरीय धर्म को स्वीकार करने से अपवाद भी नहीं माना जा सकता।

## इस्लाम के विश्व व्यापी होने के कुरआनी प्रमाण

जैसा कि बताया गया इस विषय को सिद्ध करने का सर्वश्रेष्ठ मार्ग और सब से अधिक ठोस प्रमाण कुरआन मजीद है कि जिस की सत्यता व विश्वस्नीयता पिछले पाठों में सिद्ध हो चुकी है । और अगर कोई इस ईश्वरीय किताब पर एक सरसरी दृष्टि भी डाले तो उसे पता चल जाएगा कि उस का संदेश सर्वव्यापी है और किसी भी जाति अथवा समुदाय से विशेष नहीं है।

उदाहरण स्वरूप कुरआन की बहुत सी आयतों में ष्हे लोगो ! ऽ ऽ हे आदम की संतानो! ऽ जैसे वाक्यों को प्रयोग किया गया है तथा इसी प्रकार कुरआन ने अपने मार्ग दर्शन को ष्लोगों ऽ और ष्संसारोंऽ के लिए विशेष किया है और इसी प्रकार बहुत सी आयतें हैं जिन में पैगम्बरे इस्लाम के संदेश को ष्सब लोगोंऽ के लिए बताया गया है और उन के संदेश को मानना हर उस व्यक्ति के लिए आवश्यक कहा गया है जिस तक उन का संदेश पहुँचा हो । दूसरी ओर अन्य धर्मों के अनुयाईयों को ष्ईश्वरीय किताब पर विश्वास रखने वालेऽ के रूप में संबोधित किया गया है और उन के लिए भी पैगम्बरे इस्लाम की पैगम्बरी को

---

[1] पैगम्बरे इस्लाम के पत्रों को बहुत सी विश्वस्त ऐतिहासिक पुस्तकों में देखा जा सकता है । पैगम्बरे इस्लाम के पत्रों पर आधारित एक किताब भी उपलब्ध है।

स्वीकार करना आवश्यक बताया गया है बल्कि मूल रूप से कुरआन मजीद को पैगम्बरे इस्लाम द्वारा लाए जाने का मुख्य उद्देश्य अन्य सभी धर्मों की तुलना में इस्लाम की विजय व सफलता बताया गया है ।[1]

## इस्लाम की सर्वकालीनता

इस प्रकार की आयतों से जिस तरह से सिद्ध होता है कि कुरआन और पैगम्बरे इस्लाम का संदेश किसी जाति विशेष तक ही सीमित नहीं था बल्कि अरब , गैर अरब तथा अन्य सभी धर्मों के अनुयाईयों को भी अपनी ओर बुलाता था उसी प्रकार से इन आयतों से यह भी सिद्ध होता है कि कुरआन का संदेश किसी युग विशेष तक सीमित नहीं है विशेष कर कुरआन की इस आयत के बाद कि **ताकि उसे समस्त धर्मों पर विजय दिला दे।**[2]

किसी भी प्रकार की शंका बाकी नहीं रह जाती । इसी प्रकार सूरए फुस्सेलत की आयत 42 को प्रमाण के रूप में पेश किया जा सकता है जिस में कहा गया है: **और निश्चित रूप से वह सम्मानीय किताब है जिस में गलत बात न तो उस के सामने से न उस के पीछे से प्रविष्ट हो सकती है उसे तत्वदर्शी व सराहनीय ईश्वर द्वारा उतारा गया है।** इस आयत से यह सिद्ध होता है कि कुरआन की विश्वस्नीयता कभी भी समाप्त नहीं होगी और इस के साथ ही पैगम्बरे इस्लाम के अंतिम दूत होने के प्रमाण कि जिस के बारे में हम अगले पाठ में चर्चा करेगें यह सिद्ध करते हैं कि किसी अन्य पैगम्बर ने इस धर्म को हटा कर नया धर्म नहीं रखा है । इस के साथ ही इस प्रकार के बहुत से कथन भी ऐतिहासिक पुस्तकों में दर्ज हैं कि मोहम्मद द्वारा वैध चीजें क़यामत तक वैध रहेगीं और मोहम्मद द्वारा अवैध घोषित वस्तुएं क़यामत तक

---

[1] कुरआन में इस प्रकार की आयतों की संख्या बहुत अधिक है जिस का पता कुरआन पर एक नज़र डालने से लगाया जा सकता है।

[2] सूरए तौबा , 33 और कई अन्य आयतें ।

अवैध रहेगीं । इस के अतिरिक्त इस्लाम की सर्वकालीनता , उस के विश्व व्यापी होने की भॉति , इस धर्म के लिए आवश्यक है।

## कुछ शकांओं का निवारण

इस्लाम के प्रचार व प्रसार से भयभीत इस्लाम के शत्रुओं ने इस्लाम के मार्ग में बाधायें खड़ी करने में न कभी संकोच किया है और न ही करेगें बल्कि उन्हों ने तो कुछ शकांए प्रकट करके यह तक दर्शाने का प्रयास कर डाला कि इस्लाम धर्म केवल अरब जाति के लिए आया था और अन्य लोगों के प्रति उस की कोई जिम्मेदारी नहीं थी।

कुछ लोगों ने इस के लिए कुरआन की उन आयतों को पेश किया है जिन में कहा गया है कि पैगम्बरे इस्लाम को अपने परिजनों तथा मक्का और उस के आस पास के लोगों के मार्गदर्शन के लिए भेजा गया है [1] या फिर सूरए माएदा की आयत 69 को पेश करते हैं जिस में यहूदियों , ईसाईयों आदि की ओर संकेत के बाद कल्याण का मापदंड सुकर्मो को बताया गया है और कल्याण के लिए आवश्यक शर्त के रूप में इस्लाम स्वीकार करने की बात नहीं कही गयी है। इस के अतिरिक्त भी इस्लामी शिक्षाओं में ईश्वरीय धर्मो [2]के अनुयाई अनेकेश्वरवादियों की भॉति नहीं हैं बल्कि वह लोग इस्लामी सरकार में मुसलमानों द्वारा खुम्स व ज़कात के रूप में कर के स्थान पर हर्जाना देकर अपनी सुरक्षा व अधिकारों को निश्चित बना सकते हैं तथा अपने धर्म का पालन कर सकते हैं और इस से सिद्ध होता है कि इस्लाम ने इन धर्मो को औपचारिक रूप से स्वीकार किया है।

---

[1] सूरए शेअरा आयत 214 तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

[2] ईश्वरीय धर्म से आशय वह धर्म है जिस के अनुयाई किसी ईश्वरीय दूत को स्वीकार करते हैं तथा ईश्वरीय किताब में विश्वास रखते हैं जैसे यहूदी और ईसाई आदि ।

इस शकां के उत्तर में कहना चाहिए कि जिन आयतों में पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के परिजनों तथा मक्का वासियों का उल्लेख है उस में वास्तव में उन के संदेश के चरणों को दर्शाया गया है जो स्वयं उन के परिजनों से आरंभ हुआ फिर मक्का तथा उस के आस पास रहने वालों तक पहुँचा और फिर व्यापक होकर पूरे विश्व पर छा गया । इसी लिए इस प्रकार की आयतों को पैगम्बरे इस्लाम के संदेश को विश्व व्यापी बताने वाली आयतों की पूरक व परिधि बताने वाली आयतों के रूप में नहीं लिया जा सकता ।

किंतु जहॉ तक सूरए माएदा की उस आयत का उल्लेख किया गया है जिस के बारे में कल्याण व सफलता के लिए इस्लाम को शर्त न बताने की बात कही गयी तो यह आयत वास्तव में इस वास्तविकता का वर्णन करती है कि अनन्त सफलता व कल्याण के लिए किसी धर्म विशेष का अनुयाई होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि परलोक की सफलता के लिए उन कर्तव्यों का पालन भी आवश्यक है जो ईश्वर की ओर से वर्णित किए गये हैं और इस्लाम के सर्वव्यापी व सर्वकालिक होने के संदर्भ में जिन तर्कों का वर्णन किया गया है उन के अंतर्गत पैगम्बरे इस्लाम के संदेश के व्यापक होने के बाद सब लोगों के लिए इस धर्म का अनुसरण आवश्यक हो जाता है।

किंतु इस्लाम में जो ईश्वरीय धर्मों के अनुयाईयों को विशिष्टता प्रदान की गयी है उस का अर्थ यह नहीं है कि उन पर इस्लाम को स्वीकार करना अनिवार्य नहीं है बल्कि यह एक संसारिक सुविधा है जो कुछ विशेष हितों की रक्षा के लिए उन्हें प्रदान की गयी है और शीआ मत के अनुसार यह सुविधा भी अस्थाई है और इमाम ज़माना के प्रकट होने के बाद उन के बारे में निर्णय लिया जाएगा और उन के साथ भी अनेकेश्वरवादियों जैसा व्यवहार किया जाएगा और इस बात को कुरआन की आयत के इस भाग से कि **ताकि उसे समस्त धर्मों पर विजय प्रदान करे** से भी समझा जा सकता है।

## प्रश्न

1. कब समस्त विश्व वासियों के लिए इस्लाम धर्म स्वीकार करना आवश्यक होगा?

2. इस्लाम के सर्वव्यापी व सर्वकालिक होन के कुरआनी प्रमाणों का वर्णन करें ।

3. इस विषय को सिद्ध करने के अन्य प्रमाण क्या हैं ?

4. स्पष्ट करें कि जिन आयतों में पैगम्बरे इस्लाम को अपने परिजनों और मक्का तथा उस के आस पास के लोगों के मार्गदर्शन का आदेश दिया गया है उन का आशय पैगम्बरे इस्लाम के संदेश को उन्ही तक सीमित होने से नहीं लिया जा सकता ।

5. स्पष्ट करें कि सूरए माएदा की आयत 69 से किसी भी जाति व समूदाय के लिए इस्लाम को स्वीकार करने की छूट सिद्ध नहीं होती ।

6. स्पष्ट करें कि इस्लामी शासन में कुछ लोगों को अपने धर्म का पालन करने की अनुमति से यह अर्थ नहीं निकलता कि उन के लिए इस्लाम धर्म स्वीकार करना आवश्यक नहीं है।

पैंतीसवाँ पाठ

# अंतिम पैग़म्बर

- भूमिका
- अंतिम पैग़म्बर होने का कुरआनी प्रमाण
- ऐतिहासिक प्रमाण
- ईश्वरीय दूतों के क्रम को समाप्त करने का रहस्य
- एक शका का निवारण

## भूमिका

इस्लाम के सर्वकालिक होने के दृष्टिगत , किसी ऐसे ईश्वरीय दूत का आगमन जो इस्लामी धर्म का विकल्प लेकर आए असंभव है किंतु इस बात की शंका बाकी रह जाती है कि कोई ऐसा पैगम्बर आए जो इस्लाम का प्रचार व प्रसार करे जैसा कि पहले के बहुत से पैगम्बरों की यह ज़िम्मेदारी थी । इस्लामी इतिहास में ऐसे बहुत से पैगम्बर मिलते हैं जिन्हों ने हज़रत लूत की भॉति हज़रत इब्राहीम जैसे बड़े पैगम्बर के काल ही में उस के धर्म का प्रचार किया है या फिर किसी बड़े पैगम्बर के निधन के बाद उस के मार्ग और उस के लाए हुए धर्म को आगे बढ़ाया है जैसा कि इस्राईल जाति के अधिकांश पैगम्बरों के बारे में मिलता है। इस आधार पर पैगम्बरे इस्लाम हज़रत मोहम्मद सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के अंतिम ईश्वरीय दूत होने पर अलग से चर्चा की आवश्यकता है।

## कुरआनी प्रमाण

इस्लाम के मूल सिद्धान्तों में से एक यह है कि ईश्वरीय दूतों का कम पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की पैगम्बरी के साथ ही समाप्त हो गया और उन के बाद किसी ईश्वरीय दूत को नहीं भेजा गया । यहॉ तक कि गैर मुस्लिम जानकारों को भी ज्ञात है कि यह विषय इस्लाम के मूल सिद्धान्तों में से है इस लिए इस के लिए अलग से किसी प्रकार का तर्क लाने की

आवश्यकता नहीं है किंतु इस के साथ ही इस विषय को कुरआन की आयतों और ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध किया जा सकता है।

कुरआने मजीद में आया है : **मोहम्मद तुम मे से किसी के पिता नहीं हैं बल्कि ईश्वर के रसूल हैं और अंतिम नबी ।**[1] इस आयत में स्पष्ट रूप से पैगम्बरे इस्लाम हज़रत मोहम्मद सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को अंतिम ईश्वरीय दूत कहा गया है ।

किंतु इस्लाम के कुछ शत्रुओं ने पैगम्बरे इस्लाम हज़रत मोहम्मद सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के अंतिम दूत होने पर दो शंकाएं प्रकट की हैं :

प्रथम यह कि अंतिम के लिए अरबी भाषा का शब्द ष्ख़ातमष प्रयोग किया गया है जिस का अर्थ अंगूठी भी होता है तो शायद इस आयत में ष्ख़ातमष का अर्थ अंतिम न होकर अंगूठी हो।

दूसरा यह कि अगर यह मान लिया जाए कि ष्ख़ातमष का अर्थ अंतिम ही है तो भी यही सिद्ध होता है कि वह अंतिम नबी हैं न कि अंतिम रसूल ।

पहली शकां का उत्तर यह है कि ष्ख़ातमष्का अर्थ वह वस्तु है जिस के द्वारा किसी वस्तु व प्रकिया को खत्म किया जाए और अंगूठी को भी इस लिए ष्ख़ातमष कहा जाता है क्योंकि अतीत में पत्र आदि पर मुहर अंगूठी द्वारा लगाई जाती थी ।

दूसरी शकां का उत्तर यह है कि जो भी ईश्वरीय दूत रसूल होता है वह नबी भी होता है और नबियों का कम समाप्त होने के साथ ही रसूलों के आने का कम भी समाप्त हो जाता है जैसा कि हम ने पहले भी कहा है कि नबी जिन लोगों को कहा जाता है उन के दृष्टिगत नबी शब्द रसूल शब्द से अधिक व्यापक है।[2]

---

[1] सूरए अहज़ाब आयत 40

[2] इसी किताब का 29 वॉं पाठ

## ऐतिहासिक प्रमाण

पैगम्बरे इस्लाम हज़रत मोहम्मद सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के अंतिम दूत होने का विषय , बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं के दौरान स्पष्ट किया गया है जिन का विश्वस्त इस्लामी किताबों और इस्लामी इतिहास में वर्णन मौजूद है । इस तथ्य का शीआ और सुन्नी विद्वानों व इतिहासकारों ने इतनी निंरतरता के साथ वर्णन किया है कि उस के बाद इन्कार की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती । इसी प्रकार की एक इतिहासिक घटना यह है:

जब पैगम्बरे इस्लाम हज़रत मोहम्मद सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम तबूक नामक युद्ध के लिए मदीना से निकल रहे थे तो उन्हों ने हज़रत अली अलैहेस्सलाम को मदीने में ही रह कर कुछ कामों को पूरा करने का दायित्व सौंपा । हज़रत अली इस युद्ध में भाग न ले पाने के कारण दुखी हो उठे और उन की ऑखों से ऑसू निकलने लगे। पैगम्बरे इस्लाम हज़रत मोहम्मद सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने यह देख कर कहा: **क्या तुम इस से प्रसन्न नहीं हो कि तुम मेरे लिए उसी प्रकार हो जैसा हारून मूसा के लिए थे सिवाए इस अंतर के कि मेरे बाद कोई नबी नहीं होगा ।**

एक अन्य घटना के अंतर्गत पैगम्बरे इस्लाम हज़रत मोहम्मद सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने कहा है : **हे लोगो ! न तो मेरे बाद कोई नबी होगा और न ही तुम्हारे बाद कोई कोई समुदाय ।**[1]

इसी प्रकार एक अन्य घटना के अंतर्गत पैगम्बरे इस्लाम हज़रत मोहम्मद सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने कहा है कि **हे लोगो! मेरे बाद कोई नबी नहीं होगा और न ही मेरे बाद ; नबी की अनुकरीणीय द्ध जीवनी होगी।**

---

[1] वसाइलुश्शीआ , जिल्द 1 यहाँ पर "न कोई समूदाय" से आशय है यह है कि कोई ऐसा समूदाय नहीं होगा जो मेरे अलावा किसी अन्य नबी का सही अनुयाई हो ।

इसी प्रकार हज़रत अली अलैहिस्सलाम के कथनों के सकंलन नहजुल बलागा में भी कई स्थानों पर इस बात का उल्लेख हुआ है तथा इमामों की दुआओं और कथनों में भी इस विषय का वर्णन स्पष्ट रूप से किया गया है।

## ईश्वरीय दूतों के कम के समापन का रहस्य

हम पहले बता चुके हैं कि पैगम्बरों की अधिक संख्या और एक के बाद एक आने का कारण यह है कि एक ओर तो प्राचीन काल में ईश्वरीय संदेशों को विश्व के समस्त क्षेत्रों तक किसी एक व्यक्ति के लिए पहुँचाना संभव नहीं था तथा दूसरी ओर जटिल सामाजिक संबधों और नयी नयी सामाजिक परिस्थितियों के जन्म लेने के दृष्टिगत ,नये नियमों की रचना और पुराने क़ानूनों और शिक्षाओं में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस होती थी तथा इस के साथ ही अज्ञान लोगों के हस्तक्षेपों तथा स्वार्थी लोगों द्वारा किए गये परिवर्तनों और प्रचलित पथभ्रष्टताओं के निवारण के लिए ईश्वरीय शिक्षाओं व धर्मो में सुधार की आवश्यकता होती थी इसी लिए किसी अन्य पैगम्बर को भेजा जाता था ।

इस आधार पर जब ईश्वरीय संदेश को पूरे विश्व में एक पैगम्बर द्वारा और उस के उत्तराधिकारियों और अनुयाईयों की सहायता से पहुँचाना संभव हो और किसी एक धर्म के नियम व शिक्षायें मनुष्य की वर्तमान व आगामी आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम हों और नयी समस्याओं का निवारण भी उस धर्म में मौजूद हो तथा उस धर्म की शिक्षाओं को सुरक्षित रखने की उचित व्यवस्था व ज़मानत भी मौजूद हो तो फिर किसी अन्य ईश्वरीय दूत को भेजने की आवश्यकता नहीं रह जाती ।

किंतु मनुष्य का साधारण ज्ञान इन परिस्थितियों को पहचानने की क्षमता नहीं रखता और यह शक्ति केवल ईश्वर में है कि वह अपने अनन्त ज्ञान द्वारा , उन परिस्थितियों को समझे और ईश्वरीय दूतों के भेजने के कम के

समापन की घोषणा करे जैसा कि उस ने अपनी अंतिम किताब में यह काम किया ।

किंतु ईश्वरीय दूतों को भेजने के कम के समापन का अर्थ यह नही है कि ईश्वर और उस के दासों के मध्य मार्गदर्शन का संबंध ही समाप्त हो जाता है बल्कि जब भी ईश्वर को उचित लगे वह अपने विशेष ज्ञान से अपने योग्य दासों को लाभान्वित होने का अवसर प्रदान कर सकता है भले ही उस की शैली ईश्वरीय दूतों के पास संदेश भेजने की भॉंति न हो जैसा कि शीआ समूदाय इस प्रकार के ज्ञान को पैगम्बरे इस्लाम के परिजन , पवित्र इमामों के लिए मानते हैं। इस संदर्भ में हम इमामत के अध्याय में अधिक चर्चा करेगें ।

## एक शकां का निवारण

इस प्रकार से यह स्पष्ट हो गया कि ईश्वरीय दूतों के कम के समापन का रहस्य यह है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम अपने अनुयाइयों और सच्चे उत्तराधिकारियों की सहायता से अपना संदेश विश्व वासियों तक पहुँचाने में सक्षम थे और इस के साथ ही उन की ईश्वरीय किताब की सुरक्षा भी निश्चित की जा चुकी थी और उन का लाया हुआ धर्म संसार के अतं तक मनुष्य के मार्गदर्शन में सक्षम है ।

किंतु सभंव है कि किसी के मन में इस अंतिम बात के संदर्भ में यह शंका हो कि सामाजिक जटिलताओं और परिवर्तनों के कारण नये नियमों को बनाने अथवा पुराने नियमों में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस होती थी इस लिए नये पैगम्बर को भेजा जाता था तो फिर पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के बाद भी बहुत बड़े बड़े परिवर्तन आए और सामाजिक परिस्थितियॉं अत्याधिक जटिल हो गयीं तो फिर क्यों इस प्रकार के परिवर्तनों के दृष्टिगत नये पैगम्बर की आवश्यकता नहीं रह गयी ?

इस के उत्तर में कहना चाहिए कि जैसा कि संकेत किया गया है इस बात का निर्णय कि किस प्रकार के परिवर्तनों के बाद धर्म में परिवर्तन की आवश्यकता होती है , साधारण मनुष्य की क्षमता से बाहर है क्योंकि हमें सभी धार्मिक शिक्षाओं व नियमों के सही कारणों और हितों का पूर्ण रूप से ज्ञान नहीं है बल्कि हम इस्लाम की सर्वकालीनता और पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के अंतिम नबी होने के संदर्भ में पेश किए गये प्रमाणों व तर्कों से समझ लेगें कि अब इस्लाम के मूल नियमों में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं रह गयी है।

यद्यपि हम यह नहीं कहते कि अब ऐसे परिवर्तन नहीं आएगें जिन के लिए नये नियमों को बनाना आवश्यक हो क्योंकि स्वयं इस्लाम धर्म में इस प्रकार के परिवर्तनों का समाधान मौजूद है और योग्य लोग मूल इस्लामी सिद्धान्तों व शिक्षाओं के आधार पर आवश्यक नियम बना सकते हैं । इस चर्चा को इस्लाम के व्यवहारिक नियमों में इस्लामी सरकार के अधिकारों की बहस में विस्तार पूर्वक देखा जा सकता है।

## प्रश्न

1. इस्लाम की सर्वकालीनता सिद्ध होने के बाद ईश्वरीय दूतों के क्रम के समापन पर चर्चा की क्या आवश्यकता रह जाती है ?

2. पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के अंतिम नबी होने को कुरआन से किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है ?

3. इस तर्क से संबंधित शकांओं का निवारण कैसे हो ?

4. पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के अंतिम नबी होने के संदर्भ में तीन ऐतिहासिक कथनों का उल्लेख करें ।

5. पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के आने के बाद ईश्वरीय दूतों का क्रम क्यों समाप्त हो गया ?

6. क्या ईश्वरीय दूतों के क्रम के समापन का अर्थ ईश्वरीय ज्ञान से लाभान्वित होने के मार्ग को बंद किए जाने के अर्थ में है ?

7. पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के बाद सामाजिक परिवर्तनों के लिए नये धर्म की आवश्यकता नहीं है ? क्यों ?

8. नये परिवर्तनों के लिए आवश्यक नियमों को किस प्रकार से बनाया जा सकता है?

छत्तीसवाँ पाठ

# इमामत

- भूमिका
- इमामत का अर्थ

## भूमिका

पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने मदीना पलायन किया और नगर वासियों द्वारा पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम और उन के साथ पलायन करने वालों के व्यापक समर्थन के कारण मदीना वासियों को ष्अन्सारष अर्थात सहायक की उपाधि मिली और इस के बाद मदीने में एक इस्लामी समाज की नींव रखी गयी तथा उस का संचालन इस्लामी सिद्धान्तों के आधार पर आंरभ हुआ । इस नगर में बनने वाली मस्जिदुन्नबी, उपासना स्थल तथा ईश्वरीय प्रशिक्षण व शिक्षा का केन्द्र होने के साथ ही साथ मक्के तथा विभिन्न क्षेत्रों से पलायन करने वालों का शरणस्थल भी थी। वहाँ लोगों की आर्थिक दशा में सोच विचार तथा झगड़ों का फैसला भी किया जाता और युद्ध की स्थिति में रणनीति भी बनाई जाती । एक शब्द में उस काल में लोगों के लोक व परलोक के मामले पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम द्वारा इसी मस्जिद में हल किए जाते और समस्त मुसलमानों का कर्तव्य था कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के आदेशों का पालन करें क्योंकि ईश्वर ने धर्म के मामलों में पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के अनुसरण को अनिवार्य करने के साथ ही साथ राजनीतिक , न्यायिक तथा सैनिक मामलों में भी मार्गदर्शन की जिम्मेदारी पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम पर ही डाली थी और इस संदर्भ में भी समस्त मुसलमानों पर पैगम्बरे

इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के आदेशों का पालन अनिवार्य था ।

दूसरे शब्दों में पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ईश्वरीय दूत होने और लोगों के आध्यात्मिक मार्ग दर्शन के साथ साथ इस्लामी समाज के संचालन के भी जिम्मेदार थे । और जिस प्रकार इस्लाम धर्म में धर्म व शिष्टाचार संबधी नियम रखे गये थे उसी प्रकार राजनीतिक व आर्थिक क्षेत्रों में भी उस के अपने नियम थे और पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की ज़िम्मेदारी उन नियमों को व्यवहारिक रूप से लागू करना थी ।

स्पष्ट है कि जो धर्म संसार के अंत तक समस्त मानव समाज के नेतृत्व का दावा करता हो वह इस प्रकार के विषयों की उपेक्षा नहीं कर सकता और जो समाज धर्म के आधार पर बना हो वह इस प्रकार के राजनीतिक व प्रशासनिक नियमों के बिना नहीं रह सकता और इन्हीं नियमों को लागू करने की ज़िम्मेदारी का नाम ष्इमामतष् है।

किंतु बात यह है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के स्वर्गवास के बाद समाज के संचालन अर्थात इमामत की ज़िम्मेदारी किस की है ?

क्या जिस प्रकार से ईश्वर ने पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को यह ज़िम्मेदारी सौंपी थी उसी प्रकार उस ने उन के बाद कुछ दूसरे लोगों को यह ज़िम्मेदारी सौंपी है और यह ज़िम्मेदारी केवल ईश्वरीय पुष्टि व समर्थन द्वारा पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम से ही विशेष थी और उन के बाद लोगों की यह जिम्मेदारी है कि अपने इमाम व मार्गदर्शक का स्वयं चयन करें और उन्हें शासक बनाए ? और वास्तव में लोगों को यह अधिकार प्राप्त है या नहीं ?

और यह शीआ और सुन्नी समूदायों के मध्य मतभेद का केन्द्र बिन्दु है। अर्थात एक ओर शीओं का मानना है कि इमामत ईश्वरीय पद है जो ईश्वर द्वारा योग्य लोगों को प्रदान किया जाता है और ईश्वर ने यह काम पैगम्बरे

इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम द्वारा किया है और हज़रत अली अलैहिस्सलाम को अपना उत्तराधिकारी बनाया है और उन के बाद उन के वंश से उन के ग्यारह बेटों को एक – एक करके इस पद के लिए निर्धारित किया है किंतु दूसरी ओर सुन्नी समूदाय का मानना है कि ईश्वरीय मार्गदर्शन या इमामत का , ईश्वरीय दूतों के कम की ही भॉति पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के स्वर्गवास के बाद अंत हो गया और उस के बाद इमाम का निर्धारण लोगों की जिम्मेदारी है । बहुत से सुन्नी बुद्धिजीवियों ने तो स्पष्ट रूप से यह भी कहा है कि अगर कोई हथियार के बल पर सत्ता अपने हाथ में ले ले तो भी उस की आज्ञापालन लोगों के लिए अनिवार्य होगी ।[1] स्पष्ट सी बात है कि इस प्रकार की विचारधारा अत्याचारियों और कूर शासकों को काफी सीमा तक छूट देती है और इस से मुसलमानों में मतभेद व पतन की भूमिका भी प्रशस्त होती है।

वास्तव में सुन्नी समुदाय ने ईश्वरीय पुष्टि रहित इमामत को स्वीकार करके राजनीति व धर्म में अलगाव की भूमिका प्रशस्त की है और शीआ समूदाय के अनुसार यही विषय , इस्लाम और ईश्वर की सही उपासना को अपने मार्ग से हटाने का आरंभ है तथा यही विचार धारा पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के जीवन काल और उस के बाद के कालों में बहुत सी पथभ्रष्टताओं का कारण बनी है और बनती रहेगी।

इस आधार पर आवश्यक है कि एक मुसलमान इस विषय पर हर प्रकार के भेदभाव व मतभेद से दूर रह कर गंभीरता के साथ विचार करे और इस संदर्भ में अध्यन करे।[2] और सही धर्म को पहचान कर अपनी पूरी शक्ति के साथ उस का समर्थन करे ।

---

[1] अबू अली की अलअहकामुस्सुलतानिया

[2] अच्छी बात यह है कि बुद्धिजीवियों ने इस संदर्भ में हज़ारों किताबें विभिन्न भाषाओं में लिखी हैं जिस से सत्य के खोजियों के लिए अध्यन का मार्ग खुला हुआ है ।उदाहरण स्वरूप अबक़ातुल अनवार , अलगदीर आदि किताबों का नाम लिया जा सकता है।

यहाँ पर यह भी कहना आवश्यक है कि इस्लामी जगत के हितों पर भी ध्यान रहना चाहिए और हर उस बात से परहेज़ करना चाहिए जो विभिन्न मतों के अनुयाईयों के मध्य मतभेद का कारण बने किंतु इस के साथ ही मुसलमानों की एकता को बनाए रखने के प्रयास , असली धर्म तक पहुँचने और इस संदर्भ में खोज व जॉच के मार्ग की बाधा नहीं होने चाहिए विशेषकर इमामत जैसे महत्वपूर्ण विषय के बारे में जॉच व अध्यन का मार्ग सदैव खुला रहना चाहिए क्योंकि यह उन विषयों में से है जिन पर मुसलमानों की परलोक की सफलता व कल्याण निर्भर है ।

## इमामत का अर्थ

इमामत का अर्थ नेतृत्व है और जो भी किसी गुट अथवा समुदाय का नेतृत्व करता हो उसे इमाम कहा जाता है चाहे वह लोगों को सही मार्ग की ओर ले जाए या गलत मार्ग की ओर जैसा कि कुरआन में भी इमाम का शब्द सही और गलत दोनों मार्गों की ओर ले जाने वाले के लिए प्रयोग किया गया है इसी प्रकार जिस के पीछे खड़े होकर नमाज़ पढ़ी जाती है उसे इमामे जमाअत कहा जाता है।

किंतु शास्त्रार्थ की परिभाषा में इमामत का अर्थ है : इस्लामी समाज के समस्त लोक व परलोक के मामलों का जिम्मेदार और उस का नेतृत्व करने वाला ।

शीओं के अनुसार इस प्रकार का पद उस समय सही होगा जब इस की पुष्टि ईश्वर की ओर से की गयी हो और जिसे यह पद प्राप्त होगा वह इस्लामी शिक्षाओं के वर्णन और व्याख्या में ग़लती नहीं कर सकता और हर प्रकार के पाप से पवित्र होगा ।वास्तव में इमाम की वही जिम्मेदारी होती है जो पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की थी सिवाए इस के

वह ईश्वरीय दूत व पैगम्बर नहीं होता । इस प्रकार के इमाम के आदेशों का पालन भी अनिवार्य है।

इस तरह से इमामत के बारे में शीआ और सुन्नी समूदाय के मध्य मतभेद तीन विषयों में प्रकट होता है :

पहला यह कि इमाम को ईश्वर की ओर से निर्धारित किया जाना चाहिए ।

दूसरा यह कि उस के पास ईश्वरीय ज्ञान होना तथा उसे गलतियों से दूर होना चाहिए।

तीसरा यह कि उसे पापों से दूर होना चाहिए ।

यद्यपि पापों से पवित्र होने का अर्थ यह नहीं है कि वह व्यक्ति इमाम भी हो क्योंकि शीओं के अनुसार पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की सुपुत्री हज़रत फातेमा सलामुल्लाह अलैहा भी पापों से पवित्र थीं किंतु इमाम नहीं थी जैसा कि हज़रत मरयम सलामुल्लाह अलैहा भी पापों से पवित्र थीं और शायद ईश्वर के विशेष दासों में और भी कुछ लोग यह विशेषता रखते हों और हमें उन के बारे में जानकारी न हो क्योंकि यह भी स्पष्ट है कि किसी की पापों से पवित्रता का पता ईश्वर द्वारा बताए जाने के बाद ही संभव है।

## प्रश्न

1. पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम पर पैगम्बरी के अलावा और क्या जिम्मेदारियाँ थीं ?

2. शीआ और सुन्नी समूदाय के मध्य मतभेद का केन्द्र बिन्दु क्या है ?

3.ईश्वरीय पुष्टि रहित इमामत स्वीकार करने का क्या परिणाम हुआ ?

4. इमामत के अर्थों का वर्णन करें ।

5. इमामत के मूल विषयों का वर्णन करें।

सैंतीसवाँ पाठ

# इमाम की उपस्थिति की आवश्यकता

- भूमिका
- इमाम की उपस्थिति की आवश्यकता

## भूमिका

बहुत से ऐसे लोग जो धर्म से संबंधित मामलों के बारे में अधिक ज्ञान नहीं रखते , यह सोचते हैं कि इमामत के बारे में शीआ और सुन्नी समुदाय के मध्य मतभेद , केवल यही है कि शीओं का मानना है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने हज़रत अली अलैहिस्सलाम को समाज संचालन के लिए अपना उत्तराधिकारी बनाया है किंतु सुन्नी समुदाय का मानना है कि ऐसा नहीं हुआ है और लोगों ने अपनी इच्छा से एक व्यक्ति का उत्तराधिकारी के रूप में चयन किया जिस ने स्वंय अपने बाद अपने उत्तराधिकारी का चयन किया है और तीसरे चरण में यह जिम्मेदारी एक छे सदस्यीय समिति को सौंपी गयी और चौथे उत्तराधिकारी को एक बार फिर आम चुनाव द्वारा चुना गया । इस आधार पर मुसलमानों के समाज के नेतृत्व के लिए किसी को चुने जाने की कोई विशेष प्रकिया नहीं थी । इस आधार पर चौथे उत्तराधिकारी के बाद जिस के पास अधिक सैनिक शक्ति थी वह इस पद तक पहुँच गया जैसा कि गैर इस्लामी देशों में होता रहा है ।

दूसरे शब्दों में : यह सोचा जाता है कि शीआ समुदाय पहले इमाम के निर्धारण के बारे में उसी शैली में विश्वास रखते हैं जिस शैली से सुन्नी समुदाय की दृष्टि में प्रथम उत्तराधिकारी ने द्वीतीय उत्तराधिकारी का चयन किया था । अंतर केवल यही है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम

की इच्छा को लोगों ने स्वीकार नहीं किया किंतु पहले खलीफा की इच्छा को लोगों ने स्वीकार कर लिया !

किंतु इस प्रश्न की अनदेखी करते हुए कि पहले ख़लीफा के पास यह अधिकार कहाँ से आया था और पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने क्यों पहले ख़लीफा की भाँति इस्लामी समुदाय की चिंता नहीं की और इस्लामी समाज को यूँ ही छोड़ दिया हालाँकि मदीने से युद्ध के लिए निकलते समय उन्हों ने अपने उत्तराधिकारी का निर्धारण किया था इस के अतिरिक्त पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने स्वंय ही अपने अनुयाइयों के मध्य मतभेदों के उभरने की जानकारी भी दी थी। इस प्रकार के सभी प्रश्नों की अनदेखी करते हुए मूल रूप से इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि शीआ व सुन्नी के मध्य मूल मतभेद किसी भी अन्य विषय से पूर्व इस विषय में है कि क्या इमामत , एक धार्मिक पद है और ईश्वर की पुष्टि बाद प्राप्त होता है या एक सांसारिक साम्रज्य है जो सामाजिक कारकों के अंतर्गत प्राप्त होता है ? शीओं का मानना है कि स्वयं पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को भी पूर्ण स्वतंत्रता के साथ अपना उत्तराधिकार चुनने का अधिकार प्राप्त नहीं था बल्कि यह काम उन्हों ने ईश्वर के आदेश से किया है । और वास्तव में ईश्वरीय दूतों के क्रम के समापन और पापों से पवित्र इमामों के निर्धारण के मध्य संबधं है और पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के बाद इस प्रकार के इमामों की उपस्थिति के कारण ही इस्लामी समाज के हितों की रक्षा संभव हुई ।

इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि क्यों शीओं के मतानुसार इमामत एक मूल विश्वास व सिद्धान्त के रूप में पेश की जाती है न कि एक व्यवहारिक आदेश के रूप में और क्यों शीआ समुदाय, इमामों के लिए ईश्वरीय ज्ञान , पापों से पवित्रता की ईश्वरीय ज़मानत और ईश्वरीय पुष्टि को आवश्यक मानता है।

## इमाम की उपस्थिति क्यों आवश्यक है ?

बाइसवें पाठ में स्पष्ट हो चुका है कि मानव रचना के उद्देश्य की पूर्ति के लिए ईश्वरीय संदेशों द्वारा मनुष्य का मार्गदर्शन आवश्यक है और ईश्वर ने अपनी कृपा के कारण यह आवश्यक समझा कि अपने पैग़म्बर भेज कर मनुष्य को लोक – परलोक के कल्याण के मार्गो से परिचित कराए और उन्हें यथासंभव सीमा तक परिपूर्णता के अंतिम चरण तक पहुँचाए और मानव समाज की इस आवश्यकता को पूरा करे और इसी प्रकार अगर सामाजिक परिस्थितियाँ अनुकूल रहें तो ईश्वर द्वारा निर्धारित लोग समाज संचालन और ईश्वरीय नियमों को व्यवहारिक बनाने की जिम्मेदारी भी संभालें ।

इसी प्रकार चौन्तीसवें और पैंतीसवें पाठ में हम ने यह स्पष्ट किया कि इस्लाम धर्म, सर्वव्यापी और विकल्पविहीन है और पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के बाद कोई अन्य पैगम्बर नहीं भेजा जाएगा । और ईश्वरीय दूतों के कम का समापन उसी समय तार्किक होगा जब अंतिम ईश्वरीय धर्म , समस्त मानव आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता रखता हो और संसार के अंत तक उस की सुरक्षा भी निश्चित हो ।

इस सुरक्षा की ज़मानत कुरआन के बारे में तो मौजूद है और ईश्वर ने इस पवित्र किताब को हर प्रकार के फेर – बदल से सुरक्षित बताया है । किंतु इस्लाम के सभी आदेशों व नियमों का वर्णन कुरआन की आयतों में स्पष्ट रूप से नहीं किया गया है । उदाहरण स्वरूप नमाज़ तथा बहुत से धार्मिक संस्कारों की विधि विस्तार पूर्वक कुरआन में वर्णित नहीं है और मूल रूप से कुरआन में किसी भी संस्कार व अनिवार्य कर्तव्य का पूरा ब्योरा नहीं दिया गया है बल्कि यह काम पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की

जिम्मेदारी है ताकि वे अपने ईश्वरीय ज्ञान द्वारा समस्त नियमों को विस्तार पूर्वक स्पष्ट करें ।[1] और इस प्रकार से , पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम का व्यवहार और उन के कथन इस्लामी शिक्षाओं के एक स्रोत के रूप में सिद्ध होते हैं।

किंतु पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के जीवन में सामने आने वाली विभिन्न कठिनाइयों और समस्याओं , जैसे शेबे अबूतालिब नामक स्थान में कई वर्षों तक परिवेष्टन में रहने, सामाजिक बहिष्कार का शिकार होने तथा दस वर्षों तक युद्धों में व्यस्त रहने के कारण उन्हें समस्त लोगों के लिए विभिन्न नियमों को विस्तार पूर्वक बताने का अवसर नहीं मिला और जो कुछ उन के साथ रहने वाले उन के अनुयाई याद कर लेते उस की सुरक्षा भी निश्चित नहीं थी यहाँ तक कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के वुजू करने की शैली के बारे में भी कि जिसे वर्षों तक पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के अनुयाईयों ने अपनी आँखों से देखा था , मतभेद उत्पन्न हो गया । इस प्रकार पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम का ऐसा काम जो वे हर दिन लोगों की आँखों के सामने करते थे और जिस में फेर – बदल अथवा उस के बारे में किसी के झूठ बोलने का कोई कारण भी नहीं था , मतभेद का शिकार हो गया तो फिर इस्लाम के जटिल व महत्वपूर्ण नियमों के बारे में इस प्रकार की गलती व फेर – बदल की संभावना कहीं अधिक हो जाती है। विशेषकर उन विषयों के बारे में जो कुछ लोगों के हितों से टकराते भी हों ।[2]

---

[1] सूरए बकरह – आयत 151 , आले इमरान – आयत 163 , जुमअह – आयत 2 , नेह्ल – 66 , 64 , अहज़ाब – 21 , हश्र – 7

[2] अल्लामा अमीनी ने अपनी किताब अलग़दीर में ऐसे साथ सौ लोगों के नाम लिखे हैं जो पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के हवाले से गलत बातें बताते थे और इन में से कुछ लोगों ने तो एक लाख से अधिक कथन पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के हवाले से बताए हैं ।

इन बातों के दृष्टिगत , यह तो स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम उसी समय एक सर्वव्यापी धर्म के रूप में मानव जीवन के कल्याण को सुनिश्चित कर सकता है कि जब स्वयं धर्म में , समाज के आवश्यक व महत्वपूर्ण हितों की रक्षा की व्यवस्था की गयी हो अर्थात उन हितों की रक्षा का कोई प्रबंध हो जो पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के स्वर्ग वास के बाद खतरे में पड़ गये थे और इस का केवल एक ही मार्ग है और वह,एक योग्य उत्तराधिकारी के निर्धारण के अलावा कुछ नहीं हो सकता । ऐसा उत्तराधिकारी जिस के पास ईश्वरीय ज्ञान हो ताकि वह धर्म की वास्तविकता को उस के समस्त आयामों के साथ स्पष्ट कर सके और इसी प्रकार उस का पापों व गलतियों से पवित्र होना भी आवश्यक है ताकि उस पर शैतानी बहकावे और माया मोह का प्रभाव न पड़ने पाए तथा वह धर्म में अपनी इच्छा के अनुसार फेर – बदल न करे। इस के साथ ही उस के लिए यह भी आवश्यक है कि वह पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की भाँति एक प्रशिक्षक की भूमिका अपनाए और योग्यता रखने वालों को परिपूर्णता की चरम सीमा तक पहुँचाए तथा जब भी सामाजिक परिस्थितियाँ अनुकूल हों सत्ता को अपने हाथ में लेकर ईश्वरीय शिक्षाओं के पालन को व्यवहारिक बनाए और विश्व में सत्य व न्याय की स्थापना करे।

निष्कर्ष यह निकला कि ईश्वरीय दूतों के कम का समापन उस समय ईश्वरीय कृपा के अनुकूल होगा जब उस के बाद पवित्र मार्गदर्शकों की तैनाती भी हो जो पैगम्बरी के अतिरिक्त पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की सभी विशेषताओं के स्वामी हों।

इस प्रकार से इमाम की आवश्यकता भी सिद्ध होती है तथा उस के लिए ईश्वरीय ज्ञान व पवित्रता की आवश्यकता भी प्रमाणित होती है और यह भी सिद्ध होता है कि उस का निर्धारण ईश्वर द्वारा होना चाहिए क्योंकि केवल ईश्वर को ही इस बात का पूर्ण ज्ञान होता है कि इस प्रकार का ज्ञान और इस प्रकार की विशेषता किस के पास है और वही है जो समस्त मनुष्यों का

वास्तविक स्वामी है तथा उसे ही अपने इस अधिकार को कुछ सीमाओं के साथ किसी अन्य को प्रदान करने का अधिकार प्राप्त है।

यहाँ पर इस बात का उल्लेख भी आवश्यक है कि सुन्नी समुदाय किसी भी खलीफा के लिए इन में से किसी भी विशेषता को आवश्यक नहीं मानता। वे न तो यह मानते हैं कि उन में से किसी को ईश्वर अथवा पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम द्वारा निर्धारित किया गया था और न ही यह उन के लिए ईश्वरीय ज्ञान व पवित्रता को ही मानते हैं बल्कि कुछ स्थानों पर तो सुन्नी धर्मगुरूओं ने अपनी किताबों में ख़लीफा अर्थात पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के उत्तराधिकारियों की गलतियों व भूलों तथा लोगों के प्रश्नों के उत्तर में उन की असमर्थता का भी वर्णन किया है। उदाहरण स्वरूप पहले ख़लीफा के हवाले से सुन्नी समुदाय की विश्वस्त किताबों में लिखा है कि उन्हों ने कहा है कि मेरे लिए एक शैतान है जो मुझे बहका देता है। इसी प्रकार दूसरे खलीफा के हवाले से आया है कि उन्हों ने पहले खलीफा के चयन को उतावले पन में उठाया गया क़दम बताया है।[1] तथा उन्हों ने बार बार कहा है कि अगर अली न होते तो उमर मारा जाता।[2] और तीसरे खलीफा तथा बनी अब्बास व बनी उमैया के शासकों की गलतियाँ इतनी अधिक स्पष्ट हैं कि उन की ओर संकेत की भी आवश्यकता नहीं है और जो इस्लामी इतिहास का थोड़ा सा भी ज्ञान रखता होगा उसे इस का पता होगा।

केवल शीआ ही हैं जो बारह इमामों के लिए तीनों विशेषताओं को आवश्यक मानतें हैं और इस विषय के दृष्टिगत इमामत के बारे में शीओं के विश्वास का सही होना सिद्ध होता है जिस के बाद विस्तार से इस संदर्भ में तर्क

[1] नहजुल बलागा की व्याख्या, जिल्द 1 पृष्ठ 142

[2] अलगदीर जिल्द 6 पृष्ठ 93 से आगे ।

लाने की आवश्यकता नहीं रह जाती किंतु इस के बावजूद अगले पाठों में हम इस संदर्भ में कुछ तर्कों व प्रमाणों का वर्णन करेंगें ।

## प्रश्न

1. इमामत के बारे में शीआ दृष्टिकोण तथा सुन्नी विचार धारा में अंतर का वर्णन करें ।

2. क्यों शीआ इमामत के विषय को मूल सिद्धान्त के रूप में विश्वस्त मानते हैं ?

3. इमाम की आवश्यकता का वर्णन करें ।

4. इस चर्चा का क्या परिणाम निकलता है?

अड़तीसवां पाठ

# इमाम का निर्धारण

## इमाम का निर्धारण

पिछले पाठों में यह स्पष्ट किया गया कि ईश्वरीय दूतों के क्रम का समापन , बिना पवित्र इमाम के निर्धारण के , ईश्वरीय कृपा व मनुष्य की रचना के उद्देश्यों के विपरीत होगा और इस्लाम की सर्वकालीनता व सर्वव्यापकता इस बात पर निर्भर है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के बाद उन के योग्य उत्तराधिकारियों का निर्धारण हो और उन के पास पैगम्बरी के अतिरिक्त समस्त गुण हों ।

इस विषय को कुरआन की विभिन्न आयतों और शीआ व सुन्नी समूदायों की किताबों में वर्णित बहुत से कथनों से भलीभॉति समझा जा सकता है ।

उदाहरण स्वरूप कुरआन मजीद के सूरए माएदा की तीसरी आयत में आया हैः **आज मैं ने तुम्हारे लिए तुम्हारे धर्म को परिपूर्ण कर दिया और तुम पर अपनी नेमतों को पूरा कर दिया और धर्म के रूप में इस्लाम को स्वीकार कर लिया ।**

यह आयत ऐतिहासिक प्रमाणों और कुरआन की व्याख्या करने वाले की पुष्टि के आधार पर पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के स्वर्ग वास के कुछ महीने पहले उतरी है और इस्लाम को नुकसान पहुँचाने की ओर से अनेकेश्वरवादियों की निराशा की ओर संकेत के बाद इस आयत में कहा जाता है : **आज मैं ने तुम्हारे लिए तुम्हारे धर्म को परिपूर्ण कर दिया और तुम पर अपनी नेमतों को पूरा कर दिया...** । इस आयत के उतरने के

समय के बारे में विश्वस्त ऐतिहासिक प्रमाणों के दृष्टिगत पूर्ण रूप से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नेमतों को पूरा करने और धर्म को परिपूर्ण करने की प्रक्रिया ने ही अनेश्केश्वरवादियों को निराश किया था और उन की निराशा का कारण पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम द्वारा अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया जाना था। क्योंकि उन्हें आशा थी कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के स्वर्गवास के बाद विशेषकर इस लिए कि भी उन का कोई पुत्र नहीं था , इस्लाम बिना अभिभावक के रह जाएगा और धीरे धीरे उस का पतन हो जाएगा किंतु पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम द्वारा अपने उत्तराधिकारी की औपचारिक घोषणा ने उन की आशा को निराशा में बदल दिया ।[1]

इस घटना का ब्योरा इतिहास में इस प्रकार आया है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने अपने अंतिम हज से वापसी के समय ग़दीरे खुम नामक स्थान पर सारे हाजियों को इकटठा किया और फिर एक लंबे भाषण के बाद उन से पूछा : **क्या मैं तुम लोगों पर स्वंय तुम से अधिक अधिकार नहीं रखता ?** सब लोगों ने एक आवाज़ में उत्तर दिया कि क्यों नहीं । इस के बाद पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने हज़रत अली अलैहिस्सलाम के कांधो को पकड़ कर उन्हें लोगों के सामने अपने हाथों पर उठाया और कहा : **मैं जिस का स्वामी हूँ उस के यह अली भी स्वामी हैं** । और इस प्रकार हज़रत अली अलैहिस्सलाम के उत्तराधिकार की औपचारिक घोषणा कर दी । इस के बाद सारे हाजी हज़रत अली अलैहिस्सलाम के पास आए और उन की आज्ञापालन की प्रतिज्ञा की तथा बधाई दी यहॉ तक के दूसरे खलीफा ने भी हज़रत अली अलैहिस्सलाम से कहा

[1] इस संदर्भ में अधिक विस्तार से जानकारी के लिए कुरआने मजीद की व्याख्या की किताब अलमीज़ान पढ़ें ।

: बधाई हो बधाई हो अली तुम मेरे और सभी मोमिन पुरुषों व महिलाओं के स्वामी हो गये।[1]

इसी दिन यह आयत उतरी कि **आज मैं ने तुम्हारे लिए तुम्हारे धर्म को परिपूर्ण कर दिया और तुम पर अपनी नेमतों को पूरा कर दिया और धर्म के रूप में इस्लाम को स्वीकार कर लिया ।** जिस के बाद पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने अल्लाहो अकबर कहते हुए फरमाया : **मेरी पैगम्बरी और ईश्वर के धर्म की परिपूर्णता , मेरे बाद अली के स्वामित्व को स्वीकार करना है।**

कुछ इतिहासिक कथनों में जिन्हें बहुत से सुन्नी इतिहासकारों ने भी लिखा है , कहा गया है कि अबू बक्र और उमर अपनी जगह से उठे और पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम से पूछा कि क्या यह स्वामित्व अली से ही विशेष है ? तो पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने कहा : अली और मेरे उत्तराधिकारियों से क़यामत तक के लिए विशेष है। उन लोगों ने पूछा :आप के उत्तराधिकारी कौन लोग हैं ? तो पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने फरमाया : **मेरा भाई , मेरा वज़ीर,मेरा वारिस और मेरे अनुयाईयों के लिए मेरा उत्तराधिकारी अली, मेरे बाद हर मोमिन पुरुष व महिला के अभिभावक होंगा फिर मेरा बेटा हसन, फिर मेरा बेटा हुसैन, फिर मेरे बेटे हुसैन के वंश से नौ बेटे एक के बाद एक, कुरआन उन के साथ है और वे कुरआन के साथ, न कुरआन उन से अलग होगा और न वे कुरआन से यहाँ तक के क़यामत के दिन मेरे पास हौज़े कौसर पर साथ आएगें ।**[2]

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को पहले ही हज़रत अली

---

[1] अधिक जानकारी के लिए अबक़ात और अलगदीर किताब देखें ।

[2] गायतुल मराम , अध्याय 58 , हदीस 4 , फराएद हमवीनी के हवाले से ।

अलैहिस्सलाम की इमामत की औपचारिक घोषणा का आदेश दिया जा चुका था किंतु आप को इस बात की चिंता थी कि कहीं लोग इसे उन की व्यक्तिगत राय न समझ लें और उसे स्वीकार ही न करें। इसी लिए उचित अवसर पर यह आयत उतरी : **हे रसूल! पहुँचा दो जो तुम पर तुम्हारे पालनहार की ओर से उतारा गया है और अगर तुम ने ऐसा नहीं किया तो मानो तुम ने अपने पैगम्बरी के धर्म का पालन ही नहीं किया और ईश्वर तुम्हें लोगों से सुरक्षित रखेगा ।** [1] और इस ईश्वरीय संदेश को लोगों तक पहुँचाने पर बल देने के साथ ही साथ कि जो समस्त ईश्वरीय संदेशों के बराबर है और जिसे न पहुँचाने का अर्थ किसी भी दायित्व का पालन न करना है , पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को यह शुभसूचना भी दी गयी कि ईश्वर तुम्हें इस के बाद सामने आने वाले हर खतरे से सुरक्षित रखेगा । इस आयत के उतरते ही पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने समझ लिया कि अब उचित अवसर आ गया है और इस से अधिक विलंब ठीक नहीं है । यही सोच कर पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने गदीरे खुम में अपना यह कर्तव्य भी पूरा कर दिया । [2]

किंतु इस दिन जो कुछ भी हुआ है वह वास्तव में हज़रत अली के उत्तराधिकार की औपचारिक घोषणा तथा उन के सामने लोगों से आज्ञापालन की प्रतिज्ञा लेने के लिए था क्योंकि इस से पूर्व पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम बारम्बार विभिन्न अवसरों पर हज़रत अली अलैहिस्सलाम के उत्तराधिकार की बात कह चुके थे। पैग़म्बरी की घोषणा के आंरभिक वर्षो में ही जब पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को अपने निकटवर्ती परिजनों तक ईश्वरीय संदेश पहुँचाने की

---

[1] सूरए माएदा आयत 67 । अधिक जानकारी के लिए अलमीज़ान को देखें ।

[2] इस घटना का वर्णन बड़े बड़े सुन्नी इतिहासकारों ने भी पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के सात साथियों के हवाले से किया है । ज़ैद बिन अरक़म , अबू सईद खदरी , इब्ने अब्बास , जाबिर बिन अब्दुल्लाह अन्सारी , बराअ बिन आज़िब , अबू हुरैरह और इब्ने मसउद । अलगदीर देखें ।

ज़िम्मेदारी सौंपी गयी तो आप ने अपने सभी रिश्तेदारों से कहा सब से पहले जो मेरे संदेश को स्वीकार करेगा वह मेरा उत्तराधिकारी होगा । इस संदर्भ में शीआ व सुन्नी दोनों मतों के इतिहासकारों का मानना है कि केवल हज़रत अली ने सकारात्मक उत्तर दिया था ।

इसी प्रकार जब यह आयत कि **हे ईमान वालो ! ईश्वर की आज्ञापालन करो उस के रसूल की आज्ञापालन करो और उन की आज्ञापालन करो जिन के पास आदेश का अधिकार है** [1] तो जाबिर बिन अब्दुल्लाह अंसारी ने आदेश के अधिकार वालों के बारे में पूछा और पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने कहा : **वह लोग मेरे बाद मेरे उत्तराधिकारी और इमाम हैं , हे जाबिर उन में से पहले अली इब्ने अबी तालिब हैं फिर हसन फिर हुसैन फिर अली इब्ने हुसैन फिर मोहम्मद इब्ने अली जिन्हें तौरैत में बाक़िर कहा गया है तुम उन से मिलोगे। हे जाबिर! तो जब उन से मिलना तो मेरा सलाम कहना। फिर सादिक जाफर इब्ने मोहम्मद फिर मूसा इब्ने जाफर फिर अली इब्ने मूसा फिर मुहम्मद इब्ने अली फिर अली इब्ने मोहम्मद फिर हसन इब्ने अली फिर मेरे नाम व उपाधि वाले हसन के सुपुत्र होगें** । और पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की भविष्यवाणी के अनुसार जाबिर, इमाम मोहम्मद बाक़िर अलैहिस्सलाम के काल तक जीवित रहे और पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम का सलाम उन तक पहुँचाया ।

एक अन्य हदीस [2] के अनुसार अबू बसीर ने कहा है कि इमाम जाफरे सादिक अलैहिस्सलाम से आदेश का अधिकार रखने वाले उन लोगों के बारे पूछा गया जिन का वर्णन कुरआन में है तो उन्हों ने कहा : यह आयत अली इब्ने

---

[1] सूरए निसाअ – 59

[2] हदीस अर्थात पैगम्बरे इस्लाम अथवा किसी इमाम का कथन ।

अबीतालिब और हसन व हुसैन के लिए उतरी है। मैंने कहाः लोग कहते हैं कि कुरआन ने क्यों अली और उन के परिजनों का नाम नहीं लिया , तो आप ने कहा : उन से कह दो कि जब नमाज़ के बारे में आयत आई तो तीन और चार रकअत पढ़ने की बात कहीं नहीं की गयी बल्कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने लोगों के सामने स्पष्ट किया इसी प्रकार ज़कात व हज आदि की आयतें भी हैं । इन सब आयतों की व्याख्या पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने ही की है और उन्हों ने कहा है :

**मैं जिस का स्वामी हूँ उस के अली स्वामी हैं और यह भी कहा है मैं तुम से ईश्वर की किताब और अपने परिजनों पर ध्यान रखने की सिफारिश करता हूँ , मैं ने ईश्वर से दुआ माँगी है कि यह दोनों एक दूसरे से अलग न हों यहाँ तक कि क़यामत के दिन साथ साथ मेरे पास आएं तो ईश्वर ने मेरी यह दुआ स्वीकार कर ली है।** इसके अतिरिक्त पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने कहा है : **उन्हें सिखाना नहीं क्योंकि वे तुम से अधिक जानकार हैं । वे तुम्हें कभी भी मार्गदर्शन के द्वार से बाहर नहीं निकालेगें और न ही तुम्हें पथभ्रष्टता के द्वार में प्रविष्ट करेगें ।**

इसी प्रकार पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने बारम्बार अपने जीवन के अंतिम दिनों में कहा है : **मैं तुम लोगों के मध्य दो भारी वस्तुएं छोड़ जा रहा हूँ ईश्वर की किताब और अपने घर वालों को , यह दोनों एक दूसरे से अलग नहीं होंगे यहाँ तक कि हौज़े कौसर पर मेरे पास आएगें।** तथा यह भी कहा है : **सचेत रहो तुम लोगों के मध्य मेरे घर वाले , नूह की नौका की भाँति हैं कि जो उस में बैठ गया वह बच गया और जिस ने इन्कार किया वह डूब गया ।** और इसी प्रकार हज़रत अली अलैहिस्सलाम से पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने कहा : **तुम मेरे बाद प्रत्येक मोमिन महिला व पुरुष के अभिभावक हो।** इसी प्रकार के दसियों तथ्य जिन्हें इतिहास तथा संबंधित

पुस्तकों में देखा जा सकता है मौजूद हैं किंतु यहाँ पर अधिक विस्तार से वर्णन संभव नहीं है।

## प्रश्न

1. कुरआन की कौन सी आयत इमाम के निर्धारण से संबधं रखती है, विस्तार से चर्चा करें ।

2. हज़रत अली के उत्तराधिकार तथा इमाम बनाए जाने की घटना का विस्तार से वर्णन करें।

3. पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने क्यों हज़रत अली के उत्तराधिकार की घोषणा में विलंब किया ? और फिर किस प्रकार यह काम किया?

4. कौन सा ऐतिहासिक कथन अन्य इमामों की इमामत को सिद्ध करता है ?

5. पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के परिजनों की इमामत को सिद्ध करने वाली अन्य कुछ हदीसों का वर्णन करें।

उन्तालिसवाँ पाठ

# इमाम की पवित्रता और ज्ञान

- भूमिका
- इमाम की पवित्रता
- इमाम का ज्ञान

## भूमिका

छत्तीसवें पाठ में कहा गया कि इमामत के बारे में शीआ व सुन्नी समूदाय के मध्य मतभेद तीन विषयों में है : एक यह कि इमाम को ईश्वर की ओर से निर्धारित किया जाना चाहिए । दूसरे यह कि उस का पापों से पवित्र होना आवश्यक है , और तीसरे यह कि उस के पास ईश्वरीय ज्ञान होना चाहिए। इसी प्रकार सैंतीसवें पाठ में हम ने तीनों विषयों को एक बौद्धिक तर्क से प्रमाणित किया और अड़तीसवें पाठ में इमामों को ईश्वर द्वारा निर्धारित किए जाने के कुछ ऐतिहासिक प्रमाणों का उल्लेख किया और अब इस पाठ में हम ईश्वर द्वारा उन्हें प्रदान की गयी पवित्रता पर चर्चा कर रहे हैं ।

इस बात के सिद्ध हो जाने के बाद कि , इमामत एक ईश्वरीय पद है कि जिसे उस ने हज़रत अली अलैहिस्सलाम और उन के बेटों को प्रदान किया है ,उन की पवित्रता को इस आयत से सिद्ध किया जा सकता है : **मेरा पद अत्याचारियों तक नहीं पहुँचेगा।**[1] इस आयत से पता चलता है कि ईश्वरीय पद उन लोगों को नहीं दिया जा सकता जो पापों से दूषित हों।

इस के अलावा भी ईश्वर , पैगम्बरे इस्लाम और आदेश का अधिकार रखने वालों के अनुसरण का कुरआन में आदेश दिया गया है [2] । इस आयत से सिद्ध होता है कि इन लोगों के अनुसरण और ईश्वर के अनुसरण के मध्य किसी

---

[1] सूरए बक़रह – आयत 124

[2] सूरए निसाअ – आयत 59

प्रकार का कोई विरोधाभास नहीं है और उन की आज्ञापालन का ईश्वर द्वारा आदेश दिया जाना यह सिद्ध करता है कि वे पापों से पवित्र हैं ।

इसी प्रकार पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के परिजनों की पवित्रता को इस आयत से भी सिद्ध किया जा सकता है : **निश्चित रूप से ईश्वर ने इरादा किया है तुम लोगों से हे पैगम्बर के परिजनो ! गंदगी को दूर रखे और तुम को इस प्रकार से पवित्र करे जैसा पवित्र करना चाहिए ।**[1] इस स्पष्टीकरण के साथ कि ईश्वर का इरादा ,साधारण इरादा नहीं होता जैसा कि कुरआन में ईश्वर ने कहा है : **और उस का काम तो ऐसा है कि जब वह किसी वस्तु का इरादा कर लेता है तो बस उस से कह दे कि हो जा तो वह हो जाती है।**[2] और हर प्रकार की बुराई व गंदगी से दूरी तथा उन्हें पवित्र रखना ही पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के परिजनों की पापों से पवित्रता का प्रमाण है। और हम जानते हैं कि मुसलमानों का कोई भी समुदाय पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के किसी भी संबधीं को पापों से दूर नहीं मानता सिवाए शीआ समूदाय के कि जो हज़रत फातेमा ज़हरा और बारह इमामों की पवित्रता में विश्वास रखता है।[3]

यहाँ पर इस बात का उल्लेख भी आवश्यक है कि सत्तर से अधिक ऐतिहासिक कथन मौजूद हैं कि जिन से यह सिद्ध होता है कि यह आयत पाँच लोगों[4] के लिए उतरी है और इन में से अधिकांश कथन व हवाले सुन्नी समुदाय की किताबों में हैं।[5] और शेख़ सदूक़ ने इमाम अली अलैहिस्सलाम के हवाले से लिखा है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम

---

[1] सूरए अहज़ाब आयत 33 ।

[2] सूरए यासीन – आयत 82

[3] इस संदर्भ में अधिक जानकारी के लिए तफसीरे अलमीज़ान आदि किताबों को देखा जा सकता है।

[4] इमाम अली , हज़रत फातेमा , इमाम हसन , इमाम हुसैन अलैहिमुस्सलाम ।

[5] ग़ायतुल मराम , पृष्ठ 287 – 293 ।

ने कहा है : **हे अली ! यह आयत तुम्हारे , हसन , हुसैन और तुम्हारे वंश के इमामों के लिए उतरी है।**

मैं ने पूछा : **आप के बाद इमाम कितने होगें ?** उन्हों ने कहा : **तुम हे अली फिर हसन फिर हुसैन फिर उन के बाद उन के बेटे अली , उन के बाद उन के बेटे मोहम्मद फिर उन के बेटे जाफर फिर उन के बेटे मूसा फिर उन के बेटे अली और फिर उन के बेटे हसन फिर उन के बेटे ईश्वरीय तर्क होगें !**

इस के बाद आप ने आगे कहा : **इन नामों को आकाशों पर लिखा हुआ देखा है और मैं ने ईश्वर से पूछा कि यह किस के नाम हैं ? उत्तर मिला : हे मोहम्मद , यह तुम्हारे बाद के इमाम हैं जिन्हें पापों से दूर रखा गया है और पवित्र बनाया गया है और इन के शत्रुओं पर मेरी लानत होगी ।**[1]

इसी प्रकार सक़लैन नामी हदीस में भी पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने अपने परिजनों अर्थात अहले बैत को कुरआन के समान बताया है और बल दिया है कि यह दोनों कभी एक दूसरे से अलग नहीं होगें जो वास्तव में अहले बैत की पवित्रता का स्पष्ट प्रमाण है क्योंकि अगर उन से किसी साधारण सी गलती व छोटे से पाप की भी संभावना होगी यहॉ तक कि भूल से भी तो भी व्यवहारिक रूप से वे कुरआन से अलग हो जाएगें ।

## इमाम का ज्ञान

निश्चित रूप से पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के परिजन, जिन्हें अहले बैत कहा जाता है , अन्य सभी लोगों से अधिक पैगम्बरे इसलाम के ज्ञान से लाभान्वित हुए हैं जैसा कि पैगम्बरे इस्लाम ने उन लोगों के बारे में कहा है : **उन्हें सिखाना नहीं क्योंकि वे तुम लोगों से**

---

[1] गायतुल मराम

**अधिक ज्ञान रखने वाले हैं।** विशेष कर हज़रत अली अलैहिस्सलाम, जिन्हों ने अपना बचपन पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की गोद में बिताया है और अंतिम क्षणों तक पैगम्बरे इस्लाम के साथ रहे। यही कारण है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने कहा है : **मैं ज्ञान का नगर हूँ और अली उस का द्वार हैं।** [1] और स्वयं हज़रत अली अलैहिस्सलाम के हवाले से इतिहास में मिलता है कि उन्हों ने कहा है : **निसंदेह पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने मुझे हज़ार अध्यायों का ज्ञान दिया, और हर अध्याय से हज़ार अध्याय निकलते थे तो इस प्रकार से एक लाख अध्याय हुए, यहाँ तक कि मुझे जो कुछ था और क़यामत तक जो कुछ होगा सब का ज्ञान प्राप्त हो गया और मुझे मृत्य व आपदाओं तथा फैसला करने का ज्ञान प्राप्त हो गया।** [2]

किंतु अहले बैत का ज्ञान पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम से सीखी और सुनी हुई बातों तक ही सीमित नहीं था बल्कि उन लोगों को एक प्रकार का असाधारण ज्ञान भी प्राप्त था कि जो ष्इल्हामष [3] आदि जैसे मार्गों से उन तक पहुँचता था। जैसा कि पैगम्बर हज़रत ख़िज़्र और ज़ुलक़रनैन, हज़रत मूसा की माता तथा हज़रत मरयम जैसे महान लोगों को यह विशेषता प्राप्त थी। [4] और इन में से कुछ शैलियों को कुरआन में ईश्वरीय संदेश का नाम दिया गया है किंतु इस का आशय ईश्वरीय दूतों से विशेष संदेश कदापि नहीं है, और यही कारण था कि इमाम बचपन में ही इस महान स्थान

---

[1] मुस्तदरके हाकिम पृष्ठ 226 ।

[2] उसूले काफी पृष्ठ 264, 270 ।

[3] इल्हाम का एक आशय वह विचार है जो ईश्वर के विशेष दासों के मन में ईश्वर अपनी विशेष शक्ति द्वारा उत्पन्न करता है।

[4] सूरए कहफ – 65 – 98, आले इमरान – 42, मरयम – 17 – 21, ताहा – 38, क़सस –7 ।

पर पहुँच जाते थे और उन्हें हर वस्तु का ज्ञान प्राप्त होता था तथा किसी से कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं होती थी ।

यह विषय बहुत सी हदीसों और ऐतिहासिक कथनों से प्रमाणित होता है जो स्वयं इन इमामों के हवाले से इतिहास में वर्णित हैं और चूँकि इन लोगों की हर प्रकार के पापों व गलतियों से पवित्रता सिद्ध हो चुकी है इस लिए यह कथन प्रमाण हैं । किंतु इस संदर्भ में हम उन के कथनों के उल्लेख से पूर्व कुरआन मजीद की कुछ आयतों की ओर संकेत करेगें जिन में कुछ लोगों के पास किताब का ज्ञान होने की बात कही गयी है क्योंकि किताब का ज्ञान रखने वाले इन ही लोगों को पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की पैगम्बरी का गवाह बताया गया है । कुरआन मजीद की आयत इस प्रकार से है:

**कह दो मेरे और तुम्हारे बीच ईश्वर गवाही के लिए काफी है और वह जिस के पास किताब का ज्ञान है।** [1]

निश्चित रूप से वह जिस की गवाही का उल्लेख ईश्वर की गवाही के साथ किया गया तथा जिस के पास किताब अर्थात कुरआन के ज्ञान की बात ईश्वर ने की है तथा जिसे इस प्रकार की गवाही के योग्य समझा है , उस का उच्च स्थान व महानता सब पर स्पष्ट है।

एक अन्य आयत में इस गवाह की ओर संकेत किया गया है और उसे पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के पीछे पीछे चलने वाला बताया गया है : **तो जो अपने पालनहार की ओर से स्पष्ट प्रमाण लिए हो और उस के पीछे उसी से एक गवाह हो ...।** [2] यहाँ पर ष्उसी सेष का अर्थ यह है कि वह गवाह स्वयं पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व

---

[1] सूरए रअद– आयत 43

[2] सूरए हूद – आयत 17

आलेही व सल्लम के परिवार से है । शीआ और सुन्नी बुद्धिजीवियों ने लिखा है कि इस गवाह से आशय हज़रत अली अलैहिस्सलाम हैं ।

उदाहरण स्वरूप इब्ने मग़ाज़ेली शाफेई ने अब्दुल्लाह बिन अता के हवाले से लिखा है कि उन्हों ने कहा है : एक दिन में इमाम बाक़िर अलैहिस्सलाम की सेवा में था कि अब्दुल्लाह बिन सलाम ; एक पूर्व गैर मुस्लिम बुद्धिजीवी जिस ने पैगम्बरे इस्लाम के काल में इस्लाम स्वीकार किया था । द्ध का बेटा वहाँ से गुज़रा तो मैं ने इमाम से पूछा : कुरआन की यह आयत कि और जिस के पास किताब का ज्ञान हो इन के पिता के बारे में है ? तो इमाम बाक़िर अलैहिस्सलाम ने कहा : नहीं , बल्कि यह आयत अली इब्ने अबी तालिब की ओर संकेत करती है और **उस के पीछे उसी से एक गवाह हो** तथा **तुम्हारा अभिभावक केवल ईश्वर , उस के रसूल और जो लोग ईमान ले आए** ,[1] जैसी आयतों में भी अली इब्ने अबी तालिब की ओर संकेत है।

इसी प्रकार शीआ और सुन्नी बुद्धिजीवियों के कथनों के अनुसार सूरए हूद में ष्गवाहष् से आशय हज़रत अली अलैहिस्सलाम हैं । और ष्उसी सेष् के दृष्टिगत यह स्पष्ट हो जाता है कि इस में किसी अन्य की ओर संकेत हो ही नहीं सकता ।

किताब का ज्ञान रखने का महत्व उस समय स्पष्ट होता है , जब कुरआन में वर्णित हज़रत सुलैमान और बिलक़ीस के सिंहासन को लाने की घटना पर ध्यान दिया जाए , इस संदर्भ में कुरआन में आया है : **और उस ने जिस के पास किताब मे से ज्ञान था कहा मैं उसे आप की पलक झपकने से पहले ला दूँगा ।**[2]

इस आयत से पता चलता है कि किताब के ज्ञान के कुछ भागों का स्वामी होना ही आश्चर्य जनक शक्तियाँ उत्पन्न कर देता है और इसी से समझा

---

[1] सूरए माएदा – आयत 55

[2] सूरए नम्ल – आयत 40

जा सकता है कि पूरी किताब का ज्ञान रखने का क्या प्रभाव हो सकता है। इमाम जाफर सादिक अलैहिस्सलाम ने अपनी एक हदीस में इस का महत्व बताया है । इस हदीस का उल्लेख सुदैर ने किया है जो इस प्रकार है :

सुदैर कहते हैं : मैं , अबू बसीर , यहया और दाऊद बिन कसीर इमाम सादिक अलैहिस्सलाम के घर के बाहरी भाग में थे कि अचानक इमाम जाफर सादिक , अप्रसन्न मुद्रा में वहाँ आए और कहने लगे कि उन लोगों पर आश्चर्य है जो समझते हैं कि हमें भविष्य व अज्ञात वस्तुओं का ज्ञान होता है हालाँकि ईश्वर के अतिरिक्त यह ज्ञान किसी को प्राप्त नहीं है। मैं अपनी दासी को डाँटना चाहता था लेकिन वह भाग गयी और अब मालूम नही किस कमरे में छुपी हुई है।[1] सुदैर का कहना है : जब इमाम जाफरे सादिक उठ कर घर से अन्दर जाने लगे तो मैं अबू बसीर व मोयस्सर के साथ उन के पीछे पीछे घर के अन्दर गया और हम ने कहा : हम आप पर कुरबान हों ! आप दासी के बारे में जो कह रहे थे हम ने वह सुना , हमारा मानना है कि आप के पास बहुत ज्ञान है किंतु हम यह नहीं कहते कि आप को अज्ञात वस्तुओं का भी पता है। उन्हों ने कहा : हे सुदैर! क्या तुम ने कुरआन नहीं पढ़ा है ? मैं ने कहा : क्यों नही , उन्हों ने कहा : यह आयत पढ़ी है : **और उस ने जिस के पास किताब में से ज्ञान था कहा मैं उसे आप की पलक झपकने से पहले ला दूँगा ।** मैं ने कहा : मैं आप पर कुरबान हो जाऊँ , मैं ने यह आयत पढ़ी है , उन्हों ने कहा : जानते हो उस के पास किताब का कितना ज्ञान था? मैं ने कहा : आप बता दें , उन्हों ने कहा : एक फैले हुए समुन्द्र में से एक बूँद के जितना ! और फिर कहा : यह

---

[1] आगे की घटना से यह स्पष्ट होता है कि इमाम जाफरे सादिक ने यह बात सरकारी हरकारों की उपस्थिति के कारण कही थी । यह जान लेना चाहिए कि अज्ञात वस्तुओं का वह ज्ञान जो केवल ईश्वर से विशेष है , उस के लिए सीखने की आवश्यकता नहीं होती जैसा कि हजरत अली अलैहिस्सलाम ने उस व्यक्ति के उत्तर में कि जिस ने पूछा था कि आप के पास अज्ञात वस्तुओं व घटनाओं का ज्ञान है , कहा था कि वह ज्ञानी से सीखा हुआ ज्ञान है , अन्यथा सारे ईश्वरीय दूतों और बहुत से ईश्वर के विशेष दासों को ईश्वर की कृपा से बहुत सी अज्ञात वस्तुओं का ज्ञान होता था और इस में कोई संदेह नहीं है।

आयत पढ़ी है : **कह दो मेरे और तुम्हारे बीच ईश्वर गवाही के लिए काफी है और वह जिस के पास किताब का ज्ञान है।** मैं ने कहा : हॉ , उन्हों ने कहा : जिस के पास पूरी किताब का ज्ञान हो वह अधिक ज्ञानी है या वह जिस के पास किताब का थोड़ा सा ज्ञान हो ? मैं ने कहा : जिस के पास पूरी किताब का ज्ञान हो । इस के बाद उन्हों ने अपने पवित्र सीने की ओर संकेत करते हुए कहा : ईश्वर की सौगंध समस्त किताब का ज्ञान हमारे पास है , ईश्वर की सौगंध पूरी किताब का ज्ञान हमारे पास है।[1]

अब हम इमामों के ज्ञान के बारे में अन्य हदीसों का उल्लेख करेगें ।

इमाम रज़ा अलैहिस्सलाम ने इमामत के बारे में एक विस्तृत हदीस में कहा है : **जब ईश्वर किसी को लोगों के लिए इमाम के रूप में चुनता है तो उस के हृदय को बड़ा बना देता है और तत्वदर्शिता व ज्ञान के सोते उस के हृदय में डाल देता है और उसे ज्ञान प्रदान करता है ताकि उसे हर प्रश्न के उत्तर का ज्ञान हो और सत्य की पहचान में उसे समस्या न हो , इस प्रकार से वह पापों से पवित्र होता है और उसे ईश्वर की पुष्टि व समर्थन प्राप्त होता है तथा वह गलतियों और भूल से सुरक्षित होता है। और ईश्वर , उसे इस प्रकार की विशेषताएं इस लिए देता है ताकि वह ईश्वर के दासों के लिए प्रमाण और गवाह रहे। यह ईश्वर की कृपा है और वह जिसे चाहता है उसे इस का पात्र बनाता है।**

इस के बाद आप ने कहा : **क्या लोग ऐसे व्यक्ति को पहचान और चुन सकते हैं ? और क्या उन के चुने हुए व्यक्ति में यह विशेषताएं होती हैं ?**[2]

हसन बिन यहया मदाएनी के हवाले से आया है कि इमाम जाफरे सादिक अलैहिस्सलाम से मैंने पूछा : जब इमाम से प्रश्न किया जाता है तो वह

---

[1] उसूल काफी : जिल्द 1 , पृष्ठ 257 ।

[2] उसूल काफी , जिल्द 1

किस ज्ञान के आधार पर उस का उत्तर देता है ? उन्हों ने कहा : **कभी उसे ईश्वरीय प्रेरणा प्राप्त होती और कभी फरिश्ता उसे बताता है और कभी दोनों प्रकार से ।**[1]

इमाम जाफरे सादिक अलैहिस्सलाम ने इसी प्रकार एक अन्य हदीस में फरमाया है: **जिस इमाम को यह न पता हो कि उस पर कौन सी मुसीबत आने वाली है और उस के काम का अन्त क्या होगा , वह लोगों पर ईश्वर की ओर से प्रमाण नहीं हो सकता ।**

इसी प्रकार इमाम जाफरे सादिक अलैहिस्सलाम से कई अन्य हदीसों का उल्लेख किया गया है जिन में उन्हों ने कहा है : **जब भी इमाम किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, ईश्वर उसे उस का ज्ञान प्रदान कर देता है ।**

इसी प्रकार अन्य बहुत सी हदीसों में आया है कि आप ने कहा है:

**आत्मा जिबरईल व मीकाईल से अधिक महान रचना है कि जो पैग़म्बरे इस्लाम के साथ थी और उन के बाद इमामों के साथ है और उन की सहायता करती है ।**[2]

---

[1] बिहारुल अनवार

[2] उसूले काफी ।

## प्रश्न

1. इमाम की पवित्रता को कुरआन की कौन सी आयतों से सिद्ध किया जा सकता है?

2. कौन सी हदीस , इमाम की पवित्रता को प्रमाणित करती है ?

3. इमाम का विशेष ज्ञान उसे कौन से मार्गो से प्राप्त होता है ?

4. अतीत में किन लोगों को यह ज्ञान प्राप्त था ?

5. कौन सी आयत इमामों के ज्ञान को सिद्ध करती है , वर्णन करें ।

6. किताब के ज्ञान की व्याख्या करें ।

7. इमामों के ज्ञान के बारे में कुछ हदीसों का वर्णन करें ।

## चालीसवाँ पाठ

# हज़रत मेहदी अज्जलल्लाहो तआला फरजहू

- भूमिका
- विश्व व्यापी ईश्वरीय शासन
- ईश्वरीय वचन
- कुछ हदीसें
- अज्ञातावास और उस के रहस्य

## भूमिका

पिछली चर्चाओं के दौरान , ऐसी कुछ हदीसों का वर्णन किया गया जिन में बारह इमामों के नामों का उल्लेख किया गया था । किंतु उन के अलावा भी शीआ व सुन्नी बुद्धिजीवियों व इतिहासकारों के हवाले से ऐसी बहुत सी हदीसें मिलती हैं जिन में पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने इस बात का उल्लेख किया है । इस प्रकार की कुछ हदीसों में केवल उन की संख्या बताई गयी है जब कि कुछ अन्य हदीसों में कहा गया है कि वे सब के सब कुरैश वंश से होगें । इसी प्रकार कुछ अन्य हदीसों में उन लोगों की संख्या बनी इस्राईल के दूतों के समान बताई गयी है, कुछ हदीसों में आया है कि उन में से नौ लोग इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम की संतान में से होगें और इसी प्रकार शीआ व सुन्नी बुद्धिजीवियो के हवाले से वर्णित बहुत सी हदीसों में बारह इमामों के नामों को भी बताया गया है।[1] इसी प्रकार शीओं के हवालों से इमामत के बारे में बहुत सी हदीसों का वर्णन है जिन का विस्तार से यहॉ पर उल्लेख नहीं किया जा सकता । इसी लिए इस भाग के अंतिम पाठ में हम बारहवें इमाम हज़रत साहिबुज़्ज़मान;अज द्धके बारे में संक्षिप्त चर्चा करते हुए केवल कुछ महत्वपूर्ण विषयों की ओर संकेत करेंगे।

यह हम जान चुके हैं कि पैगम्बरों को भेजने का आंरभिक उद्देश्य , मनुष्यों की चेतनापूर्ण व स्वतंत्रतापूर्ण परिपूर्णता की भूमिका प्रशस्त करना रहा है कि जिस की पूर्ति लोगों तक ईश्वरीय संदेश को पहुॅचा कर संभव हुई। इसी

---

[1] मुन्तखबुल असर फी इमामेस्सानी अशर ।

प्रकार ईश्वरीय दूतों को भेजने में और भी कई उद्देश्य थे जिन में योग्य व्यक्तियों के बौद्धिक विकास में सहायता तथा उन का आध्यात्मिक व आत्मिक प्रशिक्षण आदि सम्मिलित है। कुल मिला कर ईश्वरीय दूत ईश्वर की उपासना, ईश्वरीय मूल्यों और न्याय के आधार पर पूरे विश्व में एक आदर्श समाज के गठन का प्रयास करते थे और सारे ईश्वरीय दूतों ने यथासंभव इस दिशा में क़दम भी बढ़ाए और उन में से कुछ लोगों को विशेष कालों और विशेष क्षेत्रों में इस दिशा में कुछ सफलताएं भी प्राप्त हुई और उन्हों ने ईश्वरीय सत्ता की स्थापना की । किंतु किसी भी ईश्वरीय दूत के लिए ऐसी परिस्थितियाँ नहीं बनीं जिन के अंतर्गत वह विश्व स्तर पर ईश्वरीय शासन की स्थापना करने में सफल हुआ हो ।

यद्यपि परिस्थितियों के न होने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि ईश्वरीय दूतों की शिक्षाओं में कोई कमी थी अथवा उन की प्रशासनिक योग्यताओं में इतनी क्षमता नहीं थी और इसी प्रकार अगर ईश्वरीय दूत विश्व स्तर पर ईश्वरीय सत्ता की स्थापना में विफल रहे तो इस का यह अर्थ कदापि नहीं है कि उन्हें भेजे जाने का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ क्योंकि जैसा कि बताया जा चुका है, उन्हें भेजने का उद्देश्य, मनुष्य को चेतना व चयन शक्ति के साथ अनन्त कल्याण की ओर अग्रसर करना था । **ताकि लोगों के पास ईश्वर के सामने पैगम्बरों के बाद कोई बहाना न रहे ।**[1] और यह यह उद्देश्य पूरा हो गया ।

किंतु इस के साथ ही ईश्वर ने अपनी किताबों में धरती पर ईश्वरीय शासन की स्थापना का वचन दिया है कि जिसे मानव समाज में व्यापक स्तर पर ईश्वरीय धर्म को स्वीकार करने की एक प्रकार की भविष्यवाणी भी समझा जा सकता है और यह उस समय होगा जब ईश्वर के चुने हुए दासों की सहायता से विश्व स्तर पर ईश्वरीय सत्ता की स्थापना के मार्ग की बाधाएं हटा

---

[1] सूरए निसाअ – आयत 165

दी जाएगीं और अत्याचार व अन्याय की काली रातों में जीवन व्यतीत करने वाले लोगों को न्याय का उजाला दिखाया जाएगा । और इसे पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को भेजे जाने और सर्वव्यापी व सर्वकालिक धर्म का अंतिम लक्ष्य भी समझा जा सकता है। क्योंकि कुरआन में इस धर्म के बारे में आया है : ताकि उसे समस्त धर्मो पर विजयी बनाया जा सके।

इस बात के दृष्टिगत कि इमामत, ईश्वरीय दूतों के अभियान की पूरक और ईश्वरीय दूतों के कम के समापन के लक्ष्य का एक भाग है यह समझा जा सकता है कि यह उद्देश्य अंतिम इमाम द्वारा पूरा होगा । यह वही विषय है जिस पर इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम के बारे में वर्णित विश्वस्त हदीसों में बल दिया गया है।

यहाँ पर हम इस प्रकार की सत्ता की स्थापना की शुभसूचना देने वाली कुछ कुरआनी आयतों का वर्णन करेगें उस के बाद इस सदंर्भ में कुछ हदीसों का उल्लेख करेंगे।

## ईश्वरीय वचन

ईश्वर ने कुरआन में कहा है : **हम ने तौरैत व ज़ोबूर में लिखा है कि योग्य लोग धरती के उत्तराधिकारी होगें ।**[1] और इसी प्रकार की एक अन्य आयत में हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम के हवाले से यह बात कही गयी है । इस लिए इस में तो कोई शंका ही नहीं है कि इस प्रकार की ईश्वरीय सत्ता की एक न एक दिन स्थापना अवश्य होगी ।

एक अन्य स्थान पर मिस्र के शासक फिरऔन से संबंधित घटना और उस के अत्याचारों के वर्णन के बाद कुरआन में कहा गया है : **और हम धरती पर जिन लोगों पर अत्याचार हुए हैं उन पर उपकार करना चाहते हैं**

---

[1] सूरए अंबिया – आयत 105

**पर जिन लोगों पर अत्याचार हुए हैं उन पर उपकार करना चाहते हैं और उन्हें इमाम और उत्तराधिकारी बनाना चाहते हैं ।**[1]

हॉलाकि यह आयत बनी इस्राईल समुदाय को शक्ति प्राप्त होने और उन पर जारी अत्याचारों के अंत की ओर संकेत करती है किंतु इस में जो यह कहा गया है कि हम चाहते हैं इस से पता चलता है कि ईश्वर का यह इरादा जारी रहेगा इसी लिए इस आयत को बहुत सी हदीसों में इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम के प्रकट होने के प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इसी प्रकार कुरआने मजीद के सूरए नूर की आयत 55 में कहा गया है : **ईश्वर तुम लोगों मे से ईमान लाने वालों और अच्छे काम करने वालों को वचन देता है कि उन्हें धरती पर उत्तराधिकारी बनाएगा जैसा कि उन से पहले वालों को उत्तराधिकारी बनाया था और उन के लिए उन के उस धर्म को अधिकार प्रदान करेगा जिसे उस ने उन के लिए पसन्द किया है और उन के भय को शांति में बदल देगा जो लोग मेरी ही उपासना करते हैं और किसी को मेरा भागीदार नहीं बनाते और उस के बाद जिस ने इन्कार किया तो वह लोग खुल कर पाप करने वालों में से हैं ।**[2] ?

इसी प्रकार एक हदीस में आया है कि यह वचन इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम के काल में पूरा होगा ।

इस के अतिरिक्त भी इस आयत के बारे में और भी बहुत से कथन हैं जिन से पता चलता है कि यह आयत इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम के बारे में है किंतु चर्चा लंबी होने के कारण यहॉ पर हम उन का उल्लेख नहीं करेगें ।[3]

---

[1] सूरए क़सस – आयत 5

[2] सूरए नूर – आयत 55

[3] अधिक जानाकरी के लिए बिहारुल अनवार देखें ।

## कुछ हदीसें

इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम के बारे में पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की जिन हदीसों का शीआ और सुन्नी इतिहासकारों ने उल्लेख किया है वह तकनीकी दृष्टि से निरंतरता व विश्वस्नीयता की सीमा को भी पार कर चुकी हैं।[1] और बहुत से सुन्नी बुद्धिजीवियों ने इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम पर विश्वास को समस्त इस्लामी मतों में पूर्ण रूप से स्वीकारीय बताया है।[2] बल्कि बहुत से सुन्नी विद्वानों ने इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम और उन के प्रकट होने के चिन्हों के बारे में किताबें भी लिखी हैं[3]। इसी लिए यहॉ पर हम सुन्नी विद्वानों द्वारा वर्णित कुछ हदीसों का उल्लेख कर रहे हैं ।

बहुत से सुन्नी विद्वानों ने पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के हवाले से लिखा है कि उन्हों ने कहा है : **अगर इस विश्व की आयु एक दिन भी बची होगी तब भी ईश्वर उस दिन को इतना लबां कर देगा कि मेरे वंश का एक सदस्य जिस का नाम मेरे नाम पर होगा शासन करेगा और धरती को उसी प्रकार से न्याय से भर देगा जिस प्रकार से वह अत्याचार व शोषण से भरी हुई होगी ।**[4]

उम्मे सलमह के हवाले से कहा गया है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने कहा है : **मेहदी मेरे वंश से और फातेमा की संतान में से है।**[5]

इब्ने अब्बास ने लिखा है कि पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने कहा है : **निसंदेह अली मेरे बाद लोगों के इमाम हैं**

---

[1] सवाइके मोहरेक़ह , नूरुल अबसार , इसआफुर्रागेबीन आदि किताबें देखें ।

[2] नहजुल बलागा की शरहे इब्ने अबिल हदीद आदि ।

[3] जैसे अलबयान फी अखबारे साहेबज़्ज़मान तथा अन्य ।

[4] सहीहे तिरमेज़ी । मसनदे इब्ने हंबल आदि किताबें देखें ।

[5] इसआफुर्रागेबीन ।

**और उन की संतान में से प्रतीक्षित क़ायम[1] होगें और जब वह प्रकट होगें तो धरती को न्याय से उसी प्रकार भर देगें जैसे वह अत्याचार से भरी हुई होगी ।**

## अज्ञातावास और उस के रहस्य

बारहवें इमाम की विशेषताओं में से कि जिस पर विभिन्न हदीसों में भी बल दिया गया है , यह है कि वे अज्ञातावास में जीवन व्यतीत करेगें । जैसा कि अब्दुल अज़ीम हसनी ने इमाम मोहम्मद तक़ी उन्हों ने अपने पिता और उन्हों ने हज़रत अली अलैहिमुस्सलाम के हवाले से कहा है कि उन्हों ने बताया है : **हमारे क़ाएम का अज्ञातावास लंबा होगा , और जैसे मैं शीओं को देख रहा हूँ कि अज्ञातावास के काल में , उन्हें इस प्रकार से खोज रहे हैं जैसे भुखा पशु चरागाह को खोजता है किंतु उन्हें पाएगें नहीं । जान लो कि उन लोगों मे से जो भी अपने धर्म पर बाकी रहेगा और अज्ञातावास की अवधि अधिक होने के कारण जिस का ह्रदय कठोर नहीं होगा वह क़यामत के दिन मेरे साथ होगा।** फिर आप ने कहा : **जब हमारा कायम आंदोलन आंरभ करेगा तो उन पर किसी शासक की आज्ञापालन का कर्तव्य नहीं होगा और इसी लिए वह गुप्त रूप से जन्म लेगा और लोगों की नज़रों से ओझल रहेगा ।**[2]

इमाम ज़ैनुल आबेदीन ने अपने पिता और उन्हों ने हज़रत अली अलैहिस्सलाम के हवाले से इस हदीस का वर्णन किया है कि हज़रत अली ने कहा है : **हमारा क़ायम दो बार अज्ञातावास में जाएगा कि जिस में एक का काल अधिक होगा और उन की इमामत पर केवल वही लोग विश्वास रखेगें जिन का ईमान और धर्म पर विश्वास दृढ़ होगा ।**

---

[1] इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम की एक उपाधि जिस का अर्थ होता है न्याय स्थापित करने वाला ।

[2] मुन्तखबुल असर ।

अज्ञातावास के रहस्यों से पर्दा उठाने के लिए अन्य इमामों की जीवनी पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है।

जैसा कि हमें मालूम है पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के बाद अधिकांश लोगों ने अबूबक्र और उस के बाद उमर और फिर उस्मान की आज्ञापालन को स्वीकार किया , और उन के शासन के अंतिम वर्षो में अन्याय व भेदभाव के कारण इस्लामी सरकार में अराजकता फैल गयी यहॉ तक कि एक विद्रोह में उन की हत्या कर दी गयी और लोगों ने हज़रत अली की आज्ञापालन की प्रतिज्ञा की ।

ईश्वर की ओर से पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के उत्तराधिकार का अधिकार रखने वाले हज़रत अली अलैहिस्सलाम ने अपने से पहले तीनों ख़लीफाओं के शासनकाल में नव निर्मित इस्लामी समाज के हितों को ध्यान में रखते हुए मौन धारण किया और केवल उसी समय अपनी ज़बान खोली जब इस्लामी हितों की रक्षा आवश्यक हुई किंतु इस के साथ ही उन्हों ने इस्लाम के हितों की रक्षा की दिशा में भरसक प्रयास किये किंतु स्वयं उन का शासन काल , जमल नामक युद्ध तथा मुआविया व ख़्वारिज नामक गुट से युद्धों में बीता यहॉ तक कि ख़्वारिज गुट के एक व्यक्ति ने उन्हें शहीद कर दिया।

उन के पुत्र इमाम हसन अलैहिस्सलाम को भी मुआविया के आदेश पर विष दे दिया गया । मुआविया की मृत्यु के बाद उस के बेटे यज़ीद को सत्ता मिली जो इस्लाम के विदित आदेशों का भी पालन नहीं करता था । इस प्रकार से इस्लामी समाज के पतन की प्रकिया आरंभ हुई और निकट था कि इस्लाम का नाम भी धरती से मिट जाए। इन परिस्थितियों में इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम ने आन्दोलन के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं पाया और इस प्रकार से इराक के कर्बला नामक क्षेत्र में उन की ह्रदय विदारक शहादत ने किसी सीमा तक मुसलमानों में चेतना जगाई और इस्लाम को निश्चित पतन से बचा लिया । किंतु इस के बावजूद न्याय के आधारों पर इस्लामी शासन की

स्थापना का अवसर नहीं मिला । यही कारण था कि सभी इमामों ने इस्लामी शिक्षाओं के प्रसार और लोगों में आध्यात्म के प्रचलन और उसे शक्तिशाली बनाने का अभियान आरंभ किया और जहाँ तक हो सकता था लोगों को अत्याचारियों के विरूद्ध उठ खड़े होने का आह्वान किया और उन के मन में ईश्वरीय शासन की स्थापना की आशा जगाते रहे। किंतु एक एक करके सभी को शहीद कर दिया गया।

प्रत्येक दशा में इमामों ने ढाई सौ वर्षों के दौरान विभिन्न प्रकार की यातनाओं व दुखों और दबावों को सहन करते हुए लोगों के लिए वास्तविक इस्लाम की छवि पेश करने में सफलता प्राप्त की । उन के इन प्रयासों का कुछ भाग सार्वजनिक रूप में सब के लिए था और कुछ भाग विशेष रूप से शीओं के लिए। और इस प्रकार से इस्लामी शिक्षाओं के विभिन्न आयाम , विभिन्न रूपों में इस्लामी समाज में फैल गये और पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के संदेश की सुरक्षा निश्चित हो गयी तथा इस के साथ ही इस्लामी शासन के विभिन्न क्षेत्रों में अत्याचारी सरकार के विरूद्ध आवाज़े उठने लगीं जिस के कारण किसी सीमा तक अत्याचारी शासकों के अत्याचारों पर अंकुश लगाना संभव हुआ।

किंतु जिस विषय ने इन अत्याचारी शासकों को चिंता में डाल रखा था वह इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम के प्रकट होने की शुभसूचना थी जिस के कारण उन्हें अपनी सत्ता खतरे में नजर आती थी। यही कारण था कि ग्यारहवें इमाम हसन अस्करी अलैहिस्सलाम के समकालीन शासकों ने उन पर कड़ी नज़र रखी ताकि अगर उन के किसी पुत्र का जन्म हो तो उसे पैदा होते ही मार डालें । इन शासकों ने इमाम हसन अस्करी अलैहिस्सलाम को युवास्था में ही शहीद कर डाला । किंतु ईश्वर का इरादा यह था कि इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम का जन्म हो और मानवता की रक्षा व मोक्ष के लिए उन्हें सुरक्षित रखा जाए। और यही कारण था कि इमाम हसन अस्करी अलैहिस्सलाम के जीवन काल में पाँच वर्ष की आयु तक अत्याधिक विशिष्ट शीओं के अतिरिक्त,

किसी ने भी इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम को नहीं देखा था और पिता की शहादत के बाद उन्हों ने अपने चार प्रतिनिधियों[1] द्वारा लोगों से संपर्क बनाए रखा । इन लोगों को एक के बाद एक इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम का प्रतिनिधि बनने का गौरव प्राप्त हुआ। उस के बाद आप अनिश्चित काल के लिए अज्ञात वास में चले गये । उस दिन तक के लिए जब मानव समाज ईश्वरीय सत्ता की स्थापना के लिए तैयार होगा । उस दिन इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम ईश्वर के आदेश से प्रकट होगें ।

इस आधार पर,इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम की ग़ैबत अर्थात अज्ञातावास का मुख्य रहस्य , अत्याचारियों से सुरक्षा है । यद्यपि अन्य बहुत सी हदीसों में इस के दूसरे कारणों की ओर भी संकेत है जिन में से लोगों की परीक्षा भी एक कारण है।

यद्यपि अज्ञातावास काल के दौरान भी लोग पूर्ण रूप से इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम की विभूतियों से वंचित नहीं है बल्कि हदीसों में उन्हें उस सूर्य के समान बताया गया है कि जो बादलों के पीछे छिप जाता है । उस का प्रकाश होता है किंतु उसे कोई नहीं देख पाता । जैसा कि बहुत से लोगों ने भले अन्जाने में ही किंतु उन से भेंट की है और अपनी सांसारिक व आध्यात्मिक समस्याओं का उन के निवारण करवाया है ।

---

[1] उस्मान बिन सईद , मुहम्मद बिन उस्मान , हुसैन बिन रौह और अली बिन मुहम्मद समरी ।

## प्रश्न

1. पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम का अंतिम लक्ष्य क्या है ?

2. इस लक्ष्य तक कैसे पहुँचा जाएगा?

3. कौन सी आयतें , विश्व व्यापी ईश्वरीय सत्ता की स्थापना की सूचना देती हैं?

4. इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम के बारे में सुन्नी बुद्धिजीवियों द्वारा वर्णित हदीसों का उल्लेख करें ।

5. इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम के अज्ञात वास के बारे में अहले बैत की कुछ हदीसों का वर्णन करें।

6. अल्प अवधि वाले अज्ञातावास और दीर्घकालिक अज्ञातावास के बारे में बताएं ।

7. इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम की गैबत का रहस्य क्या है ?

8. अज्ञातावास काल में लोग उन से किस प्रकार से लाभ उठा सकते हैं ?

इक्तालिसवाँ पाठ

# न्याय की पहचान का महत्व

- भूमिका
- क़यामत पर विश्वास का महत्व
- इस विषय को कुरआन में महत्व दिया जाना
- परिणाम

## भूमिका

इस किताब के आंरभ , में धर्म और आस्था के आधारों के बारे में अध्यन के महत्व को स्पष्ट किया गया तथा यह बताया गया कि जीवन के मानवीय होने के लिए इन विषयों का स्पष्ट होना आवश्यक है। पहले भाग में , ईश्वर संबधी विषयों , दूसरे भाग में मार्गदर्शन के साधनों पर चर्चा हुई और अब इस भाग में हम क़यामत अर्थात प्रलय से संबंधित विषयों का वर्णन करेंगे।

सब से पहले तो इस मूल इस्लामी विश्वास , के मनुष्य के व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन पर पड़ने वालों प्रभावों के बारे में चर्चा करेंगे। फिर यह बताएंगे कि क़यामत के बारे में सही कल्पना , अदृश्य आत्मा व अमर आत्मा को स्वीकार करने पर निर्भर है । और जैसा कि सृष्टि की पहचान, ईश्वर की पहचान प्राप्त किए बिना पूर्ण नहीं होती उसी प्रकार मानव की पहचान भी अमर आत्मा की पहचान प्राप्त किये बिना अधूरी है।

इस के बार हम क़यामत के आधार भूत विषयों की, इस किताब की शैली के अनुसार व्याख्या करेंगे ।

## क़यामत पर विश्वास का महत्व

जीवन की विभिन्न गतिविधियों का कारण , इच्छाओं की पूर्ति , लक्ष्यों और उद्देश्यों तक पहुँचना अर्थात अंतिम परिपूर्णता तक पहुँचना है और विभिन्न कामों की शैली व मात्रा तथा उन की दिशा , वास्तव में उन लक्ष्यों की पहचान पर निर्भर होती है जिन तक पहुँचने के लिए प्रयास किया जाता है ।

इस आधार , जीवन के मूल्य लक्ष्य की पहचान , मनुष्य के विभिन्न कार्यों की दिशा निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। और अगर देखा जाए तो जीवन का दिशा निर्धारण , मनुष्य की विचार धारा तथा अपनी वास्तविकता व परिपूर्णता तथा कल्याण के प्रति उस के ज्ञान की शैली द्वारा ही होता है और जो अपनी वास्तविकता को, भौतिक संसार की क्रियाओं व प्रतिक्रियाओं का परिणाम और इन्ही वस्तुओं तक सीमित समझता है तथा अपने जीवन को इस धरती पर कुछ वर्षो की आयु तक ही सीमित मानता है और इस जीवन के बाद किसी संसार व किसी प्रकार के सुखभोग को स्वीकार नहीं करता , तो उस की कार्यशैली कुछ इस प्रकार की होती है जिस से उस के इसी संसारिक जीवन की आवश्यकताओं की ही पूर्ति होती है , किंतु जो व्यक्ति अपनी वास्तविकता को इस भौतिक संसार से आगे की वस्तु मानता है और मृत्यु को जीवन का अंत नही समझता , बल्कि उसे नश्वर संसार से सदैव रहने वाले स्थान तक जाने का साधन मानता है , वह अपनी कार्यशैली ऐसी रखता है जो उसे अनन्त कल्याण तक पहुँचा दे और ऐसे काम करने का प्रयास करता है जो उसे उस दुनिया में लाभ पहुँचाएं । दूसरी ओर , संसार के दुख व कठिनाइयाँ उसे निराश भी नहीं करतीं और न ही इस से कल्याण व सफलता की प्राप्ति में उस के प्रयास रुकते हैं ।

मनुष्य की इन दोनों प्रकार की विचार धाराओं के प्रभाव को , केवल व्यक्तिगत जीवन पर ही नहीं वरन् उसे सामाजिक जीवन तथा लोगों के एक दूसरे के प्रति व्यवहारों में भी देखा जा सकता है और परलोक में विश्वास तथा सदैव बाकी रहने वाले दंड अथवा इनाम में विश्वास, दूसरों के अधिकारों पर ध्यान देने और आवश्यकता रखने वालों के लिए त्याग जैसी भावनाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। और जिस समाज में इस प्रकार का विश्वास पाया जाता हो , वहाँ न्याय की स्थापना और पीड़ितों की सहायता तथा कानून लागू करने के लिए अपेक्षाकृत कम बल प्रयोग की आवश्यकता होती है । स्वाभाविक

रूप से अगर यह भावना व विश्वास विश्व व्यापी हो जाए , तो निश्चित रूप से अंतरराष्ट्रीय समस्याओं में असाधारण रूप से कमी आएगी।

इन विषयों के दृष्टिगत क़यामत और उस के संदर्भ में अध्ययन व शोध की आवश्यकता और महत्व का पता चलता है। और यहॉ तक कि यह भी कहना गलत नहीं है कि केवल एकेश्वरवाद पर विश्वास मानव जीवन को सही दिशा प्रदान करने में सक्षम नहीं है। और यही कारण है कि ईश्वरीय धर्मो विशेषकर इस्लाम में क़यामत के विषय और इस पर लोगों में विश्वास को मज़बूत करने पर अत्याधिक ध्यान दिया गया है।

परलोक के जीवन पर विश्वास , उसी स्थिति में मानव जीवन को सही रूप से दिशा देने में प्रभावी हो सकता है कि जब इस संसार को कर्मो के उस संसार में फल पाने का साधन माना जाए और कम से कम , परलोक की नेमतों अर्थात अनुकंपाओं और दंडों को इस लोक के अच्छे व बुरे कर्मो का परिणाम माना जाए। अन्यथा अगर यह समझा जाए कि परलोक की सुविधाओं व नेमतों को उसी लोक में प्राप्त करना संभव है जैसा कि सांसारिक सुख को इसी संसार में प्राप्त किया जा सकता है , तो फिर इस जीवन के दिशा निर्धारण में परलोक पर विश्वास की भूमिका समाप्त हो जाएगी । क्योंकि इस विचार के अंतर्गत यह कहा जा सकता है कि इस संसार में सांसारिक सुख के लिए प्रयास किया जाना चाहिए और परलोक में कल्याण की प्राप्ति के लिए, मृत्यु के बाद, उसी लोक में प्रयास करना चाहिए । इस आधार पर , यह आवश्यक है कि क़यामत और परलोक में जीवन के विषय को सिद्ध करने के साथ ही साथ , लोक व परलोक के मध्य संबधं और स्वतंत्र गतिविधियों के परलोक में परिणामों को भी साबित किया जाए।

## क़यामत पर कुरआन का ध्यान

कुरआन मजीद की एक तिहाई से अधिक आयतें, अनन्त जीवन से संबंधित हैं , इस प्रकार की कुछ आयातों में परलोक में विश्वास पर बल दिया

गया है जब कि कुछ अन्य आयतों में, उस के इन्कार के परिणामों से लोगों को अवगत कराया गया है। तथा इसी प्रकार इन आयतों के एक भाग में अनन्त नेमतों और एक अन्य भाग में कभी न समाप्त होने वाले दंडो की बात की गयी है।[1] इसी प्रकार कुरआने मजीद की बहुत सी आयतों में परलोक में मिलने वाले कर्मफलों और इस संसार में अच्छे व बुरे कामों के मध्य संबधं को दर्शाया गया है और विभिन्न शैलियों में पुर्नजीवन और क़यामत को सिद्ध किया गया है तथा इस का इन्कार करने वालों की शंकाओं का उत्तर दिया गया है तथा क़यामत व हिसाब – किताब के दिन को भुला देने और इस का इन्कार करने वालों को दिए जाने वाले दंडों का भी वर्णन किया गया है। कुरआन की आयतों पर ध्यान देने से यह समझा जा सकता है कि ईश्वरीय दूतों के कथनों और लोगों से उन की बहसों का एक बड़ा भाग क़यामत और उस से संबंधित विषयों पर आधारित रहा है और यहाँ तक कहा जा सकता है कि उन्हों ने इस विषय को सिद्ध करने के लिए जितने प्रयास किए हैं वह ईश्वर को एक व अनन्य सिद्ध करने के उन के प्रयासों से कहीं अधिक था । क्योंकि अधिकांश लोग, इस विषय को स्वीकार करने के मामले में अत्याधिक हठधर्मी का प्रदर्शन करते थे । इस हठधर्मी के कारणों को दो मुख्य कारकों के रूप में बताया जा सकता है : प्रथम कारण तो मनुष्य में अनदेखी वस्तुओं के इन्कार की भावना के अंतर्गत था तथा दूसरा कारण लोगों में सीमा व किसी प्रकार की जवाबदही से बचने की भावना को समझा जा सकता है। जैसा कि बताया जा चुका है , क़यामत और हिसाब – किताब के दिन पर विश्वास , कर्तव्य बोध , अत्याचारों और दूसरे के अधिकारों के हनन से दूरी तथा अच्छे कामों में रूचि का का मुख्य स्रोत है और इस विषय के इन्कार से , पापों और मनमानी करने का मार्ग खुल जाता है।

कुरआन इस संदर्भ में कहता है :

---

[1] सूरए बक़रह – आयत 4 , लुक़मान – आयत 4 , इसरा – आयत 10 , अर्रहमान – आयत 46 से अंत तक , अलहाक़्क़ह – आयत 20– 27 ।

**क्या मनुष्य ने यह सोच लिया है कि हम कभी उस की अस्थियों को इकट्‌ठा नहीं करेगें , हॉ हम तो उस के पोर को भी फिर से बनाने में सक्षम है , बल्कि मनुष्य तो अपने आगे खुला हुआ मार्ग चाहता है ।** [1]

सही अर्थो में क़यामत से इन्कार की इस भावना को उन लोगों में देखा जा सकता है जो कुरआन में प्रलय, क़यामत और हिसाब – किताब , तथा कर्मफल प्रदान किए जाने के संबधं में वर्णित आयतों का अर्थ इसी संसार में विभिन्न राष्ट्रों में होने क्रांतियों तथा न्याय के आधार पर समाजों की रचना और धरती पर स्वर्ग के निर्माण के रूप में निकालते हैं। कुरआन मजीद ने इस प्रकार के लोगों को मनुष्यों के शैतानों और ईश्वरीय दूतों के शत्रुओं की संज्ञा दी है कि जो अपनी लच्छेदार बातों द्वारा लोगों के दिल में स्थान बनाते और उन्हें अपनी बात मानने पर प्रोत्साहित करते हैं तथा लोगों को ईश्वरीय आदेशों की प्रतिबद्धता व सही विश्वास से रोकते हैं ।

**और इस प्रकार से हम ने हर पैगम्बर के लिए इन्सानों और जिन्नों में से शैतान बनाया जो लोगों को धोखा देने के लिए एक दूसरे को बातें बताते हैं और अग़र तुम्हारा पालनहार चाहता तो वह ऐसा न कर पाते तो फिर उन्हें और वह जो कुछ आरोप लगाते हैं उसे छोड़ दो ताकि जो लोग परलोक में विश्वास नहीं रखते वह उन की बातों को ध्यान से सुनें और प्रसन्न हों और जो चाहें करें ।** [2]

## परिणाम

मनुष्य को जीवन के ऐसे मार्ग के चयन के लिए जो उसे वास्तविक सफलता व परिपूर्णता तक पहुॅचा दे । यह सोचना चाहिए कि क्या मनुष्य का जीवन , मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाता है या उस के बाद भी दूसरा जीवन

---

[1] सूरए कयामत – 3– 5

[2] अनआम – 112–113

जारी रहेगा ? और क्या इस संसार से दूसरे संसार में जाना , उसी प्रकार से है जैसे हम इस संसार में एक नगर से दूसरे नगर जाते हैं और अगर चाहें तो वहॉ के लिए आवश्यक सामान भी अपने साथ लेते जाएं या यह कि इस संसार का जीवन , उस संसार की सफलता व सुख , दुख की भूमिका बनाने वाला स्थान है और कर्म इसी संसार में करना चाहिए और उस का फल उस संसार में प्राप्त करना चाहिए? और जब तक इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल जाता जीवन के मार्ग व शैली तथा कार्यक्रम की पहचान की बारी नहीं आती क्योंकि जब तक यात्रा के गंतव्य का पता न हो , उस समय तक वहॉ पहुँचने के मार्ग का निर्धारण संभव नहीं है। अंत में हम यह याद दिलाना चाहेगें कि इस प्रकार के किसी जीवन की संभावना चाहे जितनी क्षीण हो , एक बुद्धि रखने वाले मनुष्य को इस संदर्भ में खोजबीन पर तैयार कर सकती है क्योंकि सही होने की स्थिति में जो लाभ प्राप्त होगा उस की कोई सीमा नहीं है।

## प्रश्न

1. मानव जीवन की दिशा निर्धारण में क़यामत पर विश्वास रखने या न रखने का क्या प्रभाव है?

2. परलोक के जीवन पर विश्वास किस समय, सांसारिक जीवन की दिशा निर्धारण में प्रभावी सिद्ध हो सकता है?

3. क़यामत के विषय को कुरआन में दिए गये महत्व का वर्णन करें ।

4. क़यामत को स्वीकार न करने के संदर्भ में लोगों की हठधर्मी का कारण बताएं ।

5. क़यामत पर विश्वास में फेर–बदल के प्रयासों का वर्णन करें तथा इन प्रयासों के उत्तर में कुरआन के दृष्टिकोण को भी स्पष्ट करें ।

6. क़यामत के बारे में खोजबीन की आवश्यकता तथा अन्य सांसारिक मामलों में खोजबीन की तुलना में उस के अधिक महत्वपूर्ण होने का कारण बताएं।

बयालीसवाँ पाठ

# क़यामत और आत्मा से संबंधित विषयों में परस्पर संबधं

- प्राणी में एकता का मापदंड
- मनुष्य के अस्तित्व में आत्मा का स्थान

## जीवित वस्तु में एकता का मापंदड

मनुष्य का शरीर अन्य सभी प्राणियों की भॉति ऐसी कोशिकाओं के समूह से बना है जो बनती बिगड़ती रहती हैं और उन में निरंतर परिवर्तन होता रहता है किंतु जन्म से लेकर मृत्यु तक उन की संख्या में बदलाव नहीं आता ।

प्राणियों विशेषकर मनुष्य के शरीर में होने वाले इन परिवर्तनों के दृष्टिगत यह प्रश्न उठता है कि इस परिवर्तनशील समूह को कौन से मापदंड के आधार पर एकल अस्तित्व कहा जा सकता है जब कि यह संभव है कि उस के अंश पूरे जीवन में कई बार बदल चुके हों ? [1]

इस प्रश्न का साधारण उत्तर तो यह दिया जाता है कि हर जीवित वस्तु में एकता का मापदंड , उस के समकालिक व गैर समकालिक अशों में निरंतरता है और धीरे धीरे जितनी कोशिकाएं मरती हैं उन के स्थान पर नयी कोशिकाएं जन्म लेती हैं किंतु इस प्रक्रिया में पाई जाने वाली निरंतरता के दृष्टिगत इस खुले व उतार चढ़ाव वाले समूह को एकल अस्तित्व कहा जा सकता है।

किंतु यह , सतोषजनक उत्तर नहीं है , क्योंकि अगर हम एक ऐसी इमारत की कल्पना करें जिसे ईटों से बनाया गया हो और फिर धीरे धीरे उस की ईटों को बदल दिया जाए , यहॉ तक कि कुछ दिनों बाद पहले की कोई एक

---

[1] इस से पूर्व यह प्रश्न भी उठाया जा सकता है कि मूल रूप से स्थिर व बंद समूहों में एकता का मापदंड क्या है ? और रसायनिक मिश्रणों को किस आधार पर एकल अस्तित्व का नाम दिया जा सकता है ? किंतु चर्चा के अधिक फैलने के डर से हम ने यह विषय यहॉ नहीं छेड़ा । अधिक जानकारी के लिए दर्शनशास्त्र की शिक्षा किताब की पहली जिल्द के 29वें पाठ का अध्यन किया जा सकता है।

ईंट भी बाकी न बचे , तो फिर नयी ईंटों से बनने वाली इमारत को वही पुरानी वाली इमारत नहीं कहा जा सकता हॉलाकि अधिक गहराई में जाए बिना और उस के विदित रूप को देखते हुए , इस तरह कहा जाता है विशेषकर उन लोगों द्वारा जिन्हें इस परिवर्तन की जानकारी न हो ।

संभव है कि पिछले उत्तर को इस प्रकार से पूरा किया जाए कि धीरे धीरे होने वाले यह परिवर्तन, उस स्थिति में समूह की एकता को नुकसान नहीं पहुँचाएगें कि जब एक भीतरी प्राकृतिक कारक द्वारा हों जैसा कि जीवित वस्तुओं में यह प्रकिया देखने में आती है । किंतु इमारत की ईंटों को बाहरी कारक द्वारा बदला जाता है इस लिए बदलने के बाद एकता व मूल तत्व को , बदले हुए अशों से संबंधित नहीं बताया जा सकता ।

यह उत्तर , एकल प्राकृतिक कारक को स्वीकार करने पर आधारित है कि जो परिवर्तनों की प्रकिया के दौरान सदैव बाकी रहता है और अशों के कम व व्यवस्था को सुरक्षित रखता है । किंतु इस दशा में स्वंय इस कारक के बारे में यह प्रश्न उठता है कि उस की वास्तविकता क्या है ? और उस की एकता का मापदंड क्या होगा ?

दर्शन शास्त्र के प्रसिद्ध सिद्धान्त के अनुसार समस्त प्राकृतिक अस्तित्व में एकता का पैमाना, प्रवृत्ति व प्रारूप नामक मिश्रणविहीन और महसूस न की जाने वाली वस्तु होती है कि जो पदार्थ में परिवर्तन के कारण बदलती नहीं । और प्राणियों में , कि जो खाने पीने तथा बढ़ने जैसे काम करते हैं , इस कारक को आत्मा या नफ्स कहा जाता है ।

प्राचीन दार्शनिक, वनस्पति व पशु की आत्मा को भौतिक और मनुष्य की आत्मा को निराकार मानते थे किंतु बहुत से इस्लामी दार्शनिकों ने जिन में मुख्य रूप से मुल्ला सदरा का नाम लिया जा सकता है , पशुओं के नफ्स के लिए निराकार होने की कुछ विशेषताओं की पुष्टि की है और बोध तथा इरादे को निराकार अस्तित्व के लिए आवश्यक चिन्हों में से बताया है किंतु मैटिरियालिज़्म में विश्वास रखने वालों ने , कि जो अस्तित्व को पदार्थ[1] और

उस की विशेषताओं में ही सीमिति मानते हैं , निराकार आत्मा का इन्कार किया है। नये भौतिकतावादी जैसे सकारात्मकतावादी मूल रूप से हर उस वस्तु का इन्कार करते हैं जिसे महसूस न किया जा सके और कम से कम ऐसी वस्तु को कदापि स्वीकार नहीं करते जिसे महसूस किया जाना संभव न हो। इस लिए स्वाभाविक रूप से जीवित अस्तित्व में एकता के पैमाने के बारे में भी उन के पास सही उत्तर नहीं होता ।

इस आधार पर कि वनस्पतियों में एकता का पैमाना, उन की वनस्पतिक आत्मा होती है , वनस्पति का जीवन, योग्य पदार्थों में वनस्पतिक आत्मा व प्रवृत्ति की उपस्थिति पर निर्भर होता है और जब किसी पदार्थ से यह विशेषता समाप्त हो जाती है तो वनस्पतिक आत्मा व प्रवृत्ति का भी अंत हो जाता है। और अगर हम यह कल्पना करें कि वही पदार्थ पुनः वनस्पतिक प्रवृत्ति को स्वीकार करने की क्षमता अपने भीतर पैदा कर लेते हैं और उन्हें एक नयी वनस्पतिक आत्मा प्रदान कर दी जाती है किंतु नयी और पुरानी वनस्पति में पूर्ण रूप से समानता के बावजूद वास्तविक एकता नहीं पाई जाएगी और गहरी दृष्टि के बाद नये पौधे को पहले वाला पौधा नहीं कहा जा सकता ।

किंतु पशुओं और मनुष्यों के सदंर्भ में , चूँकि उन की आत्मा निराकार होती है , इस लिए वह शरीर के नष्ट होने के बाद भी बाकी रह सकती है और जब उस का शरीर से पुनः संबंध स्थापित हो तो वह उस एकता व प्रवृत्ति को सुरक्षित रखे जैसा कि मृत्यु से पूर्व भी यही आत्मा की एकता , किसी भी व्यक्ति की एकता का पैमाना होती है और शरीर के पदार्थों में बदलाव , व्यक्तित्व में वृद्धि का कारण नहीं बनता । किंतु अगर कोई पशु अथवा मनुष्य के अस्तित्व को इसी महसूस किए जाने वाले शरीर तक ही सीमित माने और आत्मा को भी शरीर की विशेषताओं में से माने और अगर उसे महसूस न की जाने वाली वस्तु किंतु भौतिक माने कि जो शरीर के अंगों के नष्ट होने की दशा में , नष्ट हो जाती हो , तो ऐसा व्यक्ति क़यामत की सही कल्पना नहीं कर सकता क्योंकि यह मानने की दशा में कि शरीर, जीवन जारी रखने के लिए नयी प्रकार की

योग्यताएं प्राप्त कर लेता है , उस के भीतर नयी प्रकार की विशेषताएं व गुण पैंदा हो जाते हैं जिस के बाद वास्तवकित एकता का वास्तविक मापदंड बाकी नहीं रहेगा क्योंकि यह माना जा रहा है कि पहले की विशेषताएं पूर्ण रूप से समाप्त हो चुकी हैं और उन के स्थान पर नयी विशेषताओं ने जन्म लिया है ।

परिणाम यह निकला कि उस समय मृत्यु के बाद एक दूसरे जीवन की कल्पना की जा सकती है जब आत्मा को शरीर और उस की विशेषताओं से भिन्न माना जाए बल्कि यह भी न मानें कि आत्मा, शरीर में समा जाने वाली एक भौतिक वस्तु है कि जो शरीर के नष्ट होते ही नष्ट हो जाएगी । इस प्रकार से सब से पहले तो आत्मा को स्वीकार करना होगा , और फिर उसे भौतिक विशेषताओं से दूर तथा मूल तत्व माना जाना चाहिए न कि शरीर की विशेषता , और इस के साथ ही उसे स्वाधीन तथा शरीर के नष्ट होने के बाद बाकी रहने वाली वस्तु मानना चाहिए न कि पदार्थ में समाने वाली उन प्रवृत्तियों की भॉति जो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाया करती हैं ।

## मनुष्य के शरीर में आत्मा की स्थिति

यहॉ पर एक दूसरी बात जिस की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है यह है कि शरीर व आत्मा के मिश्रण से मनुष्य की रचना उस प्रकार नहीं है जैसे जल , आक्सीजन व हाइड्रोजन से मिल कर बना है कि जो अगर एक दूसरे से अलग हो जाएं तो दोनों के मिश्रण के परिणाम में बनी हुई वस्तु का अस्तित्व भी समाप्त हो जाए । बल्कि आत्मा मनुष्य का मूल तत्व है और जब तक वह रहती है मनुष्य की मनुष्यता व व्यक्ति का व्यक्तित्व , सुरक्षित रहता है । इसी लिए शरीर की कोशिकाओं में बदलाव से व्यक्तित्व की एकता को कोई नुकसान नहीं पहुॅचता । क्योंकि मनुष्य की वास्तविक एकता का मापदंड , उस की आत्मा की एकता है।

कुरआन मजीद , इस वास्तविकता की ओर संकेत के साथ , क़यामत का इन्कार करने वालों के उत्तर में कि जिन का कहना था कि यह किस प्रकार संभव है कि मनुष्य नष्ट होने के बाद नया शरीर पा ले, कहता है :

**कह दो; तुम नष्ट नहीं होते बल्किद्ध मौत का फरिश्ता तुम्हें ले लेता है।** [1]

## प्रश्न

1. क्या किसी अस्तित्व के परिवर्तनशील अंशों में निरंतरता को उस की एकता का मापदंड माना जा सकता है ? क्यों ?

2. मिश्रण की एकता के लिए कौन से अन्य मापदंड प्रस्तुत किए जा सकते हैं ?

3. मिश्रित और विशेषकर जीवित अस्तित्व की एकता के बारे में प्रसिद्ध दार्शनिक विचार क्या है ?

4. प्राकृतिक प्रवृत्ति और आत्मा में क्या अंतर है ?

5. वनस्पतिक आत्मा और पाशविक व मानवीय आत्मा के मध्य क्या अंतर है ? और यह अंतर क़यामत के विषय पर क्या प्रभाव डाल सकता है ?

6. क़यामत की सही कल्पना के लिए कौन से सिद्धान्तों की आवश्यकता है?

7. आत्मा व शरीर से मिल कर बनने वाले मनुष्य तथा रासायनिक मिश्रण से बनने वाली वस्तुओं में क्या अंतर है ?

---

[1] सजदह – 11

तैंतालिसवॉं पाठ

# आत्मा का निराकार होना

- भूमिका
- आत्मा के निराकार होने के बौद्धिक प्रमाण
- कुरआनी प्रमाण

## भूमिका

हम यह जान चुके हैं कि क़यामत का विषय , आत्मा के विषय पर आधारित है , अर्थात उसी समय यह कहा जा सकता है कि मरने के बाद जो जीवित होगा वह वही पहले वाला व्यक्ति होगा कि जब उस की आत्मा , शरीर के नष्ट हो जाने के बाद भी बाकी रहती हो । दूसरे शब्दों में : प्रत्येक मनुष्य के पास भौतिक शरीर के अलावा , एक गैर भौतिक व शरीर से अलग तत्व भी होता है अन्यथा , उसी व्यक्ति के लिए पुर्नजीवन की कल्पना , तार्किक नहीं होगी ।

तो फिर क़यामत तथा उस से संबंधित विषयों पर चर्चा आंरभ करने से पूर्व , इस बात को सिद्ध करना आवश्यक है । इसी लिए इस पाठ को हम ने इसी विषय से विशेष किया है और उसे प्रमाणित करने के लिए दो मार्ग अपनायें हैं : एक बौद्धिक मार्ग और दूसरा ईश्वरीय संदेश का मार्ग ।

## आत्मा के गैर भौतिक होने के बौद्धिक तर्क

प्राचीन काल से ही दर्शनशास्त्री व बुद्धिजीवी , आत्मा के बारे में अत्याधिक चर्चा करते आए हैं और विशेष कर इस्लामी दार्शनिकों ने इस विषय पर बहुत अधिक ध्यान दिया है । यही कारण है कि उन्हों ने अपनी दर्शनशास्त्र की किताबों में इस विषय पर विस्तार से चर्चा करने के अलावा , इस सदंर्भ में बहुत सी किताबें विशेष रूप से भी लिखी हैं और उन लोगों के मतों को कि जो आत्मा को शरीर की एक विशेषता तथा भौतिक प्रवृत्ति मानते हैं विभिन्न तर्कों द्वारा रद्द किया है ।

स्पष्ट है कि इस प्रकार के विषय पर विस्तारपूर्वक चर्चा इस किताब में नहीं की जा सकती इसी लिए , हम यहाँ पर केवल एक संक्षिप्त चर्चा पर ही संतोष करेंगे और यह प्रयास करेंगे कि इस अध्याय में स्पष्ट व्याख्या व मज़बूत तर्कों द्वारा अपनी बात सिद्ध करें । इस चर्चा को जो कई बौद्धिक तर्कों पर आधारित है इस भूमिका के साथ आरंभ कर रहे हैं :

हम अपनी त्वचा के रंग और शरीर को अपनी आँखों से देखते हैं और उस के खुरदुरेपन व नर्मी को छू कर महसूस करते हैं किंतु शरीर के भीतर की स्थिति को परोक्ष रूप से ही महसूस कर सकते हैं । किंतु डर , प्रेम, आक्रोश, इरादे तथा विचारों को हम इन्द्रियों की सहायता के बिना भी समझते हैं और उस ष्मैंष्को भी जानते हैं जिस की यह सारी दशाएं हैं किंतु इस के लिए हमें छूने , देखने , सुनने अथवा सूँघने आदि की आवश्यकता नहीं होती ।

इस प्रकार से मनुष्य , सामूहिक रूप से दो प्रकार की इन्द्रियों का स्वामी होता है : एक वह ज्ञान जिसे इन्द्रियों द्वारा महसूस करके प्राप्त किया जा सकता है और दूसरा वह जिस के लिए उस की आवश्यकता नहीं होती ।

दूसरी बात यह कि इन्द्रियों द्वारा गलती के दृष्टिगत , संभव है पहले प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति में गलती हो जाए किंतु दूसरे प्रकार के ज्ञान में ऐसा नहीं है क्यों उस में कभी गलती नहीं होती उदाहरण स्वरूप यह संभव है कि किसी को यह संदेह हो जाए कि क्या उस की त्वचा का रंग वही है जो उसे लग रहा है या नहीं । किंतु यह संभव नहीं है कि कोई इस बात में संदेह करे कि क्या उस के मन में कोई विचार है या नहीं या उस ने कोई काम करने का फैसला किया है या नहीं या उसे संदेह है या नहीं !

यह , वही विषय है कि जिसे दर्शन शास्त्र में इस प्रकार से कहा जाता हैः साक्षात ज्ञान , सीधे तौर पर वास्तविकताओं से संबंधित होता है इस लिए उस में गलती की संभावना नहीं होती किंतु प्राप्त किया हुआ ज्ञान चूँकि इन्द्रियों की सहायता से प्राप्त होता है इस लिए उस में संदेह व शंका हो सकती है।

अर्थात मनुष्य की सब से अधिक विश्वस्त जानकारियाँ व ज्ञान वह हैं जो उसे साक्षात ज्ञान के बाद प्राप्त होती हैं जैसे विचार , फैसले तथा अन्य मनोस्थितियाँ । इस आधार पर उस ष्मैंष की उपस्थिति में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता जो बोधक , विचारक व निर्णय लेने वाला होता है। जैसे डर , प्रेम व आक्रोश आदि। इस प्रकार की मनोस्थितियों के होने या न होने के बारे में किसी को संदेह नहीं हो सकता ।

अब प्रश्न यह है कि क्या ष्मैंष वही भौतिक व महसूस किया जाने वाला शरीर है और यह मनोस्थितियाँ भी शरीर की विशेषताएं हैं या यह कि उन का अस्तित्व शरीर के अस्तित्व से अलग है भले ही ष्मैंष शरीर से अत्याधिक निकट संबधं रखता हो और अपने बहुत से कार्य शरीर द्वारा करता हो और उसे प्रभावित करता हो और उस के प्रभाव में आता हो ?

इस भूमिका के दृष्टिगत , इस प्रश्न का उत्तर , सरलता से दिया जा सकता है , क्योंकि :

पहली बात तो यह कि ष्मैंष को साक्षात ज्ञान द्वारा सीधे रूप से महसूस किया जाता है किंतु शरीर के अस्तित्व को इन्द्रियों की सहायता से पहचानना होता है तो फिर यह ष्मैंष अर्थात आत्मा ,शरीर से अलग कोई वस्तु है।

दूसरी बात यह कि ष्मैंष ऐसा अस्तित्व है कि जो दसियों वर्ष , एकता व वास्तविक व्यक्तित्व के साथ सुरक्षित व बाकी रहता है और इस एकता व व्यक्तित्व को हम साक्षात रूप से सीधे ज्ञान द्वारा समझते हैं कि जिस में गलती की संभावना नहीं होती जब कि शरीर के अंग कई बार बदल चुके होते हैं , और पहले व बाद के अशो के मध्य वास्तविक एकता का कोई मापदंड नहीं होता ।

तीसरी बात यह कि ष्मैंष गैर मिश्रित व अविभाजनीय वस्तु है और उदाहरण स्वरूप उसे षआधे मैंष में बॉटा नहीं जा सकता जब कि शरीर के अंग कई और विभाजन योग्य होते हैं।

चौथी बात यह कि आभास व इरादे आदि जैसी कोई भी मनोदशा पदार्थ की मुख्य विशेषताओं अर्थात विस्तार व विभाजन की योग्यता नहीं

रखती और इस प्रकार की गैर भौतिक वस्तुओं को पदार्थ अर्थात शरीर की विशेषताओं में से नहीं गिना जा सकता । इस प्रकार से यह मनोदशाएं , जिस वस्तु से संबंधित होगीं उस का मूल तत्व तथा गैर भौतिक होना आवश्यक है।

आत्मा के अस्तित्व तथा शरीर की मृत्यु के बाद भी उस के बाकी रहने के संदर्भ में अन्य संतोषजनक प्रमाणों में सच्चे सपनों आदि की ओर भी संकेत किया जा सकता है । इस के अलावा ईश्वर के विशेष दासों के चमत्कारों बल्कि योगियों के कुछ कामों को भी आत्मा तथा उस के गैर भौतिक होने का प्रमाण बताया जा सकता है। जिस के बारे में चर्चा के लिए अलग से एक किताब की आवश्यकता है।

## कुरआनी प्रमाण

कुरआन मजीद की दृष्टि में मनुष्य की आत्मा के अस्तित्व के बारे में कोई शंका नहीं है और आत्मा के उच्च स्थान के कारण उसे ईश्वर से संबंधित बताया गया है। जैसा कि ईश्वर , मनुष्य की रचना के बारे में कहता है:

**और उस में उस ने स्वंय से संबंधित आत्मा का कुछ अशं फूँका ।** [1]

यद्यपि इस अर्थ यह नहीं है कि ईश्वर ने अपनी भीतर से कोई वस्तु अलग की और उसे मनुष्य के भीतर रखा । इसी प्रकार हज़रत आदम अलैहिस्सलाम के जन्म के बारे में आया है:

**और उस में मैं ने अपने से संबंधित आत्मा फूँकी ।** [2]

इसी प्रकार कई अन्य आयतों से यह स्पष्ट होता है कि आत्मा शरीर और उस की विशेषताओं व गुणों से अलग कोई वस्तु है जो शरीर के बिना भी

---

[1] सजदह – 9

[2] हिज्र – 29

बाकी रहने की योग्यता रखती है । उदाहरण स्वरूप ईश्वर का इन्कार करने वालों के इस कथन का वर्णन है :

**क्या जब हम भूमि के अंदर लापता हो जाएगें तो हमें फिर से बनाया जाएगा ।** [1]

इस के उत्तर में ईश्वर की ओर से कहा गया :

**कह दो तुम्हें मौत का फरिश्ता ले जाता है जिसे तुम्हारे लिए तैनात किया गया है फिर तुम अपने पालनहार की ओर लौटाए जाते हो ।** [2]

इस प्रकार से मनुष्य की पहचान का मापदंड , उस की वह आत्मा है जिसे मौत का फरिश्ता लेता है और जो सुरक्षित रहती है न कि वह उन शरीर के अंगों को लेता है जो धरती पर पड़े होते हैं और फिर नष्ट हो जाते हैं ।

एक अन्य स्थान पर आया है :

**ईश्वर आत्माओं को उन की मृत्यु के समय ले लेता है और उन की आत्माओं को जो नींद में मरे हुए नहीं होते तो जिस की मौत का समय आ चुका होता है, उसे ले लेता है और दूसरी को उस के निर्धारित समय तक वापस भेज देता है ।** [3]

इसी प्रकार अत्याचारियों की मृत्यु की शैली के बारे में कहता है:

**और जब अत्याचारी मृत्यु की बेहोशी में होते हैं और फरिश्ते हाथों को फैलाए होते हैं ; और उन से कहते हैं कि द्ध अपनी आत्माओं को निकालो ।** [4]

इन आयतों तथा इस प्रकार की अन्य आयतों से यह पता चलता है कि हर एक की आत्मा एक ऐसी वस्तु है जिस के लिए ईश्वर ने मौत के फरिश्ते

---

[1] सजदह– 10

[2] सजदह– 11

[3] ज़ोमर – 42

[4] अनमाम– 93

तथा अन्य फरिश्तों को तैनात किया है और वह उसे लेते हैं और शरीर के नष्ट होने से आत्मा के अस्तित्व तथा व्यक्तित्व की एकता को कोई नुकसान नहीं पहुँचता ।

निष्कर्ष यह निकला कि पहली बात तो यह कि मनुष्य में , आत्मा नाम की एक वस्तु मौजूद होती है , दूसरी बात यह कि मानवीय आत्मा , शरीर से अलग होकर भी स्वाधीन रूप से बाकी रहने की क्षमता रखती है अर्थात वह शरीर की विशेषताओं और गुणों की भाँति नहीं होती जो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं और तीसरी बात यह कि हर व्यक्ति की पहचान उस की आत्मा पर निर्भर होती है । दूसरे शब्दों में : प्रत्येक मनुष्य की वास्तविकता , वास्तव में उस की वही आत्मा होती है और शरीर , आत्मा के लिए एक साधन मात्र होता है।

प्रश्न

1. साक्षात ज्ञान और प्राप्त किए गये ज्ञान की परिभाषा और दोनों में अंतर को स्पष्ट करें ।

2. आत्मा के गैर भौतिक होने के बौद्धिक तर्कों का वर्णन करें ।

3. आत्मा के गैर भौतिक होने को और कौन से मार्गों से सिद्ध किया जा सकता है?

4. इस चर्चा से सबंधित कुरआन की आयतों का उल्लेख करें ।

5. इन आयतों से क्या निष्कर्ष निकलता है ?

चौवालिसवाँ पाठ

# क़यामत का प्रमाण

- भूमिका
- तत्वदर्शिता का तर्क
- न्याय का तर्क

## भूमिका

जैसा कि इस किताब के आंरभ में हम ने संकेत किया क़यामत पर विश्वास और परलोक में हर मनुष्य का जीवित होना , समस्त ईश्वरीय धर्मों में एक महत्वपूर्ण विश्वास रहा है और ईश्वरीय दूतों ने इस विश्वास पर बहुत अधिक बल दिया है तथा इस विचार व विश्वास को लोगों के मन में बिठाने के लिए , अत्याधिक दुखों व समस्याओं का सामना किया है। कुरआन मजीद में क़यामत और ईश्वर के न्याय में विश्वास को , एक ईश्वर पर विश्वास के समान बताया गया है और लगभग बीस से अधिक आयतों में ईश्वर के नाम के साथ साथ परलोक का उल्लेख किया गया है ।

इस भाग के आंरभ में हम ने हिसाब – किताब व न्याय प्रेम का महत्व स्पष्ट किया तथा यह भी बताया कि क़यामत की सही कल्पना , उस आत्मा को स्वीकार करने पर आधारित है जो हर मनुष्य की पहचान का मापदंड हो और मृत्यु के बाद बाकी रहे ताकि यह कहा जा सके कि जो व्यक्ति इस संसार से गया है वही पुनः परलोक में जीवित होगा । इस के बाद हम ने इस आत्मा की उपस्थिति को बुद्धि व ईश्वरीय संदेशों द्वारा प्रमाणित किया ताकि मनुष्य के अनन्त जीवन के बारे में चर्चा की भूमिका प्रशस्त हो सके । अब बारी है कि हम इस महत्वपूर्ण विश्वास को प्रमाणित करें ।

जिस तरह से आत्मा का विषय दो मार्गो से सिद्ध हुआ , उसी प्रकार इस विषय को भी दो मार्गों से प्रमाणित किया जा सकता है और हम इस पाठ में , क़यामत के आवश्यक होने के दो बौद्धिक तर्कों पर चर्चा करेगें और उस के

बाद क़यामत की संभावना व आवश्यकता के संदर्भ में कुरआन की आयतों का उल्लेख करेंगे ।

## दार्शनिक तर्क

ईश्वर की पहचान संबधीं चर्चा में हम ने यह स्पष्ट किया था कि ईश्वर द्वारा सृष्टि की रचना , निरर्थक व लक्ष्यहीन नहीं है बल्कि भलाई व परिपूर्णता के मुख्य स्रोत के रूप में ईश्वर ने इस संसार की रचना कुछ इस प्रकार से की है कि यथासंभव भलाई व परिपूर्णता को सुनिश्चित बनाया जा सके । इस प्रकार से हम ने ईश्वर के लिए तत्वदर्शिता के गुण को प्रमाणित किया कि जिस के लिए यह आवश्यक था कि वह अपनी रचनओं को, उस परिपूर्णता व भलाई तक पहुँचाए जिस की योग्यता उन में है। किंतु चूँकि भौतिक संसार में बहुत सी वस्तुओं में परस्पर टकराव होता है और भौतिक वस्तुओं की भलाईयां व परिपूर्णताएं एक दूसरे से टकराव रखती हैं इस लिए ईश्वर की तत्वदर्शिता व ज्ञान के लिए आवश्यक है कि वह रचनाओं को कुछ इस प्रकार से व्यवस्थित करे कि सामूहिक रूप से अधिक से अधिक भलाई उन तक पहुँचे और अधिक से अधिक उन के सामूहिक हितों की रक्षा हो सके । दूसरे शब्दों में : विश्व की व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ हो । इसी लिए तत्वों के प्रकार, संख्या, मात्रा, किय्रा, प्रतिकिया तथा गतिशीलता को कुछ इस प्रकार से सुव्यवस्थित किया जाए कि पेड़– पौधों , पशुओं और अन्ततः , मनुष्य की रचना की भूमिका प्रशस्त हो कि जो इस संसार का सब से अधिक परिपूर्ण अस्तित्व है। । और अगर भौतिक संसार को कुछ इस प्रकार बनाया गया होता कि उस में प्राणियों का जन्म व विकास संभव न होता तो यह स्थिति ईश्वरीय ज्ञान व कृपा के विपरीत होती ।

अब यहॉ पर हम आगे यह कहते हैं कि इस बात के दृष्टिगत कि मनुष्य, बाक़ी रहने वाली आत्मा का स्वामी होता है और अनन्त परिपूर्णता को प्राप्त कर सकता है , वह भी ऐसी परिपूर्णताएं जो महत्व व मूल्य की दृष्टि से

किसी भी प्रकार की भौतिक परिपूर्णता से तुलनीय नहीं हैं , अगर उस का जीवन इसी संसारिक जीवन तक ही सीमित रहे तो यह स्थिति ईश्वरीय तत्व दर्शिता व कृपा से मेल नहीं खाएगी । विशेष कर इस बात के दृष्टिगत भी संसारिक जीवन , बहुत से दुखों , समस्याओं व कठिनाइयों के साथ होता है और प्रायः कोई भी सुख व आनंद बहुत से दुखों व कठिनाइयों को सहन किए बिना प्राप्त नहीं होता यहाँ तक कि अगर हिसाब लगाया जाए तो मनुष्य इस नतीजे पर पहुँच सकता है कि सीमित सुख व आंनद के लिए इतने अधिक दुखों व कठिनयों को सहन करना सही नहीं है। और इसी लिए बहुत से लोगों में निरर्थकता व खोखले पन का भाव पैदा हो जाता है और बहुत से लोग स्वाभाविक रूप से जीवन की अत्याधिक लालसा रखने के बावजूद , आत्महत्या कर लेते हैं ।

वस्तुतः अगर मनुष्य का जीवन इस के अलावा कुछ नहीं होता कि निंरतर परिश्रम करे और प्राकृतिक व सामाजिक समस्याओं से जूझता रहे ताकि कुछ क्षण सुख व आंनद के प्राप्त कर सके और फिर थकन से चूर होकर सो जाए ताकि जब उस का शरीर दोबारा गतिविधियों के लिए तैयार हो जाए तो फिर से वह वही सब कुछ करे। उदाहरण स्वरूप एक रोटी के लिए मेहनत करे ताकि उसे खाकर कुछ क्षण आंनद का आभास कर सके और बस ! तो निश्चित रूप से बुद्धि इस प्रकार के दुखदायी व थका देने वाले व उबा देने वाले क्रम को किसी भी दशा में स्वीकार नहीं करते और उसे स्वीकार करने की किसी भी स्थिति में राय नहीं देती । इस प्रकार के जीवन का सब से अच्छा उदाहरण यह है कि कोई कार चालक परिश्रम करके अपनी कार को पेट्रोल पंप तक पहुँचाए ताकि उस की टंकी भर सके और फिर उस भरी हुई टंकी का पेट्रोल इस्तेमाल करके एक दूसरे पेट्रोल पंप तक जाए ताकि वहाँ फिर से कार की टंकी भर सके और यह काम उस समय तक करता रहे जब तक उस की कार पुरानी होकर या किसी वस्तु से टकरा कर ध्वस्त न हो जाए!

स्पष्ट है कि मनुष्य के बारे में इस प्रकार की विचार धारा का परिणाम खोखले पन के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा।

दूसरी ओर , मनुष्य की एक मुख्य प्रवृत्ति व इच्छा , अमरत्व प्रेम है कि जो ईश्वर ने उस के अस्तित्व में निहित किया है और यह उस अत्याधिक शक्तिशाली ऊर्जा के समान है जो मनुष्य को , अनन्तता च अमरत्च की ओर बढ़ाती है और सदैव उस की तीव्रता में वृद्धि करती रहती है। अब अगर यह मान लिया जाए कि इस गतिशीलता का परिणाम बस यही है कि गति की चरम सीमा पर, वह किसी चट्टान से टकरा कर ध्वस्त हो जाए तो क्या उस शक्तिशाली ऊर्जा को इस प्रकार के उद्देश्य व अंत के लिए पैदा करना सही होगा ?! तो इस प्रकार के स्वाभाविक रुझान का होना उसी समय ईश्वर की तत्वदर्शिता व कृपा के अनुरूप होगा जब इस नश्वर व समाप्त होने वाले जीवन के अलावा भी कोई और जीवन व संसार हो ।

नतीजा यह निकला कि ईश्वरीय कृपा व तत्वदर्शिता तथा मनुष्य के लिए अनन्त कालिक जीवन की संभावना जैसे दो विषयों को मिला कर हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इस सीमित सांसारिक जीवन के बाद मनुष्य के लिए एक अन्य जीवन का होना भी आवश्यक है ताकि ईश्वरीय ज्ञान व तत्वदर्शिता के विपरीत न हो।

इसी प्रकार अमरत्व प्रेम को एक अन्य भूमिका कहा जा सकता है जिसे ईश्वरीय कृपा व तत्वदर्शिता के साथ मिला कर इस संदर्भ में एक अन्य बौद्धिक प्रमाण पेश किया जा सकता है।

इस के साथ ही यह भी स्पष्ट हुआ कि मनुष्य के अनन्त जीवन के लिए एक ऐसी व्यवस्था का होना आवश्यक है जिस में सांसारिक जीवन की भॉति दुख व समस्याएं न हों अन्यथा , इसी सांसारिक जीवन को सदैव के लिए जारी रखना भी यदि संभव होता तो वह भी ईश्वरीय कृपा व तत्वदर्शिता के विपरीत होता।

## न्याय का तर्क

इस संसार में , मनुष्य अच्छे व बुरे कामों को चुनने के मामले में स्वतंत्र है। एक ओर कुछ ऐसे लोग होते हैं जो अपनी पूरी ज़िन्दगी , ईश्वर की उपासना और लोगों की सेवा में व्यतीत कर देते हैं । दूसरी ओर ऐसे लोग भी होते हैं जो अपनी शैतानी इच्छाओं की पूर्ति के लिए, अत्याधिक बुरे काम व अत्याचार करने से भी नहीं सकुचाते और मूल रूप से इस संसार में मनुष्य की रचना और उसे परस्पर विरोधी रुझानों तथा इरादे व चयन की क्षमता एवं विभिन्न प्रकार की बौद्धिक व गैर बौद्धिक पहचान प्रदान करने तथा उस के लिए विभिन्न प्रकार के व्यवहार की भूमिका प्रशस्त करने और उसे भलाई व बुराई के मोड़ पर खड़ा करने का लक्ष्य यह है कि उस की कई आयामों से परीक्षा ले जाए ताकि वह अपनी परिपूर्णता का मार्ग अपने अधिकार व चयन शक्ति के बल पर चुन सके और अपना कर्म फल प्राप्त कर सके । वास्तव में इस संसार में मनुष्य का पूरा जीवन, परीक्षा व अपनी मानवीय पहचान रखने और उस की ओर ध्यान देना है । यहाँ तक कि जीवन के अंतिम क्षणों में भी उस की परीक्षा जारी रहती है।

किंतु हम देखते हैं कि इस संसार में , भले व बुरे लोग , अपने कर्मो के हिसाब से पुरस्कृत अथवा दंडित नहीं होते और बहुत से महापापी व अपराधी अत्याधिक सुखों में जीवन व्यतीत करते हैं । इसी लिए मूल रूप से ससांरिक जीवन , बहुत से कर्मो के पुरस्कार अथवा दंड की क्षमता ही नहीं रखता । उदाहरण स्वरूप अगर किसी ने हज़ारों निर्दोषों की हत्या की हो तो उसे एक बार से अधिक मृत्युदंड नहीं दिया जा सकता और इस दशा में उस के अन्य अपराधों पर उसे किसी प्रकार का दंड नहीं दिया सकता जब कि ईश्वरीय न्याय

के लिए यह आवश्यक है कि जो भी छोटे से छोटा पाप करे या भलाई करे उसे उस का फल मिलना चाहिए ।

तो जिस प्रकार से यह संसार , कर्तव्यों के निर्वाह व परीक्षा का स्थान है , उसी प्रकार एक ऐसे अन्य स्थान का होना भी आवश्यक है जहॉ कर्म फल व भले–बुरे कर्मो पर पुरस्कार अथवा दंड दिया जाता हो और हर एक को , वही मिले जिस की उस में योग्यता हो ताकि ईश्वर का न्याय व्यवहारिक हो सके ।

इसी के साथ इस चर्चा से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि परलोक , मार्ग के चयन व कर्तव्यों के निर्वाह का स्थान नहीं है । इस संदर्भ में हम आगे के पाठों में अधिक चर्चा करेंगे ।

प्रश्न

1. ईश्वरीय तत्व दर्शिता और सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था से उस के संबधं की समीक्षा करें

2. दार्शनिक तर्क को दो मार्गो से स्पष्ट करें ।

3. इस तर्क से क़यामत के अलावा और कौन सा सिद्धान्त प्रमाणित होता है।

4. इस संसार में मनुष्य की रचना का उद्देश्य क्या है ?

5. न्याय के तर्क का विस्तार पूर्वक वर्णन करें ।

6. इस तर्क से कौन सी विशेष बात समझ में आती है?

पैंतालिसवाँ पाठ

# कुरआन में कयामत

- भूमिका
- क़यामत के इन्कार का कोई कारण नहीं है
- क़यामत से मिलते जुलती घटनाएं
- पेड़– पौधों का उगना
- असहाबे कहफ की नींद
- पशुओं का जीवित होना
- कुछ मनुष्यों का जीवित होना

# भूमिका

क़यामत को सिद्ध करने तथा उस का इन्कार करने वालों के सामने प्रमाण लाने की दृष्टि से कुरआन की आयतों को पॉच भागों में बॉटा जा सकता है।

1.वह आयतें कि जो इस बात पर बल देती हैं कि क़यामत न होने पर कोई प्रमाण नहीं है । यह आयतें , इन्कार करने वालों को निहत्था करने की भॉति हैं।

2. वह आयतें , जो क़यामत से मिलती जुलती घटनाओं की ओर संकेत करती हैं ताकि उसे संभव दर्शाया जा सके ।

3. वह आयतें कि जो इन्कार करने वालों की शंकाओं का उत्तर देती हैं और उस के घटित होने की संभावना को निश्चित बनाती हैं ।

4.वह आयतें जो क़यामत को ईश्वर के निश्चित वचन के रूप मे बताती हैं और वास्तव में क़यामत को सच्ची जानकारी देने वाले के कथन द्वारा सिद्ध करती हैं ।

5. वह आयतें जो क़यामत के आवश्यक होने पर बौद्धिक तर्कों की ओर संकेत करती हैं ।

वास्तव में आंरभ की तीन क़िस्में , क़यामत की संभावना पर और आखिर की दो क़िस्में , उस के घटना और आवश्यक होने पर बल देती हैं ।

## क़यामत के इन्कार का कोई तर्क नहीं है

गलत विचारधारा रखने वालों का उत्तर देने के लिए कुरआन मजीद की एक शैली यह है कि वह उन से तर्क व प्रमाण लाने की मॉग करता है ताकि यह स्पष्ट हो जाए कि उन की विचारधारा का बौद्धिक व तार्किक आधार नहीं है, जैसा कि कुरआन मजीद की कई आयतों में आया है: **कह दो , अपनी दलील ले आओ।** [1]

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर कुरआन में आया है कि इस प्रकार के विचार रखने वालों के पास अपने विचारों के लिए प्रमाण नहीं होते बल्कि वह बिना तर्क की अपनी धारणाओं के आधार पर अपनी बात कहते हैं।[2]

कुरआन , क़यामत का इन्कार करने वालों के बारे में कहता है:

**और उन्हों ने कहा इस सांसारिक जीवन के अतिरिक्त कुछ नहीं है,हम जीते हैं और मरते हैं और हम को केवल युग ही मारता है यद्यपि उन के पास कोई ज्ञान नहीं है, वे तो केवल धारणा रखते हैं।** [3]

इसी प्रकार अन्य बहुत सी आयतों में इस बात पर बल दिया गया है कि क़यामत का इन्कार , केवल धारणा के आधार पर होता है और उस के लिए इन्कार करने वालों के पास कोई प्रमाण नहीं होता । यद्यपि यह भी संभव है कि निराधार धारणाएं अगर आंतरिक इच्छाओं व सुखभोग के अनुकूल हों तो वह सुखभोगी लोगों के लिए स्वीकारीय होती हैं और धीरे धीरे इस धारणा के अनुसार वे काम करते हैं और फिर यह धारणा , उन लोगों के लिए एक अटल

---

[1] बक़रह – 111, अंबिया – 24 , नम्ल – 64

[2] मोमेनून– 117 , अनआम – 100,119,148 तथा और बहुत सी आयतों में।

[3] क़सस – 39,कहफ–36 तथा अन्य बहुत सी आयतें।

विश्वास का रूप धारण कर लेती है और फिर वे अपने इस विश्वास पर अड़े भी रहते हैं ।

कुरआन मजीद ने क़यामत का इन्कार करने वालों की बातों का उल्लेख किया है कि जिन में से अधिकांश क़यामत की संभावना से इन्कार तथा इस संदर्भ में शंका पर आधारित हैं । इसी लिए एक ओर , कुरआन में क़यामत जैसी अन्य घटनाओं का वर्णन किया गया है ताकि उस की संभावना को सिद्ध किया जा सके और दूसरी ओर शंकाओं के उत्तर की ओर संकेत किया गया है ताकि किसी भी प्रकार की शंका बची न रहे तथा क़यामत की संभावना पूर्ण रूप से सिद्ध हो जाए। किंतु कुरआन इसी को पर्याप्त नहीं समझता बल्कि इस ईश्वरीय वचन के निश्चित बताने के साथ ही साथ ईश्वरीय संदेशों तथा बौद्धिक तर्कों द्वारा क़यामत की आवश्यकता पर बल देता है ताकि लोगों के पास उसे स्वीकार न करने का कोई बहाना बाकी न बचे। हम अगले पाठों में उस का वर्णन करें।

## क़यामत से मिलती जुलती घटनाएं

1. पेड़ पौधों का उगना । मृत्यु के बाद मनुष्य का जीवित होना उसी प्रकार है जैसे सूखने के बाद पेड़ पौधों का फिर से हरा– भरा होना । इस आधार पर , लोगों की ऑखों के सामने सदैव उगने वाले इन पौधों पर थोड़ा सा विचार करने से ही , लोगों को मरने के बाद एक नये जीवन की संभावना पर विश्वास हो जाएगा । वास्तव में जो वस्तु इस प्रक्रिया को साधारण समझने और उस के महत्व की अनदेखी का कारण बनती है , इन दृश्यों को देखने की आदत पड़ जाना है अन्यथा वृक्षों के सूख जाने के बाद फिर से हरा भरा होने और मृत्यु के बाद मनुष्य को पुनः जीवन प्राप्त होने में कोई अंतर नहीं है।

कुरआने मजीद इस आदत के पर्दे को हटाने के लिए , बार बार लोगों को इस ओर आकृष्ट करता तथा मृत्यु के बाद पुर्नजीवन को उस के समान बताता है। उदाहरण स्वरूप इस आयत को पेश किया जा सकता है:

**तो तुम ने देखा ईश्वर की कृपा को चिन्हों को कि उस ने किस प्रकार भूमि को उस की मृत्यु के बाद जीवित किया , निश्चित रूप से वह मरे हुए लोगों को जीवित करने वाला है और वह हर वस्तु पर सक्षम है।**[1]

**2. अस्हाबे कहफ की नींद** : कुरआन मजीद में असहाबे कहफ[2] के आश्चर्य जनक क़िस्से को बताते हुए कहता है:

**और इस तरह हम ने लोगों को उन से अवगत कराया ताकि वह जान लें कि ईश्वर का वचन सत्य है और क़यामत आने वाली है जिस में कोई संदेह नहीं है...।**[3]

निश्चित रूप से इस विचित्र घटना के बारे में जानकारी कि जिस के अंतर्गत कुछ लोग तीन सौ से अधिक वर्षो तक सोते रहने के बाद नींद से जागे हों , क़यामत की संभावना के बारे में मनुष्य के विश्वास में विशेष भूमिका रखती है क्योंकि हर नींद मृत्यु के समान होती है जैसा कि कहा जाता है , नींद मृत्यु की बहन होती है और जागना , मृत्यु के बाद पुर्नजीवन की भाँति होता है किंतु स्वाभाविक नींद में शरीर के अंग स्वाभाविक रूप से अपना काम करते रहते हैं इस लिए आत्मा की शरीर में पुनः वापसी हो जाती है और इस से किसी को अचरज भी नहीं होता किंतु जो शरीर तीन सौ वर्षो तक बिना कुछ खाए पीए रहा हो उसे प्राकृतिक नियम के अनुसार नष्ट हो जाना चाहिए तथा उस में आत्मा की पुनः वापसी संभव नहीं होनी चाहिए । इस प्रकार की असाधारण

---

[1] रोम– 50

[2] अर्थात गुफा वाले ।

[3] कहफ– 21

घटनाएं निश्चित रूप से इस भौतिक संसार से हट कर किसी अन्य संसार की उपस्थिति को चिन्हित करती हैं और मनुष्य को यह समझाती हैं कि आत्मा की शरीर में वापसी , सदैव ही प्राकृतिक कारकों व दशाओं पर ही निर्भर नहीं होती। तो इस प्रकार से मनुष्य का पुर्नजीवन भले ही इस संसार में ज़िंदगी व मौत के क़ाननू के विपरीत है किंतु ईश्वरीय वचन के अनुसार ऐसा होना निश्चित है।

**3. पशुओं का जीवित होनाः** कुरआन मजीद ने इसी प्रकार कुछ पशुओं के मरने के बाद जीवित होने की ओर संकेत किया है उदाहरण स्वरूप हज़रत इब्रहीम अलैहिस्सलाम के हाथों चार पंछियों के जीवित होने और इसी प्रकार एक पैगम्बर की सवारी के पशु के जीवित होने की घटनाएं कि बाद में जिस का वर्णन किया जाएगा कुरआन में वर्णित हैं । इस प्रकार से अगर पशुओं का पुर्नजीवन संभव है तो फिर मनुष्य का पुर्नजीवन भी असंभव नहीं हो सकता।

**4. इसी संसार में कुछ मनुष्यों का मरने के बाद जीवित होनाः** सब से अधिक महत्वपूर्ण इसी संसार में कुछ लोगों के पुनः जीवित होने की घटनाएं हैं कि जिन में से कुछ घटनाओं का कुरआन मजीद ने वर्णन किया है। उदाहरण स्वरूप बनी इस्राईल जाति के एक पैगम्बर की घटना का कुरआन में वर्णन हैं कि वे एक दिन ऐसे गॉव से गुज़रे जहॉ के लोग मर चुके थे और जब उन्हों ने लोगों के क्षत विक्षत शव देखे तो उन के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि ईश्वर इन लोगों को किस प्रकार से पुनः जीवित करेगा ? ईश्वर ने उन के शरीर से आत्मा निकाल ली और सौ वर्षों के बाद उन्हें पुनः जीवित किया और उन से पूछा : यहॉ कितने दिनों तक रुके रहे ? उन्हों ने उत्तर दिया : एक दिन या एक दिन से कुछ कम ! उन से कहा गयाः नहीं तुम ने यहॉ सौ वर्ष बिताये हैं, तो फिर देखो कि एक ओर तो तुम्हारा खाना और पानी सुरक्षित है किंतु तुम्हारी सवारी नष्ट हो चुकी है ! और अब देखों के हम किस प्रकार इस पशु की

हड्डियों को एक दूसरे से जोड़ते हैं , फिर उन पर मांस चढ़ाते हैं और उसे जीवित करते हैं ।[1]

एक अन्य उदाहरण बनी इस्राईल के उन लोगों के बारे में है जिन्हों ने हज़रत मूसा से कहा था कि जब तक हम ईश्वर को साक्षात रूप से नहीं देख लेते तुम पर विश्वास नहीं करेंगे और ईश्वर ने उन्हें आसमानी बिजली से मार दिया किंतु हज़रत मूसा की दुआ के बाद उन्हें पुनः जीवित कर दिया ।[2]

इसी प्रकार बनी इस्राईल के एक व्यक्ति के पुनः जीवित होने की घटना का भी कुरआन में वर्णन है जिसे हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम के काल में मार डाला गया था । इस पूरी घटना का वर्णन भी सूरए बक़रह में हुआ है और उस के बाद कहा गया है :

**और ईश्वर इसी प्रकार मरे हुए लोगों को जीवित करता है और तुम्हें अपने चिन्ह दिखाता है कि शायद तुम्हें बुद्धि आ जाए ।**[3]

इसी प्रकार हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के चमत्कार से कुछ लोगों के जीवित होन को भी क़यामत में मनुष्य के पुर्नजीवन के उदाहरण स्वरूप पेश किया जा सकता है ।[4]

---

[1] बक़रह– 259 ।

[2] बक़रह– 55–56

[3] बक़रह 67– 73

[4] आले इमरान – 49 , माएदह – 110

## प्रश्न

1. क़यामत का इन्कार करने वालों के साथ कुरआन के व्यवहार की शैली बताएं।

2. पेड़ पौधों के उगने और क़यामत में क्या समानता पाई जाती हैं ? और कुरआन में इस विषय को किस प्रकार बयान किया गया है ?

3. अस्हाबे कहफ की घटना से , क़यामत से संबंधित कौन से विषयों को चिन्हित किया गया है?

4. हज़रत इब्राहीम के हाथों कुछ पक्षियों के जीवित होने की घटना का वर्णन करें और क़यामत के विषय से उस के संबधं को स्पष्ट करें ।

5. कुरआने मजीद ने इस संसार में जीवित होने वाले किन लोगों का वर्णन किया है?

छियालिसवाँ पाठ

# शंकाओं पर कुरआन का उत्तर

- नष्ट हो गयी वस्तुओं को पुनः अस्तित्व देने से संबधी शंका
- शरीर में पुर्नजीवन की क्षमता के बारे में शंका
- कर्ता की शक्ति के बारे में शंका
- कर्ता के ज्ञान के बारे में शंका

कुरआन मजीद ने क़यामत का इन्कार करने वालों को जो उत्तर दिया है और जिस प्रकार के प्रमाण पेश किए हैं उन के स्वर से ऐसा लगता है कि इन्कार करने वालों के मन में कुछ शंकाएं थीं जिन के उचित उत्तरों को दृष्टि में रखते हुए हम यहाँ इस प्रकार से वर्णन कर रहे हैः

**1.नष्ट हो गयी वस्तुओं को पुनः अस्तित्व देने से संबधी शंका**

इस से पहले हम बता चुके हैं कि कुरआने मजीद उन लोगों के उत्तर में कि जो कहते थे कि किस प्रकार से संभव है कि मनुष्य , शरीर के नष्ट होने के बाद पुनः जीवित हो जाए , यह उत्तर देता है : तुम्हारी पहचान का आधार , तुम्हारी आत्माओं से है न कि तुम्हारे शरीर से कि जो धरती पर पड़े रहते हैं और नष्ट हो जाते हैं ।

इस संकेत से यह समझा जा सकता है कि क़यामत के विरोधियों के इन्कार का मुख्य कारण , वही शंका है जिसे दर्शनशास्त्र में ' नष्ट हुई वस्तु का पुनः पलटाना अंसभव ' कहा जाता है । अर्थात वे यह सोचते थे कि मनुष्य , बस यही भौतिक शरीर है कि जो मृत्यु द्वारा नष्ट हो जाता है और अगर वह पुनः जीवित होगा तो अन्य मनुष्य होगा क्योंकि किसी नष्ट हुई वस्तु को फिर से अस्तित्व में लाना असंभव है और इस की संभावना नहीं है ।

इस शंका का उत्तर कुरआने मजीद के आयतों से स्पष्ट होता है और वह यह है कि प्रत्येक मनुष्य की व्यक्तिगत पहचान , उस की आत्मा पर निर्भर होती है , दूसरे शब्दों में क़यामत नष्ट हुई वस्तु को पुनः बनाना नहीं है बल्कि बाकी रहने वाली आत्मा की वापसी है ।

## 2. शरीर में आत्मा की वापसी की क्षमता नहीं है

इस से पहले की शंका स्वंय क़यामत की संभावना के बारे में थी किंतु यह शंका उस के घटित होने के बारे में है । अर्थात भले ही आत्मा की शरीर में वापसी बौद्धिक रूप से असंभव नहीं है और उसे स्वीकार करने की दशा में किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं पाया जाता , किंतु इस वापसी के लिए शरीर में उस की क्षमता का होना भी आवश्यक है और हम देखते हैं कि जीवन के लिए विशेष प्रकार की शर्तों और परिस्थितियों का होना आवश्यक है उदाहरण स्वरूप गर्भ के बाद उस के अनुकूल परिस्थितियों का होना आवश्यक है जिस के अंतर्गत शिशु धीरे धीरे, कोख में बढ़ता और फिर मनुष्य का रूप धारण कर लेता है । किंतु जो शरीर नष्ट हो चुका हो , उस में जीवन व आत्मा की वापसी की योग्यता नहीं रह जाती।

इस शंका का उत्तर यह है कि संसार में दिखाई देने वाली यह व्यवस्था, एकमात्र संभव व्यवस्था नहीं है और इस संसार में जो कारक व परिस्थितियाँ प्रयोगों द्वारा पहचानी जाती हैं, वह एकमात्र कारक व परिस्थितियाँ नहीं कही जा सकतीं बल्कि संभव है कि किसी प्रक्रिया विशेष के लिए अन्य कारक भी हों जिन को पहचाना नहीं जा सका है । इस का प्रमाण यह है कि इसी संसार में कुछ लोगों के जीवित होने की असाधारण घटनाएं भी घटित हो चुकी हैं ।

इस उत्तर को कुरआने मजीद में इस प्रकार की कई असाधारण घटनाओं पर नज़र डालने से समझा जा सकता है।

## 3. कर्ता की शक्ति के बारे में शंका

एक अन्य शंका यह है कि किसी प्रक्रिया के लिए , व्यक्तिगत क्षमता व संभावना के अतिरिक्त , कर्ता में उस की शक्ति होना भी आवश्यक है और यह कहाँ से पता है कि ईश्वर पुर्नजीवन प्रदान करने की शक्ति रखता है ?

यह मूर्खतापूर्ण शंका उन लोगों की ओर से पेश की जाती है जिन को ईश्वर की अनन्त शक्ति का ज्ञान नहीं होता । इस का उत्तर यह है कि ईश्वर की शक्ति की कोई सीमा ही नहीं है और वह बौद्धिक रूप से संभव हर काम कर सकता है । जैसा कि उस ने इस महान सृष्टि की उस के करोड़ों आश्चर्यों के साथ रचना की है ।

**तो क्या उन्हों ने नहीं देखा कि ईश्वर ने आकाशों और धरती को बनाया और उन्हें पैदा करने में हारा नहीं तो वह मरे हुए लोगों को पुनः जीवित करने की शक्ति रखता है और वह कर काम की क्षमता रखता है ।**[1]

इस के अतिरिक्त भी , पुर्नरचना , प्रथम बार बनाने से अधिक कठिन नहीं है और न ही उस के लिए अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है बल्कि यह कहा जा सकता है कि दूसरी बार बनाना , पहली बार बनाने से अधिक सरल है क्योंकि केवल बनी हुई आत्मा को लौटाना ही होता है।

**तो फिर वे कहेगें कौन हमें लौटाएगा तो कह दो वही जिस ने तुम्हें पहली बार बनाया है तो वह तुम्हारे सामने अपने सिरों को हिलाएगें ।**[2]

**वही है जो रचना को बनाता है और फिर उसे पुनः बनाता है जो उस के लिए अधिक सरल है ।**[3]

## 4.कर्ता के ज्ञान के बारे में शंका

एक अन्य शंका यह है कि अगर ईश्वर मनुष्यों को जीवित करेगा और उन्हें उन के कर्मों का फल देगा तो इस के लिए एक ओर उसे बहुत से शरीरों

---

[1] अहक़ाफ़– 33 , यासीन – 81 , इसरा– 99 तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

[2] इसरा– 51 तथा अन्य कई आयतें ।

[3] रोम – 27

की पहचान होनी चाहिए ताकि उन में आत्मा को लौटाया जा सके और दूसरी ओर सारे लोगों के भले– बुरे कर्मों को भी याद रखना होगा ताकि प्रत्येक व्यक्ति को उस के कर्मों का फल दिया जा सके । तो फिर किस प्रकार से संभव है कि जो शरीर मिट्टी में मिल चुके होंगें और उन के कण मिट्टी बन चुके होंगे, उन्हें ईश्वर एक दूसरे से अलग करके पहचान ले, और किस प्रकार करोड़ों और अरबों वर्षों तक के मानव व्यवहार को याद रखा जा सकता है तथा उन पर कार्यवाही की जा सकती है?

यह शंका भी उन लोगों की ओर से पेश की गयी है जिन्हें ईश्वर के असीम व अनन्त ज्ञान की पहचान नहीं थी बल्कि वे ईश्वरीय ज्ञान को भी अपने अपूर्ण ज्ञान की ही भाँति समझते थे । इस शंका का उत्तर है कि ईश्वर के ज्ञान की कोई सीमा नहीं है और उसे हर वस्तु का ज्ञान है और ईश्वर कभी भी कुछ नहीं भूल सकता ।

कुरआने मजीद फिरऔन द्वारा हज़रत मूसा से पूछे गये प्रश्न का उल्लेख करता है:

**तो पहले की शताब्दियों का क्या हुआ?**

अर्थात अगर तुम्हारा ईश्वर लोगों को जीवित करने और उन के कर्मों पर उन का हिसाब लेने की शक्ति रखता है तो अतीत में मरने वालों का क्या हाल हुआ ?

तो हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम ने कहा :

**... उस का ज्ञान मेरे पालनहार को है , मेरा पालन हार न तो भटकता है और न ही भूलता है ।** [1]

इसी प्रकार एक अन्य आयत में इस शंका का उत्तर इस प्रकार दिया गया है:

---

[1] ताहा– 51–52

**कह दो! मरे हुए लोगों को वही जीवित करेगा जिस ने उन्हें पहली बार बनाया था और वह सभी रचनाओं का ज्ञान रखने वाला है** [1]

## प्रश्न

1. नष्ट हुई वस्तु को पलटाने से संबंधित शंका और उस का उत्तर बताएं ।

2. पुर्नजीवन के लिए शरीर में योग्यता न होने की शंका तथा उस के उत्तर बताएं ।

3. कर्ता की शक्ति के बारे में शंका और उस के उत्तर का वर्णन करें ।

4. कर्ता के ज्ञान के बारे में शंका तथा उस का उत्तर बताएं ।

[1] यासीन – 79

सैंतालिसवाँ पाठ

# क़यामत के बारे में ईश्वरीय वचन

- भूमिका
- ईश्वर का निश्चित वचन
- बौद्धिक तर्कों की ओर संकेत

## भूमिका

कुरआने मजीद एक ओर ईश्वर द्वारा अपने दासों के पास भेजे गये संदेश के रूप में क़यामत के घटित होने पर बल देता है और उसे ईश्वर का अटल व निश्चित वचन बताता है और इस प्रकार से लोगों के पास कोई बहाना नहीं छोड़ता , तथा दूसरी ओर क़यामत की आवश्यकता हेतु , बौद्धिक तर्कों का वर्णन करता है ताकि मनुष्य में विषयों को बौद्धिक रूप से समझने की इच्छा को शांत कर सके । इस आधार पर , क़यामत के बारे में कुरआन मजीद की आयतों को , दो भागों में विभाजित किया जा सकता है । यहॉ पर हम कुछ उदाहरणों का वर्णन करेंगे ।

## अटल ईश्वरीय वचन

कुरआन करीम , क़यामत और परलोक में मनुष्य के पुर्नजीवन को एक ऐसा विषय मानता है जिस के बारे में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता। कुरआन के सूरए ग़ाफिर में कहा गया है:

**क़यामत आने वाली है , उस में कोई संदेह नहीं है ।**

इसी प्रकार सूरए नेह्ल में कहा गया है :

**हॉ यह एक सच्चा वचन है।**

और अनेक बार उस के होने पर सौगंध भी खाई है:

**कह दो हॉ मुझे अपने पालनहार की सौगंध है तुम लोग निश्चित रूप से पुनः जीवित किए जाओगे और निश्चित रूप से तुम्हें ,**

**तुम्हारे कर्मो से अवगत कराया जाएगा और यह ईश्वर के लिए सरल है।**[1]

कभी लोगों को क़यामत के बारे में चेतावनी देना ,ईश्वरीय दूतों के महत्वपूर्ण कर्तव्यों में से बताया गया है। जैसा कि कहा जाता है :

**उस के आदेश से आत्मा को अपने दासों में से जिस में चाहता है डाल देता है ताकि मिलन के दिन वह डराए।**[2]

और इस का इन्कार करने वालों के लिए अनन्त दंड की बात की जाती है :

**और हम ने , क़यामत का इन्कार करने वालों के लिए नर्क तैयार कर रखा है।**[3]

इस आधार पर , जिसे भी इस ईश्वरीय किताब की सत्यता पर विश्वास होगा , उस के पास क़यामत का इन्कार करने का कोई कारण नहीं हो सकता । इस से पूर्व के अध्यायों में यह स्पष्ट हो चुका है कि कुरआन की सत्यता , सत्य के वास्तविक खोजियों के लिए स्पष्ट होना सरल है । इस प्रकार उसे स्वीकार न करने के लिए किसी के पास कोई बहाना नहीं है सिवाए इस के कि उस की बुद्धि ही कम हो या कुछ अन्य कारणों के अंतर्गत वह सत्यता तक न पहुँच पाए ।

## बौद्धिक तर्कों की ओर संकेत

कुरआन मजीद की बहुत सी आयतों में क़यामत के बारे में तर्क का भाव अपनाया गया है इसी लिए उन्हें दर्शन व तर्क शास्त्र से संबंधित प्रमाणों के रूप में देखा जा सकता है । उदाहरण स्वरूप कुरआन में आया है:

---

[1] तग़ाबुन – 7 तथा अन्य कई आयतें ।

[2] सूरए ग़ाफिर –आयत 15 व अन्य ।

[3] फुरक़ान – 115

**तो क्या तुम ने यह समझ लिया है कि हम ने तुम्हें निरर्थक बनाया है और तुम हमारी तरफ नहीं लौटोगे ।**[1]

यह आयत स्पष्ट रूप से यह सिद्ध करती है कि अगर क़यामत और ईश्वर की ओर लोगों की वापसी न हो तो फिर इस संसार में मनुष्य की रचना एक निरर्थक काम होगा । किंतु ईश्वर कभी भी निरर्थक काम नहीं करता । तो फिर स्पष्ट हुआ कि उस ने अपनी ओर वापसी के लिए एक अन्य जगत की रचना की है।

यह तर्क , एक अपवाद तुलना है और उस को इस प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है कि  इस आयत का अर्थ है कि इस संसार में मनुष्य की रचना उसी समय लक्ष्य पूर्ण हो सकती है , जब इस संसार के बाद भी किसी संसार का अस्तित्व हो और उस में लोगों को उन के कर्मों का फल मिले । हम ने इस विषय को पहले की चर्चाओं में प्रमाणित किया है इस लिए यहॉ अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रकार इस आयत में एक अन्य बात की ओर भी संकेत किया गया है और वह यह है कि ईश्वर , निरर्थक कार्य नहीं करता तो यह विषय भी ईश्वर की तत्वदर्शिता व उस के कार्यों के उद्देश्य पूर्ण होने की ओर संकेत है कि जिस पर हम ने किताब की आंरभिक चर्चाओं में प्रकाश डाला है ।

अब यहॉ पर हम यह कहना चाहते हैं कि इस बात के दृष्टिगत कि मनुष्य की रचना , इस सृष्टि की रचना के लक्ष्य के रूप में है , अगर इस संसार में मनुष्य का जीवन निरर्थक व लक्ष्यहीन होगा तो सृष्टि की रचना भी लक्ष्यहीन व निरर्थक हो जाएगी । इस विषय को उन आयतों से समझा जा सकता है जिन में ,कहा गया है कि परलोक का अस्तित्व  संसार की सृष्टि के उद्देश्यपूर्ण होने पर निर्भर है। उदाहरण स्वरूप कुरआन में बुद्धिमानों के गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है :

---

[1] मोमेनून – 115

**और वे आकाशों व धरती की रचना के बारे में चिंतन करते हैं हे पालनहार! तूने इसे निरर्थक नहीं बनाया है महान है तू हमें आग के दंड से सुरक्षित रख।** [1]

इस आयत से यह समझा जा सकता है कि संसार की रचना की शैली के बारे में चिंतन , मनुष्य को ईश्वर की तत्वदर्शिता व ज्ञान की ओर आकर्षित करता है , अर्थात ईश्वर ने इस महान सृष्टि के लिए एक बौद्धिक लक्ष्य को दृष्टिगत रखा है और इसे निरर्थक व लक्ष्यहीन ही नही बनाया है , और अगर कोई अन्य संसार न हो , कि जिसे सृष्टि की रचना का अंतिम लक्ष्य समझा जाए, तो ईश्वरीय रचना खोखली व लक्ष्यहीन हो जाएगी ।

क़यामत की आवश्यकता हेतु बौद्धिक तर्कों की ओर संकेत करने वाली अन्य कुरआनी आयतों को न्याय के तर्क से मिलाया जा सकता है ।[2] अर्थात ईश्वरीय न्याय के लिए यह आवश्यक है कि अच्छे और बुरे कर्म करने वाले लोगों को इनाम व दंड मिले और उन लोगों को उन के कर्मों के अनुसार फल दे और चूँकि इस संसार में , ऐसा नहीं होता , इस लिए दूसरे संसार की उपस्थिति आवश्यक है जहाँ ईश्वरीय न्याय को व्यवहारिक बनाया जा सके।

उदाहरण स्वरूप में कुरआन में आया है:

**तो क्या बुराई करने वालों ने यह समझ लिया है कि हम उन्हें , उन लोगों की भाँति बनाएगें जो ईमान ले आए और अच्छे काम किए , इस प्रकर से कि दोनों गुटों का जीवन व मृत्यु समान होगा कितना बुरा है वह जो वे सोचते हैं , और ईश्वर ने आकाशों व धरती को सत्य के साथ बनाया है ताकि हर एक को उस के कर्मों का फल दिया जा सके और उन पर अत्याचार नहीं होगा।** [3]

---

[1] आले इमरान – 191

[2] सूरए सॉद – 28 , ग़ाफिर – 58 , क़लम– 35 , यूनुस– 4

[3] जासिया – 21– 22

यहॉं पर इस बात का उल्लेख भी आवश्यक है कि **और ईश्वर ने आकाशों व धरती को सत्य के साथ बनाया है...** के वाक्य को तत्वदर्शिता से संबंधित प्रमाण समझा जा सकता है, जैसा कि मूल रूप से न्याय के तर्क को ही तत्वदर्शिता के संदर्भ में तार्किक प्रमाण समझा जा सकता है उसी तरह जैसा कि हम ने ईश्वरीय न्याय के बारे में चर्चा के दौरान यह स्पष्ट किया है कि न्याय वास्तव में ईश्वरीय तत्वदर्शिता का ही एक रूप है।

## प्रश्न

1. कुरआने मजीद ने किस प्रकार से क़यामत को सिद्ध किया है

2. कौन सी आयतें तत्वदर्शिता से संबंधित तर्क की ओर संकेत करती हैं , स्पष्ट करें।

3. कौन सी आयतें न्याय संबधी तर्क की ओर संकेत करती हैं ? विस्तार से वर्णन करें ।

4. किस प्रकार से न्याय सबंधी तर्क को तत्वदर्शिता संबधी तर्क का ही भाग समझा जा सकता है?

अड़तालिसवॉं पाठ

# परलोक की विशेषताएं

- भूमिका
- बुद्धि के अनुसार परलोक की विशेषताएं

## भूमिका

मनुष्य जिन विषयों के बारे में अनुभव नहीं रखता और न ही उन के बारे में उसे किसी प्रकार का विश्वस्त ज्ञान होता है और न ही उस ने उसे इन्द्रियों द्वारा महसूस किया होता है तो वह ऐसे विषयों की पूर्ण पहचान प्राप्त नहीं कर सकता । इस बात के दृष्टिगत यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि परलोक की वास्तविकता , तथा वहॉ घटने वाली घटनाओं को हम पूर्ण रूप से जान सकते हैं और उन की वास्तविकताओं को पूर्ण रूप से समझ सकते हैं बल्कि हमें केवल उन्ही विशेषताओं पर संतोष करना होगा जिसे हम बुद्धि व ईश्वरीय संदेशों द्वारा जानते हैं तथा हमें चाहिए कि स्वयं को दुस्साहस से दूर रखें।

खेद है कि एक ओर , कुछ लोगों ने परलोक को , संसार की भॉति बताने का प्रयास किया और यहॉ तक आगे बढ़ गये कि उन्हों ने यह समझ लिया परलोक का स्वर्ग इसी संसार के किसी एक या कई नक्षत्रों में है और एक दिन , मनुष्य विज्ञान की प्रगति तथा खोजों के सहारे वहॉ तक पहुॅच कर सुख व चैन का जीवन व्यतीत करेगा!

और दूसरी ओर , कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्हों ने व्यवहारिक रूप से परलोक व स्वर्ग के अस्तित्व का ही इन्कार कर दिया और स्वर्ग को नैतिक मान्यताएं समझा कि जिस के लिए समाज के अच्छे लोग प्रयास करते हैं तथा उन्हों ने लोक व परलोक के मध्य अंतर को लाभ व मान्यता का अंतर ही समझा!

यहॉ पर हम पहले गुट के विचार रखने वालों से यह पूछना चाहते हैं कि अगर परलोक का स्वर्ग किसी दूसरे नक्षत्र में है और आगामी पीढ़ियॉ वहॉ

जाने में सफल होंगी तो फिर प्रलय के दिन मनुष्यों के जीवित होने और उन्हें एकत्रित करने का , कि जिस की कुरआन ने भी पुष्टि की है , क्या अर्थ है ?! और सभी मनुष्यों के कर्मफल किस प्रकार से उन्हें दिए जा सकेगें ?!

इसी प्रकार दूसरे प्रकार की विचार धारा रखने वालों से हम यह पूछना चाहते हैं कि अगर स्वर्ग नैतिक मूल्यों के अलावा कुछ नहीं है तो स्वाभाविक रूप से नर्क भी नैतिकता विरोधी मूल्यों के अलावा कुछ नहीं हो सकता तो फिर कुरआन क़यामत और मरने के बाद पुनः जीवित होने पर इतना आग्रह क्यों करता है ? क्या यह उचित नहीं था कि ईश्वरीय दूत , आंरभ में ही इस अर्थ को स्पष्ट कर देते ताकि उन पर पागल पन और काल्पनिक बातें करने के इतने अधिक आरोप न लगाए जाते ?!

अगर इस प्रकार की निराधार बातों की अनदेखी करने के बाद शास्त्रार्थियों व दार्शनिकों के मध्य वाद – विवाद की बारी आती है कि क़यामत के दिन वापसी , आत्मा की होगी या शरीर की भी ? या यह कि भौतिक संसार पूर्ण रूप से नष्ट हो जाएगा या नहीं और यह कि परलोक में प्राप्त होने वाला शरीर सांसारिक शरीर की भॉति ही होगा या उस से भिन्न?

वास्तविकताओं को समझने और उन्हें सही रूप से पहचाने के लिए इस प्रकार के दार्शनिक प्रयास भले ही सराहनीय हों तथा इन चर्चाओं द्वारा भले ही विचारों की कमज़ोरियों व अच्छाइयों का पता चलता हो किंतु हमें यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि इस प्रकार की चर्चाओं द्वारा हम परलोक के जीवन की वास्तविकताओं तक पहुँचने में सफल हो सकते हैं और उन्हें इस प्रकार पहचान सकते हैं जैसे हम ने उन्हें पा ही लिया हो ।

वस्तुतः क्या इसी संसार की सारी वास्तविकताएं पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गयी हैं ? और क्या भौतिक व रसायन शास्त्रियों तथा अन्य वैज्ञानिकों ने पदार्थ , ऊर्जा तथा अन्य ऊर्जाओं की वास्तविकताओं को पूर्ण रूप से पहचान लिया है ? क्या वे विश्व के भविष्य के बारे में निश्चित रूप से भविष्य वाणी कर सकते हैं ? क्या उन्हें ज्ञात है कि उदाहरण स्वरूप अगर पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति

समाप्त हो जाए या इलेक्ट्रान्स में गतिशीलता समाप्त हो जाए तो क्या होगा ? और ऐसा होगा भी या नहीं ?

क्या दार्शनिकों को इसी संसार से संबंधित समस्त बौद्धिक विषयों का पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त हो चुका है ? क्या पदार्थ ों की और प्रवृत्तियों की वास्तविकताओं तथा शरीर व आत्मा के मध्य संबधं आदि जैसे विषयों में अधिक अध्यन की आवश्यकता नहीं है ?

तो फिर किस प्रकार हम इस सीमित ज्ञान व जानकारियों की सहायता से ऐसे लोक की वास्तविकताओं को पूर्ण रूप से जानना चाहते हैं कि जहॉं के बारे में किसी प्रकार का अनुभव नहीं है ?! यद्यपि मानव ज्ञान की कमी का यह अर्थ नहीं है कि किसी भी वस्तु को किसी भी दशा में वह जान नहीं सकता या यह कि सृष्टि की बेहतर पहचान प्राप्त करने के लिए उसे प्रयास ही नहीं करना चाहिए । निश्चित रूप से हम ईश्वर द्वारा प्रदान की गयी बुद्धि की शक्ति की सहायता से बहुत सी वास्तविकताओं को पहचान सकते हैं और इसी प्रकार बोध व अनुभव के बल पर , प्रकृति के बहुत से रहस्यों से पर्दा उठा सकते हैं । निश्चित रूप से हमें अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक व दार्शनिक प्रयास करने चाहिए किंतु इसी प्रकार हमें अपनी बुद्धि व ज्ञान की सीमा का भी पता होना चाहिए तथा व्यर्थ और उँची उँची आशाओं से बचना चाहिए तथा यह स्वीकर करना चाहिए कि **तुम्हें ज्ञान में कुछ नहीं दिया गया है सिवाए थोड़े से अंश के ।**[1]

इसी ज्ञान व बुद्धिमत्ता तथा धार्मिक कर्तव्यों के दृष्टिगत आवश्यक है कि क़यामत तथा परलोक के बारे में निश्चित विचार प्रकट करने और विभिन्न प्रकार के औचित्य खोजने से बचा जाए तथा केवल बौद्धिक तर्कों व कुरआनी आयतों की सीमा में रह कर ही इस संदर्भ में विचार प्रकट किया जाना चाहिए । प्रत्येक दशा में धर्म पर विश्वास रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए यही पर्याप्त

---

[1] इसरा– 85

है कि वह ईश्वर की ओर से आई हुई हर वस्तु की सत्यता पर विश्वास रखे भले ही उस के ब्योरे का उसे ज्ञान न हो विशेषकर उन विषयों में जिन को समझने की शक्ति मानव बुद्धि व वर्तमान ज्ञान में नहीं है।

अब हम यह देखेंगे कि बुद्धि के सहारे किस सीमा तक परलोक की विशेषताओं तथा लोक से उस के अंतर को समझ सकते हैं ।

## बुद्धि के अनुसार परलोक की विशेषताएं

क़यामत को आवश्यक बनाने वाले तर्कों पर विचार करने के बाद परलोक की कुछ विशेषताओं को समझा जा सकता है जिन में से कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं इस प्रकार हैं :

1. परलोक की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि उसे अनन्त होना चाहिए क्योंकि इस विषय के लिए पेश की जाने वाली दलील में अनन्त जीवन की संभावना और मनुष्य में स्वाभाविक रूप से अमरत्व प्रेम की भावना पर बल दिया गया है और उस की व्यवहारिकता को ईश्वरीय तत्वदर्शिता के लिए आवश्यक बताया गया है।

2. दूसरी विशेषता कि जो इस संदर्भ में पेश किए गये दोनों प्रकार के तर्कों से समझ में आती है , यह है कि परलोक की व्यवस्था को कुछ इस प्रकार से होना चाहिए कि ईश्वरीय कृपाएं पूर्ण रूप से और बिना किसी दुख व समस्या के मनुष्य को प्राप्त हों ताकि जो लोग मानव परिपूर्णता की चोटियों तक पहुँचे हैं और उन्हों ने अपनी आत्मा को किसी प्रकार के पाप से प्रदूषित नहीं किया है , इस प्रकार की सफलता के पात्र बनें , संसार के विपरीत कि जहॉ इस प्रकार की पूर्ण सफलता संभव नहीं होती बल्कि सांसारिक सफलताएं तुलनात्मक तथा समस्याओं व दुखों से घिरी हुई होती हैं ।

3. तीसरी विशेषता यह है कि परलोक को , कम से कम दो अलग अलग भागों वाला होना चाहिए अर्थात एक भाग कृपा व नेमत का तथा दूसरा

भाग दंड व प्रकोप का ताकि अच्छे व बुरे कर्म करने वाले एक दूसरे से अलग हो सकें और हर एक को अपना कर्मफल प्राप्त हो और इन दो भागों को धर्म की भाषा में स्वर्ग व नर्क कहा जाता है।

4. चौथी विशेषता, कि जो न्याय के तर्क से प्राप्त होती है , यह है कि परलोक को कुछ इस प्रकार से व्यापक होना चाहिए कि उस में हर प्रकार के अच्छे बुरे लोगों के कर्मों का फल देने की संभावना रहे उदाहरण स्वरूप अगर किसी ने करोड़ों निर्दोष लोगों की हत्या की हो तो उस लोक में उसे दंडित करने की संभावना मौजूद हो और उस के विपरीत अगर किसी ने करोड़ों लोगों की जीवन रक्षा की भूमिका प्रशस्त की हो तो उस के योग्य फल की संभावना उस लोक में मौजूद हो ।

5. पाँचवी विशेषता कि जो न्याय के तर्क से प्राप्त होती है , यह है कि परलोक को फल व परिणाम का स्थान होना चाहिए न कि कर्तव्य पालन का ।

इस स्पष्टीकरण के साथ कि सासांरिक जीवन कुछ इस प्रकार का है कि मनुष्य में परस्पर विरोधी भावनाएं व रुझान पैदा होते हैं और सदैव ही वह असमंजस में रहता है किंतु उसे एक मार्ग का चयन करना पड़ता है और यही विषय , कर्तव्य की भूमिका प्रशस्त करता है , उस कर्तव्य की जो उस की आयु के अंतिम क्षणों तक रहता है और ईश्वरीय तत्वदर्शिता व न्याय के लिए आवश्यक है कि अपने कर्तव्यों का पालन करने वालों को उन के सुकर्मों का फल मिले और अवज्ञा करने वालों को दंड । अब अगर यह मान लें कि यही कर्तव्य व एक विकल्प अपनाने की दशा , परलोक में भी रहे तो फिर ईश्वरीय कृपा , तत्वदर्शिता तथा ज्ञान के लिए यह आवश्यक होगा कि मनुष्य के मार्ग में कोई बाधा न हो । और इस प्रकार से , फल के लिए किसी अन्य लोक की आवश्यकता होगी और वास्तव में जिस लोक को हम ने परलोक समझा होगा वह एक अन्य संसार हो जाएगा और वास्तविक परलोक , वही अंतिम लोक होगा जहाँ कर्मों का फल मिलेगा और जहाँ कर्तव्यों के निर्वाह का कोई आदेश न होगा ।

और यहीं पर लोक व परलोक के मध्य एक महत्वपूर्ण अंतर स्पष्ट हो जाता है अर्थात संसार ऐसा लोक है जहॉं चयन का अधिकार तथा परीक्षा होती है जब कि परलोक ऐसा लोक है जहॉं कर्मो का फल मिलता है और अच्छे बुरे कामों के बदले दंड अथवा इनाम मिलता है। आज कर्म है पूछताछ नहीं और कल पूछताछ है कर्म नहीं ।

## प्रश्न

1. हम क्यों परलोक के बारे में पूर्ण व सूक्ष्म जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते ?

2. परलोक के बारे में गलत विचार धारा के दो उदाहरणों का उल्लेख करें।

3. किस प्रकार से हम परलोक की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं ?

4. परलोक की विशेषताओं का बुद्धि के दृष्टिकोण से वर्णन करें ।

उन्चासवाँ पाठ

# मृत्यु से क़यामत तक

- भूमिका
- समस्त मनुष्य मर जाएंगे
- प्राणों को निकालने वाला
- सरलता अथवा कठिनाई से प्राण निकालना
- मृत्यु के समय प्रायश्चित व ईमान का अस्वीकारीय होना
- संसार में वापसी की कामना
- बरज़ख या मध्यकाल

## भूमिका

हम यह जान चुके हैं कि हम अपने सीमित ज्ञान द्वारा परलोक तथा उस दुनिया की वास्तविकताओं का पता नहीं लगा सकते और हमें केवल बुद्धि तथा ईश्वरीय संदेशों द्वारा प्राप्त होने वाली जानकारियों पर ही संतोष करना होगा। पिछले पाठ में, परलोक की ऐसी कुछ सामूहिक विशेषताओं की ओर संकेत किया गया जो बुद्धि की सहायता से समझ में आती हैं और अब यहॉ पर हम परलोक की उन विशेषताओं का उल्लेख करेंगे जो कुरआन की सहायता से समझ में आती हैं ।

अलबत्ता संभव हैं कि परलोक की विशेषता के वर्णन के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है उन में से कुछ को सुनने के बाद, वास्तविकता ठीक उसी प्रकार न हो जैसी हमारी कल्पना होती है और यह वर्णन में कमी के कारण नहीं है बल्कि हमारी समझ की कमी के कारण है अन्यथा इस बात में कोई शंका नहीं है कि हमारे बोध की सीमा व बनावट के दृष्टिगत परलोक की वास्तविकताओं को दर्शाने वाले जो सर्वश्रेष्ठ शब्द हो सकते हैं ,उन्हें कुरआन ने प्रयोग किया है।

और चूँकि कुरआन में वर्णित वास्तविकताएं , परलोक की भूमिकाओं के बारे में भी हैं इस लिए हम अपनी बात मनुष्य की मृत्यु से आंरभ करते हैं ।

## समस्त मनुष्य मर जाएगे

कुरआन मजीद , बल देता है कि सारे मनुष्य बल्कि समस्त प्राणी मर जाएंगे और इस संसार में कोई भी वस्तु अनन्त नहीं है।

**जो कुछ भी धरती पर है , नष्ट हो जाने वाला है।**[1]

**हर एक मृत्यु का स्वाद चखने वाला है।**[2]

और पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम को संबोधित करके कुरआन में कहा गया है :

**तुम मरने वाले हो और वे सब मरने वाले हैं ।**[3]

**और हम ने तुम से पहले किसी मनुष्य को अमरत्व प्रदान नहीं किया तो क्या जब तुम मर जाओगे तो वह लोग अमर रहेंगे ।**[4]

इस आधार पर मरने के एक ऐसा क़ानून समझना चाहिए जिस से कोई भी अपवाद नहीं है।

## प्राण लेने वाला

कुरआने मजीद एक ओर प्राण निकालने के कार्य को ईश्वर से संबंधित बताता और कहता है:

**ईश्वर मृत्यु के समय लोगों के प्राण लेता है।**[5]

तथा दूसरी ओर, मौत के फरिश्तों को लोगों के प्राण लेने का जिम्मेदार बताता है:

---

[1] अर्रहमान – 26

[2] आले इमरान – 185 , अंबिया – 35

[3] ज़ोमर – 30

[4] अंबिया – 34

[5] ज़ोमर– 42

**कह दो तुम को, तुम्हारे लिए तैनात मौत का फरिश्ता ले जाता है।**[1]

और एक अन्य स्थान पर , प्राण लेने के कार्य को फरिश्तों और ईश्वर के विशेष दूतों से संबंधित बताया जाता है:

**यहॉ तक कि जब तुम लोगों में से किसी की मौत आ जाती है तो उसे हमारे दूत ले जाते हैं।**[2]

स्पष्ट है कि जब कोई कर्ता अपने कामों को दूसरे किसी कर्ता द्वारा करे तो कार्य को दोनों कर्ताओं से संबंधित बताया जाना सही होता है । और अगर दूसरा कर्ता किसी अन्य द्वारा काम करे तो उस कार्य को तीनों कर्ताओं से संबंधित बताया जाना सही होता है। और चूंकि ईश्वर , प्राण लेने का काम मौत के फरिश्ते द्वारा करता है और उस मौत के फरिश्ते की सहायता अन्य कुछ फरिश्तें करते हैं इस लिए काम को तीनों से संबंधित बताना सही है।

## सरलता अथवा कठिनाई से प्राण लेना

कुरआन मजीद की आयतों से पता चलता है कि ईश्वरीय हरकारे , सभी लोगों के प्राण समान शैली से नहीं लेते बल्कि कुछ लोगों के प्राण को सरलता व नरमी व सम्मान के साथ निकलते हैं जब कि कुछ अन्य लोगों के प्राण , अपमान व कठोरता के साथ निकालते हैं । इस संदर्भ में कुरआन की आयतों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

**वह लोग जिन के प्राणों को फरिश्ते प्रसन्नता के साथ निकालते हैं और कहते हैं कि तुम पर सलाम हो ।**[3]

---

[1] सजदा – 11

[2] अनआम – 61

[3] निहल – 32 , अनआम – 93

**अगर तुम देखते जब फरिश्ते इन्कार करने वालों के प्राण निकालते हैं , उन के मुँह व पिछले भाग पर मारते हैं... ।**[1]

## मृत्यु के समय प्रायश्चित व ईमान अस्वीकारीय है

जब पापियों और ईश्वर का इन्कार करने वालों की मौत की घड़ी आ जाती है और वे संसारिक जीवन की आशा छोड़ चुके होते हैं तो अपने अतीत पर पछताते हैं और ईश्वर पर विश्वास व पापों से प्रायश्चित की बात करते हैं किंतु इस प्रकार का विश्वास व प्रायश्चित किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं किया जाता । कुरआने मजीद इस सदंर्भ में कहता है:

**जब तुम्हारे पालनहार के कुछ चिन्ह प्रकट हो जाते हैं तो उस व्यक्ति को , ईमान कोई लाभ नहीं पहुँचाता जिस के पास पहले ईमान न रहा हो या उस ने ईमान की दशा में कोई भलाई न की हो ।**[2]

**और प्रायश्चित उन लोगों के लिए नहीं है जो पाप करते हैं यहॉ तक कि जब मौत उन में से किसी के सामने प्रकट हो जाती है तो कहता है कि मैं ने अब प्रायश्चित कर लिया ।**[3]

कुरआन में फिरऔन के बारे में कहा गया है कि उस ने कहा था :

**मैं ईमान लाता हूँ कि उस के सिवाए कोई ईश्वर नहीं है जिस पर बनी इस्राईल ईमान लाए हैं और मैं तो स्वीकार करने वालों में से हूँ ।**[4]

इस के उत्तर में कहा जाता है :

---

[1] अन्फाल– 50 , मुहम्मद 27

[2] अनआम– 50 , सबा– 51 तथा अन्य

[3] निसाअ– 18

[4] युनुस – 90– 91

**अब , जब कि तूने इस से पूर्व अवज्ञा की और भ्रष्टता फैलाने वालों में से था ?**[1]

## ससांर में वापसी की कामना

इसी प्रकार कुरआन पापियों और इन्कार करने वालों के की बातों का वर्णन करते हुए कहता है कि जब उन की मौत आ जाती है और उन पर ईश्वरीय प्रकोप आ जाता है तो कामना करते हैं कि काश ! संसार में लौटने का अवसर मिल जाए ताकि हम भी धर्म पर विश्वास रखने वाले और अच्छे कर्म करने वालों में से हो जाएं तथा वे ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हमें संसार में दोबारा भेज दे ताकि हम अपने अतीत की गलतियों को सुधार सकें । किंतु इस प्रकार की कामनाओं व प्रार्थनाओं को कोई महत्व नहीं दिया जाएगा ।[2]

कुछ आयतों में यह भी कहा गया है कि अगर उन्हें संसार में वापस भेज दिया जाए तो भी वह पहले की भॉति ही पापों में डूब जाएगें ।[3] और क़यामत के दिन भी इस प्रकार की मॉग करेंगे जिसे अधिक कड़ाई के साथ रद्द कर दिया जाएगा :

**यहॉ तक कि जब उन में से किसी की मौत आ जाती है तो कहते हैं हे पालनहार मुझे वापस भेज दे शायद मैंने जो छोड़ा है उस के बारे में अच्छे काम करूँ कदापि नहीं ! यह वह बात है जिसे वह स्वंय कह रहा है...**[4]

---

[1] युनुस 90–91

[2] यहॉं पर यह जान लेना चाहिए कि कुरआन में उन लोगों की वापसी को नकारा गया है जिन्हों ने पूरी आयु पापों में व्यतीत की हो । कुरआन में परलोक से वापसी को पूर्ण रूप से नकारा नहीं गया है अर्थात इस का मतलब यह नहीं है कि परलोक से किसी भी प्रकार , किसी भी स्थिति में वापसी संभव नहीं है क्योंकि हम पहले बता चुके हैं कि ऐसे लोग मौजूद थे जो परलोक से मरने के बाद वापस आए तथा शीओं के अनुसार , इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम के प्रकट होने के समय कुछ लोग परलोक से वापस बुलाए जाएगें ।

[3] अनआम– 27– 28

[4] मोमेनून – 99

**या जब दंड को देखता है तो कहता है काश मेरी वापसी हो जाती ताकि मैं भी अच्छे कर्म करने वालों में से हो जाता ।[1]**

**... और जब आग के पास खड़े किए जाते हैं तो कहते हैं काश हमे वापस भेज दिया जाए और अपने पालनहार के चिन्हों का इन्कार न करते और ईमान वालों में से हो जाते ।[2]**

**... जब अपराधी अपने पालनहार के समक्ष शीश नवाए हुए हैं हे पालनहार अब हम ने देख लिया और सुन लिया तो हमें अब वापस लौटा दे ताकि हम अच्छे काम करें हम अब विश्वास करने वालों में से हैं ।[3]**

इन आयतों से , भलीभॅाति यह समझा जा सकता है कि परलोक चयन व कर्म तथा कर्तव्यों के पालन का स्थान नहीं है बल्कि मृत्यु के समय या परलोक में जो विश्वास भी प्राप्त होता है वह भी मनुष्य की परिपूर्णता में प्रभावी नहीं होता तथा उस के बदले कोई फल नहीं मिलता । इस दृष्टि से, पापी और ईश्वर का इन्कार करने वाले , कामना करेगें कि इस संसार में वापस भेज दिए जाएं ताकि स्वेच्छा से ईमान ले आएं और अच्छे काम करें ।

## बरज़ख या मध्यकाल

कुरआने मजीद की आयतों से समझा जा सकता है कि मनुष्य , मृत्यु के बाद और क़यामत से पहले , कब्र व बरज़ख में रहेगा और किसी सीमा तक प्रसन्नता या दुख का आभास करेगा । इसी प्रकार बहुत सी हदीसों में आया है कि ईश्वर पर ईमान रखने वाले उन लोगों को जिन्हों ने कुछ पाप किये हैं उन

---

[1] ज़ोमर – 58 , शोअरा – 102

[2] अनआम – 27–28

[3] सजदा– फातिर – 37

को उन के पापों के अनुरूप इसी मध्य काल में दंडित किया जाएगा ताकि वे पवित्र हो जाएं और क़यामत के दिन उन्हें सरलता हो ।

इस बात के दृष्टिगत कि बरज़ख से संबंधित आयतों की व्याख्या की आवश्यकता है हम ने उन आयतों की समीक्षा को उचित नहीं समझा और यहाँ पर केवल एक ही आयत का उल्लेख करते हुए इस चर्चा को समाप्त करते हैं । कुरआन में कहा गया है:

और उन के पीछे , बरज़ख है ताकि एक दिन वे उठाए जाएं । [1]

## प्रश्न

1. संसार में मनुष्य को अमरत्व प्राप्त न होने के बारे में कुरआनी आयत की शैली का संबंधित आयतों के संकेत के साथ वर्णन करें ।

2. मनुष्य के प्राण कौन लेता है ? और विदित रूप से इस से संबंधित आयतों में जो अंतर नजर आता है उस का निवारण क्या है ?

3. प्राणों को लेने की शैलियों में क्या अंतर है ?

4. मौत के समय प्रायश्चित व ईमान के बारे में कुरआन क्या कहता है?

5. कुरआने मजीद संसार में किस प्रकार की वापसी की संभावना को रद्द करता है? और क्या इस प्रकार की वापसी को नकारने वाली आयतें, इमाम मेहदी अलैहिस्सलाम के काल में कुछ लोगों की वापसी के विपरीत है? क्यों?

6. बरज़ख अथवा मध्य काल के बारे में विस्तार से बताएं ।

---

[1] मोमेनून – 100 ।

पचासवाँ पाठ

# कुरआन में प्रलय की कल्पना

- भूमिका
- धरती , समुद्रों तथा पहाड़ों की दशा
- आकाशों व तारों की दशा
- मृत्यु का बिगुल
- जीवन का बिगुल और प्रलय का आंरभ
- ईश्वरीय शासन तथा कारकों व कार्यों के मध्य संबधों का अंत
- ईश्वरीय न्यायालय
- अनन्त स्थली की ओर बढ़ते कदम
- स्वर्ग
- नर्क

## भूमिका

कुरआन मजीद की आयतों से समझा जा सकता है कि परलोक , केवल मनुष्यों के पुर्नजीवन तक ही सीमित नहीं है बल्कि मूल रूप से इस संसार की व्यवस्था ही बदल जाएगी और एक दूसरा लोक, विभिन्न विशेषताओं के साथ स्थापित किया जाएगा, ऐसा लोक जिस का अनुमान हम नहीं लगा सकते और स्वाभाविक रूप से उस की विशेषताओं की पूर्ण रूप से पहचान भी नहीं रख सकते । फिर सृष्टि के आंरभ से लेकर अंत तक के समस्त मनुष्यों को जीवित किया जाएगा और उन्हें उन के कर्मों का फल दिया जाएगा तथा वे सदैव के लिए ईश्वरीय कृपा अथवा प्रकोप का पात्र बनेंगे ।

और चूँकि इस संदर्भ में बहुत सी आयतें हैं इस लिए हम ने उन के विषयों के वर्णन को ही पर्याप्त समझा है ।

## धरती, समुद्रों तथा पहाड़ों की स्थिति

धरती पर भीषण भूकंप आएगा [1]और जो कुछ उस के भीतर होगा वह उसे बाहर निकाल देगी [2] तथा उस के टुकड़े टुकड़े हो जाएगें [3], समुन्द्र बिखर जाएंगे [4]और पहाड़ चलने लगेंगे [5] और एक दूसरे से टकरा कर चूर चूर हो

---

[1] ज़िलज़ाल – 1 , हज – 1, वाकेआ, 4

[2] ज़िलज़ाल – 2 , इनशेक़ाक़–4

[3] अलहाक़्क़ह –14 , फज्र –21

[4] तकवीर– 6 , इन्फेतार– 3

[5] कहफ–47, नेह्ल–88, तूर –10, तकवीर –2

जाएंगे[1] तथा रेत के बड़े टीले में बदल जाएंगे [2]फिर धुनकी हुई रूई की भॉति हो जाएगें और फिर हवा में उड़ जाएंगे[3] और गगन चुंबी पहाड़ों का को कोई पता न होगा।[4]

## आकाशों व तारों की दशा

चॉद [5]व सूरज[6] और बड़े बड़े सितारे के जिन में से कुछ तो करोड़ों गुना सूर्य से बड़े हैं , अंधकार में डूब , और बुझ जाएंगे[7], उन की गति व व्यवस्था बिगड़ जाएगी [8]और चॉद व सूरज एक दूसरे से टकरा जाएगें[9] । इस विश्व पर मज़बूत छत की भॉति टिका हुआ आकाश , कमज़ोर व अस्थिर हो जाएगा [10] और फट जाएगा और एक दूसरे से अलग हो जाएगा।[11] और उसे लपेट दिया जाएगा[12] और आकाश के सितारे पिघली हुई धातु की भॉति हो जाएंगे।[13] और विश्व पर धुऑं व बादल छा जाएंगे। [14]

---

[1] अलहाक़्क़ह – 4 , वाक़ेआ–5

[2] मआरिज– 9 , अलक़ारेआ– 5

[3] ताहा– 105–107

[4] कहफ– 8

[5] अलक़यामह–8

[6] तकवीर – 1

[7] तकवीर – 2

[8] इनफेतार–2

[9] अलकियामह– 9

[10] तूर – 1 , अलहाक़्क़ह – 16

[11] अर्रहमान – 37 , अलहाक़्क़ह – 16,अलमुज़्ज़म्मिल –18, अलमुरसलात – 9 , नबअ– 19 , इनफेतार – 1, इनशेक़ाक़ 1

[12] अंबिया – 104, तकवीर–11

[13] मआरिज–8

[14] फुरक़ान – 25, दुख़ान– 10

## मृत्यु का बिगुल

इन परिस्थितियों में मृत्यु का बिगुल फूँका जाएगा और समस्त प्राणी मर जाएंगे[1] और प्रकृति में जीवन का कोई चिन्ह बाकी नहीं बचेगा और चारो ओर भय व आतंक की छाया होगी [2] सिवाए उन लोगों पर कि जिन्हें सृष्टि की वास्तविकताओं का पता है और जिन के ह्रदय में ईश्वर का प्रेम है।

## जीवन का बिगुल और प्रलय का आंरभ

फिर ऐसे लोक को स्थापित किया जाएगा जो अनन्त की योग्यता रखता हो[3] और संसार ईश्वर के तेज से प्रकाशमय हो उठेगा[4] और जीवन का बिगुल फूँका जाएगा [5]और सारे प्राणी[6] एक क्षण में जी उठेंगे[7] और डरे सहमे हुए [8]टिड्डी दलों की भॉति[9] तेज़ी से अपने पालनहार की सेवा में उपस्थित होंगे[10] और सब लोग एक विशाल मैदान में इकटठा होंगे[11] और अधिकांश लोग यह समझेंगे कि बरज़ख अर्थात मध्यकाल में वे एक घंटे या एक दिन या कुछ दिनों से अधिक नहीं रहे।[12]

---

[1] ज़ोमर – 68 , अलहाक़्क़ह – 13, यासीन–49

[2] नम्ल–87– 89

[3] इब्राहीम – 48 , ज़ोमर– 67, मरयम – 38

[4] ज़ोमर– 69

[5] ज़ोमर– 68,कहफ–99, क़ाफ–20 , 42, नबअ–18 तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

[6] अनआम–38, तकवीर– 5

[7] कहफ–47,नेह्ल–77, क़मर–50, नबअ–18

[8] क़ाफ 20

[9] क़ारेआ–4

[10] क़ाफ–44 तथा यासीन – 51 , मुतफ़्फ़ीन –30 , अलक़यामह–12,30 तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

[11] कहफ– 99 , तग़ाबुन – 9 , नेसाअ – 87 तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

[12] रोम –55 , नाज़ेआत – 46 , युनुस – 45, इसरा– 52 तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

## ईश्वरीय शासन तथा कारकों व कार्यों के संबधों का अंत

उस लोक में , वास्तविकताएं स्पष्ट हो जाएगीं [1] और पूर्ण रूप से ईश्वर का शासन प्रकट होगा [2]और लोगों पर ऐसा रोब व दबदबा होगा कि किसी में बोलने का साहस नहीं होगा [3] और हर एक अपनी चिंता में होगा यहाँ तक कि सतांन अपने माता पिता से और सगे संबधी एक दूसरे से भागेंगे [4]और मूल रूप से रिश्ते व नाते समाप्त हो जाएंगे [5]और सांसारिक व शैतानी हितों पर आधारित मित्रताएं शत्रुता में बदल जाएगीं[6] और दिलों पर अपने पिछले कर्मो पर खेद व दुख छा जायेगा।[7]

## ईश्वरीय न्यायालय

फिर ईश्वरीय न्यायालय का गठन होगा और सारे लोगों के कर्मो को सामने लाया जाएगा [8] और कर्मपत्र बाँटे जाएंगे और हर एक का कर्म कुछ इस प्रकार से स्पष्ट होगा कि उस के करने वाले से पूछने की आवश्यकता नहीं होगी कि तुम ने क्या किया है? [9]

इस न्यायालय में , फरिश्ते , पैगम्बरे और ईश्वर के विशेष दास , गवाह के रूप में उपस्थित होंगे।[10] यहाँ तक कि लोगों के हाथ – पैर और त्वचा भी

---

[1] इब्रहीम – 21 , अलआदियात – 10 , अत्तारिक़– 9 तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

[2] हज– 65 , फ़ुरक़ान – 26 , गाफिर– 16

[3] हूद– 105, ताहा – 108

[4] अबस–34, 37 , शोअरा–88 , मआरिज–10

[5] बक़रह– 166 , मोमेनून – 101

[6] ज़ोखरोफ –67

[7] अनआम–31 , मरयम– 39, युनुस–54

[8] आले इमरान– 30, तकवीर – 14

[9] अर्रहमान– 39

[10] ज़ोमर–69 , बक़रह– 143, आले इमरान– 140 तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

गवाही देगी [1] और सब लोगों के कर्मों पर गंभीरता के साथ विचार किया जाएगा और ईश्वर के तराजू पर तौला जाएगा [2]और न्याय के आधार पर फैसला किया जाएगा[3], हर एक अपने प्रयास का परिणाम देखेगा , [4] अच्छे कर्म वालों को दस बराबर फल मिलेगा [5], कोई किसी का बोझ नहीं उठाएगा[6] किंतु जिन लोगों पर अपने पापों के अलावा दूसरों को भी पापों में ग्रस्त तथा पथभ्रष्ट करने का पाप होगा वे उन पथभ्रष्ट लोगों के पापों का भी बोझ उठाएंगे[7] किंतु स्वयं पापियों के पापों में कोई कमी नहीं होगी।

इसी प्रकार किसी से कोई विकल्प अथवा अन्य वस्तु स्वीकार नहीं की जाएगी ,[8]और न ही किसी की सिफारिश स्वीकार की जाएगी[9] सिवाए उन लोगों के कि जिन्हें ईश्वर द्वारा इस बात की अनुमति होगी और वे ईश्वरीय मापदंडों के आधार पर सिफारिश करेंगे ।[10]

## अनन्त स्थली की ओर बढ़ते कदम

फिर ईश्वर के आदेशों की घोषणा होगी [11], सुकर्मियों और कुकर्मियों को एक दूसरे से अलग किया जाएगा, [12] सुकर्मी , चमकते हुए चेहरों के साथ

---

[1] नूर– 24, यासीन–65

[2] आराफ– 8–9, अंबिया – 47

[3] युनुस–54, 93 जासिया – 17

[4] अन्नजम–40–41, बक़रह–281, 286, आले इमरान –25 , 161 तथा अन्य बहुत सी आयतें।

[5] अनआम – 160

[6] अन्नजम–39, अनआम–146

[7] अन्नेहल – 25, अनकबूत–13, स्पष्ट है कि जो लोग दूसरों द्वारा अच्छे कामों का कारण बनते हैं , उन का फल भी अधिक होगा।

[8] बक़रह–48– 123, आले इमरान– 91 , लुकमान– 33

[9] बक़रह– 48,123,254

[10] अंबिया –28, बक़रह 255 व अन्य ।

[11] आराफ–44

[12] अन्फाल– 37, रोम– 14–16, 43, 44 व अन्य ।

स्वर्ग की ओर , [1] तथा ईश्वर का इन्कार करने वाले व मिथ्याचारी , काले चेहरों और बुझे हुए मन के साथ अपमान जनक दशा में नर्क की तरफ चल पड़ेंगे। [2] और सब लोग नर्क से गुज़रेंगे [3] ऐसी स्थिति में कि धर्म पर विश्वास रखने वाले प्रतिबद्ध लोगों के चेहरों से प्रकाश निकल रहा होगा जिस से उन का मार्ग प्रकाशमय होगा [4] और ईश्वर का इन्कार करने वाले तथा मिथ्याचारी अंधेरों में छटपटा रहे होंगे।

संसार में धर्म के सच्चे अनुयाईयों से संबधं रखने वाले मिथ्याचारी उन्हें पुकारेंगे कि अपना चेहरा हमारी तरफ घुमा लो ताकि तुम्हारे प्रकाश से हमें भी फायदा पहुँचे, किंतु उन्हें उत्तर मिलेगा कि प्रकाश प्राप्त करने के लिए पीछे , संसार में लौटना होगा , वे फिर कहेंगेःक्या संसार में हम आप लोगों के साथ नहीं थे ? उन्हें उत्तर मिलेगा : क्यों नहीं , विदित रूप से तुम लोग हमारे साथ थे किंतु तुम लोगों ने स्वंय को फॅसा लिया है और तुम्हारे दिलों में शंका व संदेह व कठोरता पैदा हो गयी और आज , तुम्हारा फैसला हो गया है और तुम लोगों तथा ईश्वर का इन्कार करने वालों का कोई बहाना चलने वाला नहीं हैऔर अन्ततः , ईश्वर का इन्कार करने वाले और मिथ्याचारी लोग , नर्क की गहराईयों में समा जाएंगे। [5] जब धर्म पर प्रतिबद्ध लोग , स्वर्ग के निकट पहुँचेंगे , उस के द्वार खोल दिए जाएंगे और कृपा के फरिश्ते उन का स्वागत करेंगे और उन्हें सलाम करने के बाद , सम्मान के साथ , अनन्त कल्याण व सफलता की शुभसूचना देंगे। [6]

---

[1] ज़ोमर– 73, आले इमरान – 107 , मरयम – 85 व अन्य

[2] ज़ोमर– 60 –71 , आले इमरान – 106 , अनआम– 124 व अन्य ।

[3] मरयम– 71– 72

[4] हदीद– 12

[5] हदीद– 13–15, निसाअ– 140

[6] ज़ोमर– 73, रअद – 22–24

दूसरी ओर , जब ईश्वर का इन्कार करने वाले और मिथ्याचारी लोग नर्क के निकट पहुँचेंगे , उस के द्वार खोल दिए जाएंगे और प्रकोप के फरिश्ते , कठोरता व हिंसा के साथ उन्हें डॉटेंगे और उन्हें कभी न समाप्त होने वाली यातनाओं व दंडों की खबर सुनाएगें ।[1]

## स्वर्ग

स्वर्ग में , आकाश व धरती के बराबर फैले हुए बाग होंगे [2] जो विभिन्न प्रकार के पेड़ों और पके हुए फलों से भरे होंगे और उन्हें तोड़ना सरल होगा[3] , भव्य इमारतें होंगी, स्वच्छ व शीतल जल ,[4] दूध व मधु तथा पवित्र पेय की नहरें बह रही होंगी , [5] और जन्नत में रहने वालों को जो भी चीज़ पसन्द होगी[6] और जिस प्रकार से पसन्द होगी , वह स्वर्ग में मौजूद होगी ।[7]

स्वर्ग में रहने वाले , रेशम के तथा सुन्दर कपड़ों में विभिन्न प्रकार के आभूषण, पहने,[8] एक दूसरे के सामने , सजे हुए तख्तों और नर्म बिस्तरों पर ,तकियों से टेक लगाए बैठे होंगे और ईश्वर का गुणगान करते होंगे,[9] न निरर्थक बात कहेंगे और न ही सुनेंगे ।[10] न उन्हें सर्दी सताएगी और न ही वे गर्मी से परेशान होंगे, [11] न दुख होगा , न थकन होगी और न वे उबेंगे,[1] न डर होगा व दुख , [2] न दिल में द्वेष व किसी से मन मुटाव[3]

---

[1] ज़ोमर– 71–72 , तहरीम– 6

[2] आले इमरान – 133 , हदीद – 21

[3] अलहाक़्क़ह– 23 , अद्दहर 6–18–21

[4] बक़रह– 25, आले इमरान – 15 व अन्य ।

[5] मुहम्मद– 15, अद्दहर –6–18– 21

[6] नेह्ल– 31 , फ़ुरक़ान – 16 व अन्य ।

[7] क़ाफ़–35

[8] कहफ़– 31, हज– 23, फ़ातिर–33 व अन्य ।

[9] आराफ़–43, युनुस–10, फ़ातिर 34 ,ज़ोमर–74

[10] मरयम – 62, नबअ–35व अन्य ।

[11] दहर–13

सुंदर व आज्ञाकारी दास उन के आसपास घूमते रहेंगे[4] जो उन्हें पवित्र पदार्थों के जाम पिलाएंगे कि जिस के बाद प्राप्त होने वाले आंनद व प्रफुल्लता का वर्णन संभव नहीं है और उस से कोई हानि भी नहीं होगी। [5] और वे विभिन्न प्रकार के मेवे व पंछियों के मांस खाएंगे [6] और सुन्दर , स्नेहिल और पवित्र साथियों से आनन्दित होंगे।[7] और सब से बढ़कर यह कि उन्हें , ईश्वरीय प्रसन्नता की आत्मिक नेमत प्राप्त होगी ,[8]और उन पर उन के ईश्वर की असीम कृपा होगी कि जिस से वे प्रसन्नता व संतोष विभोर हो जाएंगे और इस आनन्द की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता।[9] और यह अद्वीतीय सफलता और कल्पना से अधिक नेमतें और ईश्वरीय प्रसन्नता व निकटता व कृपा सदैव के लिए होंगी। [10] और कभी भी समाप्त नहीं होगीं । [11]

## नर्क

नर्क , इन्कार करने वालों और मिथ्याचारियों का स्थान है कि जिन के दिलों में ईमान का कोई प्रकाश नहीं है। [12] वह इतना व्यापक होगा कि समस्त

---

[1] मरयम – 62, नबअ–35व अन्य ।

[2] आराफ–35, हिज्र–48

[3] आराफ–43, हिज्र– 47

[4] तूर – 10, वाकेआ– 17

[5] साफ़्फ़ात– 45–47 , सॉद– 51, तूर– 23 , ज़ोखरुफ– 71 व अन्य ।

[6] सॉद–51 तूर– 22, अर्रहमान– 52– 67

[7] बक़रह–25 , आले इमरान – 15 , तौबा– 21– 72

[8] आले इमरान – 15, तौबा – 21, 72, हदीद–20, माएदा–119 व अन्य ।

[9] सजदा– 17

[10] बक़रह–25–82, आले इमरान – 107, 36, 198 ,नेसाअ– 13, 57, 122 , माइदा– 85, 119 आराफ– 42 , तौबा– 22,72, 89, 100 व अन्य ।

[11] दुखान –56 व अन्य।

[12] नेसाअ – 140 व अन्य।

पापियों को निगलने के बाद भी कहेगा और कुछ है! [1] नर्क समूचा आग है और केवल आग!!

आग की लपटें चारों ओर से लपलपा रही होंगी और उन की भयानक आवाज़ें , नर्कवासियों के दिलों में भय व आंतक को बढ़ा रही होंगी। [2]उन के चेहरों पर कुरूपता, झुर्रियाँ , दुख व आक्रोश का भाव होगा।[3] यहाँ तक के नर्क में तैनात फरिश्तों के चेहरों पर भी कृपा व नर्मी का कोई चिन्ह नहीं होगा।[4] नर्क वासियों को हथकड़ियों व बेड़ियों में जकड़ा गया होगा, [5] और आग, उन के पूरे शरीर को अपनी लपेट में लिए होगी, [6] और वे स्वयं ही उस आग का ईंधन होंगे।[7] नर्क में चीख – पुकार व रोने व गिड़गिड़ाने के अतिरिक्त कोई आवाज़ सुनाई नहीं देगी ।[8] नर्क वासियों के सिरों पर , खौलता हुआ पानी डाला जाएगा जो उन के शरीर को भीतर से भी पिघला देगा, [9] और जब भी वे भयंकर प्यास की दशा में पानी माँगेंगे तो उन्हें गर्म और गंदा पानी दिया जाएगा कि जिसे वे शौक से पी जाएंगे[10] और उन का आहार ज़क्कूम होगा कि जो आग में उगता होगा और उसे खाने से उन के शरीर के भीतर आग की जलन और अधिक हो जाएगी।[11] और उन के कपड़े , एक काले व चिपचिपे पदार्थ से बने होंगे कि जो स्वयं एक प्रकार का दंड होगा, [12]और उन के साथी , शैतान और पापी जिन्न

---

[1] क़ाफ़–30

[2] हूद– 106 , अंबिया – 100 व अन्य ।

[3] आले इमरान – 106 , मुल्क –27 व अन्य ।

[4] तहरीम–91

[5] रअद–5 , इब्राहीम – 49 , सबा– 33 व अन्य।

[6] इब्राहीम– 50 , फ़ुरक़ान – 13 व अन्य।

[7] बक़रह– 24 , आले इमरान – 10 , व अन्य ।

[8] फ़ुरक़ान – 13–14 , इन्शेक़ाक़ – 11

[9] हज–19 – 20 , दुखान – 48

[10] अनआम– 70, युनुस–4 , कहफ– 29 व अन्य।

[11] साफ़्फ़ात–62–66 ,सॉद–57 , दुखान– 45, 46, व अन्य ।

[12] इब्राहीम– 17, ताहा – 74 ,फ़ातिर– 36

होंगे कि जिन से वह दूरी की कामना करेंगे।[1] और एक दूसरे को बुरा भला कहेंगे।[2]

जैसे ही वे ईश्वर से क्षमा याचना के लिए बोलना चाहेंगे उन्हें चुप करा दिया जाएगा[3] फिर वे जहन्नम के रक्षकों से कहेंगे कि वे ईश्वर से प्रार्थना करें कि उन की यातना व दंड कम हो जाए, किंतु उन्हें उत्तर मिलेगा कि क्या ईश्वर ने पैगम्बर नहीं भेजे थे और तुम्हारे पास बहाना खत्म नहीं कर दिया था ?[4]

फिर वे मृत्यु की माँग करेंगे किंतु उन्हें उत्तर मिलेगा कि तुम सदैव इस नर्क में रहोगे[5] और हालाँकि मृत्यु की हर ओर से उन पर वर्षा हो रही होगी किंतु वे मरेंगे नहीं[6] और जितनी बार उन की त्वचा आग में जलेगी उतनी बार उन के शरीर को नयी त्वचा प्रदान कर दी जाएगी ताकि दंड व यातना जारी रहे[7]

वे स्वर्गवासियों से अनुरोध करेंगे कि उन्हें थोड़ा सा पीने का पानी दे दिया जाए किंतु उन्हें उत्तर मिलेगा कि ईश्वर ने स्वर्ग की नेमतों तुम्हारे लिए वर्जित और तुम पर हराम किया है।[8] और फिर स्वर्गवासी उन से पूछेंगे कि किस कारण तुम लोगों की यह दुर्दशा हुई है और तुम नर्क में डाल दिए गये ? तो वे कहेंगे : हम नमाज़ पढ़ने और ईश्वर की उपासना करने वालों में से नहीं थे और न ही निर्धनों की सहायता करते थे , हम अपराधियों के साथी थे और प्रलय के दिन को झुठलाते थे।[9]

---

[1] ज़ोखरुफ–38–39 , शोअरा– 94– 95

[2] आराफ– 38–39, अनकबूत–25

[3] मोमेनून– 108, रोम 57

[4] गाफिर– 49–50

[5] जोखरुफ–77

[6] इब्राहीम – 17 , ताहा–74

[7] नेसाअ– 56

[8] आराफ–50

[9] मुददस्सिर – 30–47

उस के बाद वे एक दूसरे से लड़ने झगड़ने लगेंगे[1] बहकने वाले, बहकाने वालों से कहेंगेः तुम लोगों ने हमें बहकाया है, वे उत्तर देंगेः तुम लोगों ने अपनी इच्छा से हमारी बात मानी है।[2]

कमज़ोर और निम्न वर्ग के लोग शक्तिशाली और उच्च वर्ग के लोगों से कहेंगे कि तुम लोगों ने हमें इस दशा तक पहुँचाया है जिस के उत्तर में कहा जाएगा कि क्या हम ने ज़बरदस्ती तुम्हें सत्य के मार्ग पर जाने से रोका था ?[3]

अन्ततः शैतान से कहेंगे : यह तू था जिस ने हम सब को बहका दिया जिस के उत्तर में शैतान कहेगाः ईश्वर ने तुम से सच्चा वादा किया किंतु तुम ने स्वीकार नहीं किया, और मैं ने तुम लोगों से झूठे वादे किये और तुम ने स्वीकार कर लिया, तो अब मुझे बुरा भला कहने के स्थान पर, स्वंय अपने आप को बुरा कहो, और आज के दिन हम मे से कोई भी किसी की सहायता नहीं कर सकता[4]। और इस प्रकार से, नर्कवासियों के पास दंड सहन करने और अपने पापों के बदले यातना में जीवन व्यतीत करने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं बचेगा और वे सदैव, नर्क में रहेंगे।[5]

---

[1] सॉद– 59–64

[2] आराफ–38–39, साफ़्फात–27–33

[3] इब्राहीम–21, सबा–31–33

[4] इब्राहीम –22

[5] बक़रह–39, 81, 162, 217, 217, 257, 275, आले इमरान– 88, 116, नेसाअ– 169, माएदा–37, 80, अनआम–128, आराफ–36 तथा अन्य दसियों आयतें।

## प्रश्न

1. क़यामत के समय धरती व आकाश की दशा का वर्णन करें।
2. प्रलय व क़यामत के आंरभ का वर्णन करें।
3. ईश्वरीय न्यायालय का विस्तार से वर्णन करें।
4. अनन्त स्थली की ओर पलायन का वर्णन करें।
5. स्वर्ग की नेमतों का वर्णन करें।
6. नर्क और नर्क वासियों की दशा का विस्तार से वर्णन करें।
7. नर्क वासियों की एक दूसरे से वार्ता का विस्तार से वर्णन करें।

इक्यावनवाँ पाठ

# लोक व परलोक की तुलना

- भूमिका
- लोक नश्वर और परलोक अनन्त है
- परलोक में नेमत व यातना में भिन्नता
- परलोक का आधार होना
- सांसारिक जीवन के चयन का परिणाम

## भूमिका

बुद्धि तथा अन्य मार्गो से परलोक के बारे में हमें जो जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं उन के आधार पर हम लोक व परलोक की कई आयामों से एक दूसरे से तुलना कर सकते हैं। सौभाग्य से, स्वंय कुरआन में भी इस प्रकार की तुलना की गयी है और हम कुरआन की आयतों से लाभ उठाते हुए , लोक व परलोक में जीवन की सही रूप से समीक्षा कर सकते तथा परलोक की श्रेष्ठता को समझ सकते हैं।

## लोक नश्वर और परलोक अनन्त है

इस संसार और परलोक के मध्य सब से पहला और स्पष्ट अंतर , इस संसार का सीमित जीवन और परलोक का अनन्त होना है। इस संसार में हर मनुष्य की आयु एक न एक दिन समाप्त हो जाने वाली है और अगर कोई लाखों वर्ष भी इस संसार में जीवित रहने में सफल हो गया तब भी वह प्रलय के समय मर जाएगा जैसा कि पिछले पाठों में बताया गया और दूसरी ओर , कुरआने मजीद की लगभग अस्सी आयतों में परलोक के अनन्त होने की बात की गयी है और स्पष्ट है कि सीमित वस्तु चाहे कितनी भी अधिक हो , उस की असीमित वस्तु से तुलना नहीं की जा सकती ।

इस प्रकार से परलोक , स्थायित्व की दृष्टि से इस संसार से कई गुना अधिक है और यह ऐसा विषय है जिस पर कुरआन मजीद ने विभिन्न आयामों से बल दिया है तथा परलोक के स्थाई तथा इस संसार के अस्थाई होने की

खुल कर घोषणा की है और कुरआन की बहुत सी आयतों में सासांरिक जीवन का उदाहरण , उस पौधे से दिया गया है जो कुछ दिनों तक हरा भरा रहता है और फिर पीला होकर सूख जाता है ।[1] इसी प्रकार अन्य बहुत सी आयतों में कहा गया है कि जो कुछ ईश्वर के पास है वह बाकी रहेगा।[2]

## परलोक में नेमत व सुखों तथा यातना में भिन्नता

सासांरिक जीवन और परलोक में एक अन्य मुख्य अंतर यह है कि इस संसार की खुशियाँ व सुख , दुखों व कठिनाईयों से मिले हुए हैं और ऐसा नहीं है कि कुछ लोग सदैव ही सुख भोग करें और कुछ अन्य सदैव दुख व समस्याओं से घिरे रहें बल्कि सारे लोगों को किसी न किसी प्रकार का सुख प्राप्त होता है और इसी प्रकार हर एक को कोई न कोई दुख व कठिनाई होती है।

किंतु परलोक में ऐसा नहीं है बल्कि वहाँ नर्क व स्वर्ग नामक दो अलग अलग भाग हैं और एक भाग में दुख, समस्या व कठिनाई का कोई चिन्ह नहीं होगा और दूसरे भाग में आग, प्रकोप, दंड, कामना व पछतावे के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा।

कुरआने मजीद में भी इस प्रकार की तुलना की गयी है तथा परलोक की नेमतों व सुखों को इस संसार के सुखों से श्रेष्ठ बताया गया है । इसी प्रकार इस संसार के दुख व समस्याओं से , परलोक के दुख , परिश्रम व कठिनाईयों को कई गुना अधिक बताया गया है।

---

[1] युनुस– 24 , कहफ 45–46 , हदीद–20

[2] नेह्ल– 96

## परलोक आधार है

संसार और परलोक के मध्य एक अन्य अंतर यह है कि सांसारिक जीवन, परलोक की भूमिका और अनन्त कल्याण प्राप्ति का साधन है और परलोक का जीवन , अंतिम और मुख्य जीवन है भले सांसारिक जीवन के सुख व आंनद मनुष्य को पसन्द होते हैं , किंतु इस बात के दृष्टिगत कि वह सब कुछ अनन्त सफलता व कल्याण की प्राप्ति का साधन मात्र होते हैं , यह सांसारिक जीवन मुख्य गंतव्य व लक्ष्य नहीं हो सकता और इस जीवन का वास्तविक मूल्य उन कर्मों पर निर्भर होता है जो मनुष्य परलोक को दृष्टि में रखकर करता है। [1]

इस आधार पर, अगर कोई परलोक के जीवन को भूल बैठे और सांसारिक सुखभोग से ही सारी आशाएं लगा ले तथा उस के सुखों व आनन्दों को अपने जीवन का लक्ष्य बना ले तो वास्तव में उस ने जीवन के सही मूल्य को पहचाना ही नहीं बल्कि उस ने बड़ी गलती की हैं क्योंकि उस ने मार्ग को गंतव्य समझ लिया है। और इस प्रकार का काम खेल व मनोरंजन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होगा । और यही कारण है कि कुरआने मजीद ने सांसारिक जीवन को खेल कूद का सामान और धोखा देने वाली वस्तु कहा है। [2]और परलोक के जीवन को वास्तविक जीवन कहा है। [3] किंतु इस बात पर भी ध्यान रहना चाहिए कि संसार की जो कुछ भी बुराई बताई गयी है वह संसार का मोह रखने वालों की विचारधारा से संबंधित है अन्यथा, ईश्वर के सुकर्मी दासों के लिए कि जो संसार की वास्तविकता को जानते और उसे एक साधन समझते हैं तथा अपने परलोक को बनाने में उस का प्रयोग करते हैं , न केवल संसार बुरा नहीं है बल्कि उन के लिए उस का बहुत महत्व है।

---

[1] क़सस– 77

[2] आले इमरान – 185, अनकबूत – 64 व अन्य ।

[3] अनकबूत– 64, फज्र – 24

## सांसारिक जीवन के चयन का परिणाम

परलोक की विशेषताओं, उस की श्रेष्ठता, उस की अकल्पनीय नेमतों व सुखों , ईश्वर से निकटता के आंनद तथा सांसारिक सुखों की तुलना में उन की श्रेष्ठता के दृष्टिगत यह तो निश्चित है कि परलोक की मुकाबले में सांसारिक जीवन को प्राथमिकता देना , मूर्खता ही होगा [1] और उस का कामना व पछतावे के अतिरिक्त कोई परिणाम नहीं निकलेगा। । किंतु इस प्रकार के चयन की बुराई उस समय और अधिक स्पष्ट होती है जब हमें यह पता चले कि संसार और उस के सुखों का चयन , न केवल यह कि परलोक की अनन्त नेमतों और सुखों से वचिंत रहने का कारण बनता है बल्कि यह सदैव की विफलता व पछतावे का भी कारण बनता है।

इस स्पष्टीकरण के साथ कि अगर मनुष्य अनन्त कल्याण के स्थान पर जल्दी ही समाप्त हो जाने वाले सांसारिक सुखों का चयन कुछ इस प्रकार से करे कि उस से परलोक में उसे किसी प्रकार की बुराई व नुकसान का सामना न करना पड़े तो भी यह काम, परलोक की अनन्त नेमतों व सुखों के दृष्टिगत मुखतापूर्ण होगा किंतु चूँकि परलोक से कोई भी बचने वाला नहीं है और जिस ने अपने पूरे जीवन को सांसारिक सुख भोग में लगाए रखा , और परलोक को पूरी तरह से भुला दिया या मूल रूप से उस का इन्कार किया तो वह न केवल यह कि स्वर्ग के सुखों से वंचित रह जाएगा बल्कि नर्क के दंड का भी उसे सामना करना पड़ेगा और इस प्रकार से उसे दोहरा नुकसान होगा। [2]

यही कारण है कि कुरआन मजीद , एक ओर तो परलोक के सुखों की श्रेष्ठता का वर्णन करता और चेतावनी देता है कि सांसारिक सुख कहीं तुम्हें

---

[1] आला–16

[2] हूद– 22 , कहफ– 102 व अन्य ।

धोखा न दें [1] तथा दूसरी ओर, संसार मोह और परलोक को भुलाने के नुकसानों पर भी बल देता है और कहता है कि परलोक का इन्कार अथवा उसे भुला देने से, भुलाने वाला अनन्त दुखों व दंडों का पात्र बन जाता है। [2] और ऐसा नहीं है कि संसार का चयन करने वाला केवल परलोक के सुखों से ही वंचित होता है बल्कि इस के अलावा उसे अनन्त दंड का भी पात्र समझा जाएगा ।

इस का कारण भी यह है कि सांसारिक मोह माया में फॅसने वाला , ईश्वर द्वारा दी गयी योग्यताओं का दुरूपयोग करता है और जिस वृक्ष से अनन्त कल्याण का फल निकलना चाहिए था, उसे सुखा देता है और नेमत व सुख सुविधा देने वाले को भी भुला देता है और इस प्रकार का चयन करने वाला जब अपने चयन का परिणाम देखता है तो कामना करता है कि काश मिट्टी ही में मिला रहता ताकि यह दिन न देखना पड़ता । [3]

## प्रश्न

1. ससांर और परलोक के मध्य अंतर को स्पष्ट करें ।

2. संसार की आलोचना का कारण बताएं।

3. संसार मोह के नुक़सानों का वर्णन करें।

4.क्यों परलोक पर विश्वास न रखने वाला, अनन्त दंड का पात्र बनता है?

---

[1] बक़रह– 102 , 200 , तौबा– 38 व अन्य ।

[2] इसरा– 10, बक़रह– 82 , अनआम– 130 तथा अन्य ।

[3] नबा– 40

बावनवाँ पाठ

# संसार का परलोक से संबधं

- भूमिका
- संसार , परलोक की खेती है
- संसार के सुख , परलोक में कल्याण का कारण नहीं हैं
- संसार के सुख , परलोक में दंड व अहित का कारण भी नहीं हैं
- परिणाम

## भूमिका

हम यह जान चुके हैं कि मनुष्य का जीवन , इसी नश्वर संसार तक ही सीमित नहीं है और वह पुनः परलोक में जीवित होगा और सदैव उस लोक में रहेगा और हम यह भी जान चुके हैं कि परलोक का जीवन, वास्तविक जीवन है यहा तक कि सासांरिक जीवन उस की तुलना में जीवन कहे जाने योग्य भी नहीं है।

अब अवसर है इस बात का कि हम इन दोनों लोकों के मध्य संबंध का वर्णन करें । यद्यपि पिछली चर्चाओं के दौरान किसी सीमा तक यह संबंध स्पष्ट हो चुका है किंतु इस संदर्भ में गलत विचार धाराओं के दृष्टिगत , उचित होगा कि इस संदर्भ में अधिक चर्चा की जाए और बौद्धिक तर्कों तथा कुरआन की आयतों का प्रयोग करते हुए लोक व परलोक के मध्य संबंध को स्पष्ट किया जाए।

## संसार , परलोक की खेती है

यहाँ पर सब से पहले जिस विषय पर बल दिया जाना आवश्यक है वह यह है कि परलोक में सफलता व विफलता , संसार में मनुष्य के कर्मों पर निर्भर है और ऐसा नहीं है कि परलोक की नेमतों को प्राप्त करने के लिए स्वयं परलोक में प्रयास करना संभव है और जिन लोगों के पास अधिक शारीरिक अथवा बौद्धिक शक्ति है वह अधिक नेमतों व सुखों को प्राप्त करने में सफल होगें या यह कि कुछ लोग धोखे व चालाकी द्वारा , दूसरों की उपलब्धियों को

अपने हितों में प्रयोग कर सकेंगे जैसा कि कुछ कम बुद्धि वाले लोग ऐसा सोचते रहे हैं और परलोक को संसार से पूर्ण रूप से भिन्न लोक मानते थे ।

कुरआन मजीद इस संदर्भ में कुछ नास्तिकों के बातों को दोहराते हुए कहता है:

**और मैं तो नहीं समझता कि क़यामत आने वाली है और अगर मुझे अपने पालनहार के पास पलटाया भी गया तब भी मुझे यह सांसारिक सुख वहाँ प्राप्त होंगे ।**[1]

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर कहा जाता है :

**और मैं नही समझता कि क़यामत आने वाली है और अगर मुझे अपने पालनहार की ओर पलटाया भी गया तो वहाँ भी मेरे पालनहार के पास मेरे लिए भलाई होगी।**[2]

इस प्रकार के लोग या तो यह समझते थे कि परलोक में भी वे अपने प्रयासों से सुख व आनन्द प्राप्त कर सकते हैं या फिर यह समझते थे कि संसार में उन के पास जो सुख– सुविधाएं हैं वह इस बात की चिन्ह हैं कि उन पर ईश्वर की विशेष कृपा है इस लिए परलोक में भी उन पर ईश्वर की विशेष कृपा रहेगी!

प्रत्येक दशा में अगर कोई परलोक को एक पूर्ण रूप से भिन्न व अलग लोक माने और यह समझे कि इस संसार में जो कुछ भी वह अच्छा बुरा करता है उस का परलोक से कोई संबंध नहीं है तो वास्तव में वह उस प्रलय व क़यामत में विश्वास नहीं रखता जो समस्त ईश्वरीय धर्मों का एक मूल सिद्धान्त है क्योंकि इस सिद्धान्त अर्थात क़यामत पर विश्वास का मूल आधार , सांसारिक कर्मों का परलोक की नेमतों व दंडों में प्रभावी होना है और इसी लिए, संसार को, बाज़ार, व्यापारिक केन्द्र तथा परलोक की खेती कहा जाता है कि जहाँ

---

[1] कहफ–36

[2] फुस्सेलत–50

प्रयास,श्रम व खेती करके परलोक में उस का स्थायी परिणाम और फल प्राप्त किया जा सकता है।[1] और क़यामत का तर्क तथा कुरआन की आयतों से भी यही सिद्ध होता है इस लिए इस बारे में अधिक चर्चा की आवश्यकता नहीं है।

## सांसारिक सुख, परलोक की नेमतों का कारण नहीं हैं

कुछ अन्य लोग मानते थे कि धन व संतान तथा सांसारिक सुख के अन्य साधन , परलोक में भी सुख व सुविधा का कारण बनेंगे और प्राचीन काल में मरे हुए लोगों के साथ मूल्यवान रत्नों और सोने व चॉदी को शायद इसी कारण गाड़ा जाता था ।

कुरआने मजीद , बल देता है कि न धन और न संतान , ईश्वर से निकटता का कारण बन सकती है[2] और न ही परलोक में किसी को स्वयतः कोई नेमत अथवा सुख प्राप्त होने वाला है।[3] और मूल रूप से इस प्रकार के सांसारिक संबधं व संपर्क परलोक में समाप्त हो जाएंगे।[4] और जो भी अपना धन व दौलत छोड़कर[5] अकेला ईश्वर की ओर जाता है,[6] तो वहॉ उसे केवल ईश्वर से आध्यात्मिक निकटता ही लाभ पहुॅचाती है और यही कारण है कि ईश्वर पर ईमान व विश्वास रखने वालों के मध्य अगर आध्यात्मिक आधारों पर अपनी पत्नियों व संतान से संबधं होगा तो स्वर्ग में भी वे एक साथ रहेंगे।[7]

निष्कर्ष यह निकला कि लोक व परलोक के मध्य संबधं , सांसारिक संबधों की भॉति नहीं है और ऐसा नहीं है कि जो भी इस संसार में अधिक

---

[1] यहॉ पर इस बात की ओर भी ध्यान रखना चाहिए कि कुरआन में सांसारिक फल व दंड की भी बात की गयी है किंतु पूर्ण फल व दंड केवल परलोक में ही मिलेगा।

[2] सबा– 37

[3] शोअरा– 88 , लुकमान– 33 तथा अन्य ।

[4] बक़रह– 166 तथा अन्य ।

[5] अनआम–94

[6] मरयम–80, व 91

[7] रअद– 23, गाफिर– 8 , तूर– 21

शक्तिशाली , अधिक सुन्दर व अधिक प्रसन्न होगा वह परलोक में भी वैसा ही होगा । क्योंकि अगर ऐसा होता तो फिर संसार के कूर व बड़े राजाओं व बादशाहों के लिए परलोक में भी इसी प्रकार की नेमतें व सुख होता । बल्कि वास्तविकता यह है कि इस संसार में कमज़ोर व निर्धन समझे जाने वाले बहुत से ऐसे लोग होंगे जिन्हें परलोक में हर प्रकार का सुख व आंनद प्राप्त होगा क्योंकि उन्हों ने ईश्वर के आदेशों का पालन किया होगा ।

कुछ अनभिज्ञ लोग यह समझे कि इस आयत का कि **जो इस संसार में अधां होगा वह परलोक में भी अंधा और अधिक पथभ्रष्ट होगा** [1]का अर्थ यह है कि संसार में सुख व आनन्द , परलोक के सुख व आनन्द से संबंध रखता है किंतु उन्हों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि इस आयत में अंधेपन से आशय ,विदित रूप से अंधा पन नहीं है बल्कि दिलों का अंधापन है जैसा कि एक अन्य आयत में आया है:

**निश्चित रूप से आँखें अंधी नहीं होतीं बल्कि सीनों में मौजूद दिल अंधे होते हैं ।** [2]

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर कुरआन में आया है:

**और जिस ने मेरी याद से मुँह मोड़ा तो उस का जीवन कठिन होगा और हम उसे क़यामत के दिन अंधा उठाएंगे। कहेगा मुझे अंधा क्यों उठाया मैं तो देखता था तो कहा जाएगा यह इस लिए है कि तूने अपने पालनहार के चिन्हों को भुला दिया था इस लिए आज तुझे भुला दिया गया ।** [3]

तो इस प्रकार से परलोक में अधां होने का कारण , ईश्वरीय चिन्हों को इस संसार में भुलाना है न कि विदित रूप से अंधापन ।

---

[1] इसरा –72

[2] हज–46

[3] ताहा–124– 126

तो फिर लोक व परलोक के मध्य संबंध, सासांरिक संबंधों से पूर्ण रूप से भिन्न है।

## सांसारिक सुख, परलोक में दंड का कारण नहीं हैं

दूसरी ओर , कुछ लोग यह समझे कि संसार और परलोक के सुखों में विरोधाभास पाया जाता है अर्थात परलोक में सुख भोग उसी को प्राप्त होगा जिस ने इस ससांर में समस्त सुखों से दूरी की होगी और जिस ने इस संसार में सुख भोगा होगा वह परलोक के सुखों से दूर रखा जाएगा । इस के लिए उन्हों ने कुरआन की कुछ ऐसी आयतों को पेश किया है जिन में कहा गया है कि संसार का मोह रखने वालों को परलोक में कुछ भी नहीं मिलेगा किंतु उन्हों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि ससांर का मोह और संसार के सुख प्राप्त करना समान नहीं है बल्कि संसार का मोह रखने वाला वह होता है जो सांसारिक आनंदों को अपना लक्ष्य बनाता है और अपनी पूरी शक्ति सांसारिक सुखों को प्राप्त करने में लगा देता है भले ही उसे बहुत से सुख प्राप्त भी न हों किंतु परलोक का मोह रखने वाला वह होता है कि जो सांसारिक मोह माया में न फॅसे और न ही उसे अपने जीवन का लक्ष्य बनाए भले ही उसे बहुत से सांसारिक सुख प्राप्त हों उदाहरण स्वरूप हज़रत सुलैमान तथा उन के जैसे बहुत से ईश्वरीय दूतों को सांसारिक सुख भी प्राप्त थे और वे इन सांसारिक सुख साधनों को अपना परलोक सॅवारने के लिए प्रयोग करते थे ।

तो इस प्रकार से यह स्पष्ट हुआ कि सांसारिक सुख व परलोक के फलों के मध्य किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं है बल्कि सांसारिक सुख व कठिनाईयॉ ईश्वर के ज्ञान व विशेष सूझबूझ के अंतर्गत कुछ लोगों के लिए होती हैं [1] और यह सब मनुष्य की परीक्षा के लिए साधन मात्र हैं [1] और

---

[1] ज़ोखरुफ़— 32

सांसारिक सुख अथवा कठिनाइयाँ ईश्वरीय कृपा अथवा उस के प्रकोप का चिन्ह नहीं होतीं ।[2]

## परिणाम

इन चर्चाओं से जो निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि संसार और परलोक के मध्य किसी भी प्रकार के संबधं न होने में विश्वास वास्तव में क़यामत में विश्वास न रखने के समान है किंतु संसारिक सुखों और कठिनाईयों का परलोक के सुखों व दंडों से कोई संबंध नहीं है बल्कि जो वस्तु परलोक में सुख व दंड का कारण बनती है वह वास्तव में इस संसार में मनुष्य के अपने कर्म होते हैं जिसे वह अपने अधिकार व इच्छा के अंतर्गत करता है वह भी इस आधार पर कि उस ने ईश्वर द्वारा प्रदान की गयी शक्तियों व क्षमताओं को गलत अथवा सही दिशा में प्रयोग किया है या नहीं ? और यह विषय कि परलोक के फल , संसार में मनुष्य के कर्मों पर निर्भर हैं , कुरआन की असंख्य आयतों से सिद्ध होता है ।[3]

## प्रश्न

1. संसार व परलोक के मध्य संपर्क के इन्कार का क्या परिणाम निकलेगा?

2. संसार , परलोक की खेती है इस का क्या अर्थ है?

3. संसार व परलोक के सुखों में क्या संबंध है?

4. संसार व परलोक के दुखों व कठिनाइयों के मध्य क्या संबंध है?

5. कौन सी वस्तुएं परलोक में सुख – दुख का कारण और वास्तविक संपर्क का साधन बनती हैं?

---

[1] अनफाल – 28, अंबिया – 35 , तगाबुन– 15 तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

[2] आले इमरान – 179 , मोमेनून– 56 , फज्र – 15 –16

[3] बक़रह – 25,38,62,82,103,112,277 आले इमरान – 15,57,114,115,133,179,198, तथा अन्य बहुत सी आयतें ।

तिरपनवाँ पाठ

# लोक– परलोक के मध्य संबधं की क़िस्म

- भूमिका
- वास्तविक संबधं या समझौता ?
- कुरआनी प्रमाण

## भूमिका

हम यह जान चुके हैं कि एक ओर , ईमान और अच्छे कर्म तथा दूसरी ओर  ईश्वर से निकटता व परलोक की नेमतों और एक ओर ईश्वर के इन्कार व पापों तथा दूसरी ओर ईश्वर से दूरी व परलोक के सुखों से वंचित होने के मध्य सीधा संबधं व संतुलन है। और हम ने यह भी जाना कि अच्छे कर्म व ईश्वर पर विश्वास तथा परलोक में प्रकोप व दुखों तथा ईश्वर के इन्कार व पाप एवं परलोक की नेमतों व सुखों के  मध्य उल्टा अनुपात व विरोधाभास पाया जाता है और कुरआन के आधार पर इस विरोधाभास में किसी भी प्रकार की शंका नही की जा सकती और इस विषय के इन्कार का अर्थ कुरआन के इन्कार के समान है ।

किंतु इस आवश्यक विषय के संदर्भ में , कुछ ऐसी बातें भी सामने आती हैं जिन पर विस्तार के साथ चर्चा की आवशकता होती है, उदाहरण स्वरूप, यह संबंध, वास्तविक व मूल संबंध हैं अथवा किसी समझौते के कारण यह संपर्क बना है ? और यह कि ईमान व ईश्वर पर विश्वास तथा अच्छे कर्मों और ईश्वर से इन्कार व पाप के मध्य क्या संबंध है ? और क्या स्वंय अच्छे व बुरे कर्म भी प्रभावित करने व प्रभाव स्वीकार करने की क्षमता रखते हैं या नहीं ?

इस पाठ में हम पहले विषय पर चर्चा करेंगे और यह सिद्ध करेंगे कि इस प्रकार के संबंध बनाए हुए व समझौते के अंतर्गत नहीं होते।

## वास्तविक संबधं या समझौता

जैसा कि बारम्बार बताया जा चुका है कि सांसारिक कर्मों और परलोक के दुखों व नेमतों के मध्य जो संबंध है , वह भौतिक व साधारण नहीं है तथा उसे भौतिक अथवा रसायनिक सिद्धान्तों के आधार पर समझा या समझाया नहीं जा सकता । बल्कि यह सोचना भी गलत होगा कि मनुष्य के कर्म में प्रयोग होने वाली ऊर्जा , पदार्थ व ऊर्जा में परिवर्तन के सिद्धान्त के आधार पर होती है और परलोक के दुख व सुख के रूप में सामने आती है क्योंकि :

पहली बात तो यह कि किसी भी मनुष्य की करनी व कथनी के लिए प्रयोग होने वाली ऊर्जा , शायद इतनी भी न हो कि एक सेब का बीज ही बन सके , स्वर्ग ही अथाह नेमतों व अपार सुखों की तो बात ही दूर है!

दूसरी बात यह कि पदार्थ और ऊर्जा का एक दूसरे में परिवर्तन , विशेष प्रकार के कारकों के अंतर्गत होता है और इस का कर्मों के अच्छे अथवा बुरे होने या कर्ता के इरादे से कोई संबंध नहीं होता और किसी भी भौतिक क़ानून के आधार पर शुद्ध व अशुद्ध तथा दिखावे के लिए किए जाने वाले कर्मों के मध्य अंतर को समझा नहीं जा सकता कि इस प्रकार से किसी कर्म की ऊर्जा नेमत बने और किसी अन्य कर्म की ऊर्जा दुख व दंड।

तीसरी बात यह कि जो ऊर्जा एक बार अच्छे कर्म के लिए प्रयोग हुई है संभव है दूसरी बार वही ऊर्जा अवज्ञा व पाप के लिए भी प्रयोग कर ली जाए।

किंतु इस प्रकार के संबंधों को नकारने का अर्थ, वास्तविक संबधो का पूर्ण रूप से इन्कार नहीं है , क्योंकि वास्तविक संबधों का दायरा, उन संबधो को भी अपने अंदर लिए होता है जो अज्ञात व अन्जाने होते हैं और भौतिक ज्ञान जिस प्रकार से इस संसार व परलोक के मध्य संबंध का पता नहीं लगा सकता उसी प्रकार इस तरह के सभी संबंधों को पूर्ण रूप से नकारने की भी योग्यता

नहीं रखता और इस बात की कल्पना कि भले व बुरे कर्म, मनुष्य की आत्मा पर वास्तविक प्रभाव डालते हैं और आत्मा पर पड़ने वाले वही प्रभाव, परलोक के दुख व सुख का कारण होते हैं , आतार्किक नही होगी बल्कि इस का दर्शनशास्त्र के विशेष सिद्धान्तों के आधार पर वर्णन किया जा सकता है परन्तु उस का उल्लेख इस किताब में उचित नहीं है।

## कुरआनी प्रमाण

हॉलाकि इस संदर्भ में कुरआन की आयतें प्रायः ऐसी हैं कि जिस से ऐसा प्रतीत होता है कि यह संबधं बनाए हुए और किसी समझौते के अंतर्गत हैं उदाहरण स्वरूप वह आयतें जो प्रतिफल व दंड के संदर्भ में हैं, किंतु बहुत सी एसी आयतें भी हैं जिन से सिद्ध होता है कि मनुष्य के कर्मो और परलोक में उस के प्रतिफल के मध्य जो संबन्ध है वह एक समझौते के अंतर्गत स्थापित होने वाले संबधो से बढ़ कर है , इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि पहली क़िस्म की आयतें आम लोगों को बात समझाने के लिए हैं ।

इसी प्रकार ईश्वरीय दूतों और उन के उत्तराधिकारियों के कथनों से भी यह समझ में आता है कि मनुष्य के स्वेच्छा से किए गये कामों के विभिन्न प्रकार के आध्यात्मिक रूप होते हैं जो बरज़ख या मध्यकाल तथा क़यामत के दिन सामने आएंगे ।

अब यहॉ पर हम मनुष्य के कर्मो और परलोक के प्रतिफल के मध्य वास्तविक संबधों को दर्शाने वाली कुछ आयतों का वर्णन करेंगे ।

**और तुम जो भलाई भेजते हो उसे ईश्वर के पास पाओगे।** [1]

या यह आयतः

[1] बक़रह– 110 व अन्य ।

**और जब हर एक अपने अच्छे कामों को अपने सामने पाएगा और जो भी बुरा काम किया होगा उसे भी, वह चाहेगा कि वह अपने बुरे कर्मों से अत्याधिक दूर चला जाए।** [1]

एक अन्य आयत में है:

**और जिस दिन मनुष्य देखेगा उसे जो उस ने अपने आगे भेजा है।** [2]

एक अन्य आयत है:

**तो जो राई के दाने के बराबर भी अच्छाई करेगा, उसे देखेगा और जो राई के दाने के बराबर भी बुराई करेगा उसे देखेगा।** [3]

इसी प्रकार कुरआन में कहा गया है:

**क्या तुम्हें तुम्हारे कर्मों के अतिरिक्त भी प्रतिफल मिलेगा?**

इसी प्रकार कहा गया है :

**जो लोग अनाथों की संपत्ति खाते हैं अत्याचार द्वारा वह तो केवल अपने पेट में आग भर रहे हैं।** [4]

स्पष्ट सी बात है कि क़यामत के दिन केवल यह देखना कि मनुष्य ने संसार में क्या काम किये हैं, उस के कामों का प्रतिफल नहीं होगा बल्कि उस के कामों के आध्यात्मिक रूप होंगे जो विभिन्न प्रकार के सुख व दुख के रूप में सामने आएगें और उन्हीं के द्वारा उसे दंडित अथवा पुरस्कृत किया जाएगा। जैसा कि इसी अंतिम आयत से समझा जा सकता है कि किसी अनाथ की संपति खाने का आध्यात्मिक रूप, आग खाना है और जब परलोक में वास्तविकताओं से पर्दा हटेगा तो यह पता चलेगा कि अमुक वर्जित खाने की वास्तविकता आग थी और उस की आंतरिक जलन का भी उसे आभास होगा

---

[1] आले इमरान – 30

[2] नबा– 40

[3] ज़िलज़ाल– 7–8

[4] निसा– 10

और उस से कहा जाएगा कि क्या यह आग वही नहीं है जिसे तुम ने हराम खाने के रूप में अपने पेट में डाला है ?!

## प्रश्न

1. इस विचार में क्या बुराई है कि कर्मो का प्रतिफल वास्तव में उन के लिए प्रयोग की जाने वाली ऊर्जा को पदार्थ में बदलने के अर्थ में है ?

2. मनुष्य के कर्मो और परलोक में उस के प्रतिफल के मध्य वास्तविक संबधं की कल्पना तार्किक रूप से किस प्रकार संभव है ?

3. कर्मो के ट यवहारिक होने का क या प्रमाण है ? और प्रतिफल आदि जैसे शब्दों के प्रयोग का क्या कारण है ?

4. क्या कर्मो के साक्षात व व्यवहारिक होने की इसी सांसारिक रूप में व्याख्या की जा सकती है?

चौवनवाँ पाठ

# अनन्त सफलता व विफलता में ईमान व इन्कार की भूमिका

- भूमिका
- इन्कार व ईमान की वास्तविकता
- इन्कार व ईमान का मापदंड
- अनन्त सफलता व विफलता पर ईमान व इन्कार का प्रभाव
- कुरआनी आयतें

## भूमिका

दूसरा विषय यह है कि क्या  ईमान और अच्छे कर्म अलग अलग रूप से अनन्त कल्याण व सफलता का कारण हैं या दोनों मिल कर परलोक में मनुष्य को सफल बनाते हैं ? और इसी प्रकार से क्या ईश्वर का इन्कार और बुरे कर्म अलग अलग रूप से परलोक में दंड व अनन्त प्रकोप का कारण बनते हैं या दोनों एक साथ मिल कर ? दूसरी दशा में , अगर कोई केवल ईमान अर्थात ईश्वर पर विश्वास रखता हो या फिर केवल अच्छे कर्म करता हो तो उस का अंत क्या होगा ? और इसी प्रकार से अगर कोई व्यक्ति केवल ईश्वर का इन्कार करता हो या केवल पाप ही करता हो तो उस का प्रतिफल क्या होगा? और अगर ईश्वर पर विश्वास रखने वाला कोई व्यक्ति अत्याधिक पाप करता हो या ईश्वर का इन्कार करने वाला कोई व्यक्ति अत्याधिक पुण्य करता हो तो क्या वह परलोक में सफल लोगों में से होगा या विफल ? या अगर कोई अपने जीवन के कुछ भाग को ईमान के साथ अच्छे कर्म में व्यतीत करे तथा अन्य भाग को ईश्वर के इन्कार के साथ बुरे कर्म करते हुए व्यतीत करे तो उस को कैसा प्रतिफल मिलेगा?

इस विषय पर इस्लाम के आंरभिक कालों से ही चर्चा होती आयी है और बहुत से गुट ऐसे भी थे जिन का मानना था कि  पाप केवल परलोक में अनन्त दंड का कारण नहीं  बनता है बल्कि पापों द्वारा मनुष्य धर्म से ही बाहर हो जाता है किंतु कुछ अन्य गुटों का मानना था कि ईश्वर पर विश्वास होना ही परलोक

में सफलता के लिए पर्याप्त है और पाप , ईश्वर पर विश्वास रखने वाले की परलोक में सफलता को प्रभावित नहीं करता ।

किंतु वास्तविकता यह है कि हर पाप , परलोक में अनन्त दंड व विफलता का कारण नहीं बनता हॉलाकि यह भी संभव है कि अत्याधिक पाप , ईश्वर पर विश्वास को समाप्त कर दें । और दूसरी ओर , ऐसा नहीं है कि ईमान के होते हुए जो भी पाप किए जाएं उन का कोई प्रभाव ही नहीं होगा ।

हम इस पाठ में , सब से पहले ईमान और इन्कार की वास्तविकता पर प्रकाश डालेगें और फिर परलोक में सफलता अथवा विफलता में उन की भूमिका व प्रभाव पर चर्चा करेंगे ।

## ईमान व इन्कार की वास्तविकता

ईमान दिल और मन की उस दशा को कहते हैं जो किसी अर्थ के ज्ञान व उस की ओर झुकाव के कारण पैदा होती है और इन दोनों कारकों में से किसी एक में कमी अथवा वृद्धि का सीधे रूप से प्रभाव होता है । और अगर मनुष्य किसी वस्तु की उपस्थिति से – भले ही कल्पना की सहायता से – अवगत न हो तो वह उस पर ईमान अथवा विश्वास नहीं रख सकता किंतु केवल ज्ञान या अवगत होना ही , पर्याप्त नहीं है क्योंकि संभव है कि ज्ञान और उस के लिए आवश्यक वस्तुएं , उस की इच्छा के विपरीत हों और उस का रुझान उस वस्तु की विपरीत दिशा में हो जिस के कारण वह उसे करने का इरादा न करे बल्कि संभव है कि वह उस के प्रतिकूल कार्य को करने का निर्णय कर ले ।

जैसा कि कुरआन में फिरऔन के अनुयाईयों के बारे में कहा गया है:

**उन्हों ने ईश्वरीय चिन्हों का इन्कार अत्याचार व अंहकार के कारण किया हॉलाकि उन्हें उन का विश्वास हो चुका था ।**[1]

और हज़रत मूसा ने फिरऔन को संबोधित करते हुए कहा था :

**तुझे पता है कि यह जो कुछ आया है वह आकाशों व धरती को बनाने वाले पालनहार की ओर से ही आया है।**[2]

हॉलाकि फिरऔन ईश्वर पर विश्वास नहीं रखता था और लोगों से कहता था :

**मुझे अपने अतिरिक्त तुम्हारे किसी ईश्वर का पता नहीं है ।**[3]

और जब वह डूबने लगा तब उस ने कहा :

**मैं ईमान ले आया इस पर कि उस ईश्वर के अलावा कोई ईश्वर नहीं है जिस पर इस्राईली समुदाय ईमान रखते हैं।**[4]

किंतु हमें यह पता चल चुका है कि इस प्रकार का ईमान अर्थात विवशता में ईश्वर पर विश्वास रखने की घोषणा का कोई लाभ नहीं है ।

तो इस प्रकार से स्पष्ट हुआ कि ईमान व ईश्वर पर विश्वास का आधार,स्वेच्छा व चयन शक्ति के साथ झुकाव है । यह दशा उस ज्ञान व जानकारी से भिन्न है जो अनेच्छित रूप से बिना किसी अधिकार के प्राप्त हो जाया करती है। इस आधार पर ईमान को मन का एक स्वेच्छिक काम कहा जा सकता है अर्थात कर्म के अर्थ को विस्तृत करने की दशा में स्वंय ईमान भी कर्म के दायरे में आ जाता है।

किंतु ईश्वर के इन्कार का अर्थ , ईमान न रखना है और ईमान न रखना , शंका व अज्ञानता के कारण हो , चाहे ज्ञान व जानकारी से सचमुच दूर रहने की दशा में पैदा होने वाली अज्ञानता के कारण हो या फिर जानबूझ कर

---

[1] नम्ल– 14

[2] इसरा– 102

[3] क़सस– 38

[4] युनुस– 90

इन्कार किया जाए तो यह इन्कार कुफ्र कहा जाएगा किंतु कभी कभी शत्रुता के कारण इन्कार को ईमान के विपरीत व विरोधाभासी अर्थ के रूप में भी लिया जाता है। अर्थात उस दशा में कुफ्र का अर्थ ईमान न होना नहीं होगा बल्कि शत्रुता के कारण इन्कार का होना होगा ।

## ईमान व इन्कार का मापदंड

कुरआने मजीद की आयतों और हदीसों के प्रकाश में अनन्त कल्याण के लिए न्यूनमत ईमान इस प्रकार हैः एक ईश्वर , परलोक में प्रतिफल तथा ईश्वरीय दूतों द्वारा बताई गयी बातों की सच्चाई पर पूर्ण विश्वास । जिस के लिए यह आवश्यक है कि ईमान रखने वाले में ईश्वरीय आदेशों के पालन का इरादा मौजूद हो । इसी प्रकार ईमान की सर्वोच्च श्रेणी , ईश्वरीय दूतों से विशेष है।

इसी प्रकार न्यूनतम कुफ्र यह है :

ईश्वर के एक होने , ईश्वरीय दूतों या क़यामत के बारे में शंका या ईश्वरीय दूतों द्वारा बताई गयी बातों में संदेह । तथा कुफ्र की अधिकतम् श्रेणी , इन सब चीजों की सच्चाई का ज्ञान होने के बावजूद , शत्रुता व द्वेष के कारण उन का इन्कार करना तथा सत्य धर्म के विरूद्ध संघर्ष का इरादा रखना है ।

इस प्रकार से अनेकेश्वरवाद भी एक प्रकार का कुफ्र है । और मिथ्याचार , वास्तव में वही आंतरिक कुफ्र है जो धोखे और इस्लाम में विश्वास के दिखावे के साथ होता है और मुनाफ़िक़ अर्थात दिल में ईश्वर पर विश्वास न होते हुए भी मुसलमान होने का दिखावा करने वाला अन्य इन्कार करने वालों से अधिक बुरा व आलोचनीय होता है । जैसा कि कुरआन में कहा गया हैः

**निश्चित रूप से मुनाफ़िक़ नर्क के सब से अधिक निचले भाग में होंगे ।**[1]

यहॉ पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि जिस इस्लाम व कुफ़्र का इस्लाम की व्यवहारिक शिक्षाओं में वर्णन है और जिस के अंतर्गत पवित्रता व अपवित्रता तथा विवाह आदि के आदेश होते हैं वह धर्म के आधार भूत सिद्धान्तों में वर्णित ईमान व कुफ़्र से भिन्न अर्थ रखते हैं क्योंकि संभव है कि कोई इस्लामी शैली में ईमान लाने की घोषणा करे और कहे कि इस्लाम के आदेशों का पालन करेगा किंतु वास्तव में उस के दिल में इस्लाम व उस के आदेशों के लिए कोई स्थान न हो।

यहॉ पर एक अन्य विषय का वर्णन भी आवश्यक है और वह यह कि उदाहरण स्वरूप पागल व्यक्ति को तथा ऐसे स्थान पर रहने वाले व्यक्ति को जहॉ हर प्रकार की जानकारी प्राप्त करना असंभव हो , उस की विवशता के अनुसार माफ कर दिया जाएगा किंतु अगर कोई जानकारी के बावजूद लापरवाही करे और शंका की दशा में बाकी रहे या अकारण ही धर्म के आधार भूत सिद्धान्तों का इन्कार करे तो फिर उसे विवश नहीं समझा जाएगा और वह अनन्त दंड का पात्र होगा ।

## अनन्त सफलता व विफलता में ईमान का प्रभाव

इस बात के दृष्टिगत कि मनुष्य की वास्तविक परिपूर्णता , ईश्वर की निकटता द्वारा ही संभव है और उस के विपरीत , मनुष्य का पतन ईश्वर से दूरी के कारण होता है , ईश्वर तथा उस की शक्ति के सभी आयामों पर ईमान को , कि जिस के लिए क़यामत व ईश्वरीय दूतों पर विश्वास आवश्यक है , मनुष्य की वास्तविक परिपूर्णता का पौधा कहा जा सकता है जिस की शाखाएं ईश्वर को प्रिय कर्म और जिस का फल अनन्त सफलता है कि जो परलोक में प्राप्त होगा । तो अगर कोई अपने दिल में ईमान का बीज न बोए और इस विभूति पूर्ण

---

[1] नेसाअ – 145

पौधे की सिंचाई न करे और उस के स्थान पर ईश्वर के इन्कार व अवज्ञा का विषैला बीज बो दे तो वास्तव में उस ने ईश्वर द्वारा प्रदान की गयी योग्यताओं व क्षमताओं का दुरूपयोग किया और जिस पेड़ को लगाया है उस का फल नर्क ही होगा । इस प्रकार का व्यक्ति किसी भी स्थिति में आध्यात्मिक सफलता की ओर अग्रसर नहीं हो सकता और उस के अच्छे कर्मों का प्रभाव , इस संसार की सीमाओं से बाहर नहीं जा सकेगा । इस का कारण भी यह है कि प्रत्येक स्वेच्छिक कार्य , उस लक्ष्य की ओर आत्मा की गतिशीलता है जिस का इरादा उस के कर्ता ने किया हो और जो अनन्त परलोक और ईश्वर में विश्वास ही नहीं रखता तो वह किस प्रकार से वहाँ तक पहुँचने का लक्ष्य रख सकता है ? और स्वाभाविक रूप से ऐसे व्यक्ति को ईश्वर से अनन्त सुख की आशा भी नहीं रखनी चाहिए और अन्ततः ईश्वर का इन्कार करने वालों के अच्छे कर्मों के संदर्भ में जिस वस्तु को स्वीकार किया जा सकता है , वह यह है कि उस का प्रभाव, उन के दंड में छूट के रूप में होगा क्योंकि इस प्रकार के अच्छे काम स्वार्थ व आत्ममुग्धता व शत्रुता की मात्रा को कम करने में प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं।

## कुरआनी आयतें

कुरआन मजीद एक ओर मनुष्य की अनन्त सफलता में ईमान की मूल भूमिका का वर्णन करता है और दसियों आयतों में ईमान के साथ अच्छे कर्मों का उल्लेख करने के अतिरिक्त बहुत सी आयतों में ईमान का उल्लेख परलोक में अच्छे कर्मों के प्रभावी होने की शर्त के रूप में करता है जैसा कि कुरआन में आया है :

**और जो अच्छे काम करता है चाहे वह पुरुष हो या महिला , जब कि वह ईमान वाला भी हो तो वही लोग स्वर्ग में जाएंगे ।**[1]

---

[1] नेसाअ– 122 व अन्य ।

तथा दूसरी ओर , इन्कार करने वालों के लिए नर्क व अनन्त दंड का वर्णन करता है और उन के कर्मो को निरर्थक व बेकार बताता है , तथा एक स्थान पर कुरआन ने इन लोगों के कर्मो को उस राख की भॉति बताया है जिसे तेज हवा इधर उधर फैला देती है और उस का चिन्ह भी बाकी नहीं रहता :

**जिन लोगों ने अपने पालनहार का इन्कार किया उन के कर्म उस राख की भॉति है जिसे एक ऑधी वाले दिन में तेज़ हवा अपना लक्ष्य बनाए और उन के कर्मो मे से कुछ भी उन के पास न रहेगा और यह बहुत बड़ी पथभ्रष्टता है ।** [1]

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर पर कुरआन में आया है :

**और हम हर उस काम की ओर आए जो उन्हों ने किए थे फिर हम ने उसे हवा में उड़ने वाली धूल बना दिया ।** [2]

एक अन्य आयत में ईश्वर पर ईमान न रखने वालों के कर्मो को उस मृगतृष्णा की भॉति बताया गया है जिस से प्यासा व्यक्ति आशा लगा लेता है किंतु जब वहॉ पहुॅचता है तो उसे कुछ भी नहीं मिलता:

**और जिन लोगों ने इन्कार किया उन के कर्म सपाट रेगिस्तान में मृगतृष्णा की भॉति है जिसे प्यासा पानी समझता है यहॉ तक कि जब वह उस के पास पहुॅचता है तो उसे कुछ भी नहीं मिलता और ईश्वर को उस के निकट पाता है जो उस के कर्मो का उस से हिसाब लेता है और ईश्वर बहुत जल्दी हिसाब लेने वाला है ।** [3]

अगली आयत में आया है :

**या समुद्र की गहराई में मौजूद अंधकार की भॉति है जिस पर लहर छाई हुई हो और उस लहर के उपर एक लहर हो और उस के**

---

[1] इब्राहीम– 18

[2] फुरक़ान – 23

[3] नूर 39

**उपर बादल , अंधकार जो एक दूसरे पर हों , जब वह अपना हाथ निकाले तो वह उसे सुझाई न दे और जिस के लिए ईश्वर प्रकाश न बनाए उसे कहीं से प्रकाश नहीं मिल सकता ।**

इसी प्रकार बहुत सी आयतों में कहा जाता है कि सांसारिक मोह माया में ग्रस्त लोगों के अच्छे कर्मों का फल इसी संसार में उन्हें दे दिया जाएगा और परलोक में उन्हें उन कर्मों का कोई लाभ नहीं मिलेगा। उदाहरण स्वरूप यह आयतः **जो सांसारिक जीवन और उस की चकाचौंध का इच्छुक होता है हम उन के कर्मों को इसी संसार में उन्हें दे देते हैं और उन की किसी चीज़ को कम नहीं किया जाता यह वह लोग हैं जिन के लिए परलोक में आग के अलावा कुछ नहीं होता और जो कुछ संसार में किए होते हैं वह नष्ट हो जाता है और उन के कर्म व्यर्थ होते हैं ।**[1]

## प्रश्न

1. ईमान और कुफ़्र के बारे में दो पथभ्रष्ट गुटों के मतों का वर्णन करें ।

2. ईमान और कुफ़्र की वास्तविकता तथा ज्ञान व अज्ञान से उन के संबधं का वर्णन करें।

3. ईमान व कुफ़्र की आवश्यक मात्रा का वर्णन करें।

4. अनेकेश्वरवाद व मिथ्याचार तथा कुफ़्र के मध्य संबंध का वर्णन करें।

5. व्यवहारिक शिक्षाओं में ईमान व कुफ़्र तथा मूल विश्वास की परिभाषा में ईमान व कुफ़्र के मध्य क्या अंतर है ?

6. अनन्त सफलता व विफलता में ईमान व कुफ़्र के प्रभाव तथा उस का कारण बताएं।

7. इस प्रभाव के बारे में कुरआनी प्रमाण प्रस्तुत करें।

---

[1] हूद – 15–16

पचपनवॉं पाठ

# ईमान व कर्म का परस्पर संबधं

- भूमिका
- ईमान का कर्म से संबंध
- कर्म का ईमान से संबंध
- परिणाम

## भूमिका

हम यह जान चुके हैं कि अनन्त सफलता व विफलता का मुख्य कारक, ईमान अथवा कुफ़ होता है और स्थाई ईमान , अनन्त कल्याण व सफलता को निश्चित बनाता है भले ही कुछ पाप , सीमित दंड का कारण बनें । इस के साथ ही दूसरी ओर स्थाई इन्कार व कुफ़ , अनन्त विफलता का कारण होता है और उस के साथ किसी भी प्रकार का अच्छा काम ,परलोक में लाभ नहीं पहुॅचा सकता ।

इस के साथ ही हम ने संकेत किया कि ईमान व कुफ़ , कमज़ोर व मज़बूत हो सकता है और संभव है कि बड़े बड़े पापों की अधिकता , ईमान के नष्ट होने का कारण बन जाए । और इसी प्रकार यह भी संभव है कि अच्छे कर्म इन्कार की तेज़ी को कम करने तथा ईमान की भूमिका प्रशस्त होने का कारण बन जाएं।

और अब यहॉ ईमान व कर्म के मध्य संबधं के महत्व का पता चलता है। इसी लिए हम ने इस पाठ इसी को में चर्चा का विषय बनाया है।

## ईमान का कर्म से संबधं

पिछली बातों से यह स्पष्ट हो चुका है कि ईमान, ऐसी मानसिक दशा है जो ज्ञान व झुकाव का परिणाम होती है और उस के लिए आवश्यक है कि ईमान रखने वाला व्यक्ति , जिस वस्तु पर ईमान रखता है उस की शिक्षाओं के पालन का सामूहिक रूप से इरादा रखता हो।

इस आधार पर , जिसे किसी वास्तविकता का ज्ञान हो किंतु यह सोचे बैठा हो कि किसी भी समय किसी भी दशा में उस के आवश्यक आदेशों का पालन नहीं करेगा तो वास्तव में उसे उस वस्तु पर ईमान ही नहीं होता । यहाँ तक कि अगर उसे यह शंका भी हो कि ईमान के लिए आवश्यक आदेशों का पालन करे या न करे तो भी उस का ईमान स्वीकारीय नहीं होगा जैसा कि कुरआन में कहा गया है:

;कुछ आदिवासीद्ध **अरबों ने कहा हम ईमान ले आए कह दो तुम ईमान नहीं लाए किंतु कहो कि हम ने इस्लाम स्वीकार किया और ईमान अभी तुम्हारे दिलों में प्रविष्ट नहीं हुआ है।** [1]

किंतु वास्तविक ईमान की भी श्रेणियाँ होती हैं और ऐसा नहीं है कि ईमान की सभी श्रेणियों के लिए समस्त संबंधित आदेशों व कर्तव्यों का पालन आवश्यक होता है और यह संभव है कि इच्छाएं और भावनांए , कमज़ोर ईमान रखने वाले व्यक्ति को अवज्ञा की ओर ले जाएं किंतु न इस प्रकार से कि वह सदैव के लिए अवज्ञा का मन बना ले या ईमान के लिए आवश्यक सभी कर्तव्यों की हमेशा अवज्ञा करने का इरादा कर ले। यद्यपि ईमान जितना अधिक शक्तिशाली व पूर्ण होगा , उतना की अच्छे कर्म करने में प्रभावी होगा ।

निष्कर्ष यह निकला कि ईमान के लिए मूल रूप से आवश्यक है कि उस की अनिवार्यताओं का पालन किया जाए और यह अनिवार्यता , ईमान के स्तर व श्रेणी पर निर्भर करती है और अन्ततः यह मनुष्य का इरादा ही है जो किसी काम को करने अथवा न करने का निर्णय लेता है।

## कर्म का ईमान से संबधं

स्वेच्छा से किया जाने वाला काम या तो ईमान से समानता रखता होगा या असमानता । पहली दशा में कर्म ईमान की मज़बूती का कारण बनता

---

[1] हुजोरात – 14

है जब कि दूसरी दशा में ईमान की कमज़ोरी का कारण । इस आधार पर ईमान रखने वाले व्यक्ति के अच्छे कर्म , हॉलाकि उस के ईमान का परिणाम होते हैं किंतु अपनी जगह पर ईमान के स्थायित्व व बल को बढ़ाते भी हैं तथा अन्य अच्छे कामों की भूमिका भी प्रशस्त करते हैं और ईमान की परिपूर्णता में अच्छे कर्मों के प्रभाव को कुरआन की इस आयत से समझा जा सकता है:

**अच्छी बात ;और ईमानद्ध ईश्वर की ओर जाती है और अच्छा काम उसे और उँचा उठाता है।** [1]

और इसी प्रकार बहुत सी आयतों में ईमान रखने वालों के विश्वास व प्रकाश में वृद्धि की बात कही गयी है ।[2]

दूसरी ओर ,ऐसी स्थिति में कि जब ईमान से विपरीतता रखने वाली भावनाएं मौजूद हों और ईमान विरोधी कर्मों का कारण बन जाएं और उस व्यक्ति की ईमान की शक्ति इतनी न हो जो उसे गलत कामों से रोक सके, तो उस के गलत कामों का प्रभाव ईमान पर पड़ेगा और उस का ईमान और अधिक कमज़ोर हो जाएगा तथा पापों की पुनरावृत्ति की भूमिका भी प्रशस्त होगी और अगर यह प्रक्रिया यथावत जारी रहे , तो फिर परिणाम स्वरूप वह व्यक्ति बड़े बड़े पाप बार बार करेगा और अन्ततः उस का ईमान खत्म होकर कुफ्र या मिथ्याचार में बदल जाएगा ।

कुरआन मजीद ऐसे लोगों के बारे में जिन का ईमान मिथ्याचार में बदल गया , कहता है:

**ईश्वर से किए गये वचनों को तोड़ने और झूठ बोलने के बाद उन के दिल में दिखावा व मिथ्याचार पैदा हो गया उस दिन तक के लिए कि जब वह उस से भेंट करेंगे ।**[3]

---

[1] फातिर– 10

[2] आले इमरान – 173 , अन्फाल– 2 , तौबा– 124, मरयम – 76 व अन्य ।

[3] तौबा– 77

इसी प्रकार एक अन्य आयत में कहा गया है:

**और फिर उन लोगों का परिणाम कि जो पाप करते थे यह हुआ कि उन्हों ने ईश्वर के चिन्हों का इन्कार किया और उस का मज़ाक उड़ाया ।**[1]

इसी प्रकार बहुत सी आयतों में कुफ्र व दुर्भाग्य में वृद्धि की भी बात की गयी है।

## परिणाम

ईमान और कर्म के परस्पर संबधं तथा मनुष्य के कल्याण में उस के प्रभाव के दृष्टिगत आध्यात्मिक रूप से सफल जीवन को उस पेड़ की [2]भॉति बताया जा सकता है कि जिस की जड़ें ईश्वर , उस के फरिश्तों , उस के दूतों , क़यामत तथा प्रतिफल में विश्वास हैं और जिस का तना , ईमान के आवश्यक तत्वों व संस्कारों के पालन का इरादा है और उस पेड़ के पत्ते व शाखाएं, ईमान के परिणाम में किए जाने वाले अच्छे कर्म हैं तथा उस का फल , परलोक की अनन्त सफलता है। विदित है कि अगर किसी पेड़ में जड़ ही न होगी तो न तो उस में डाल निकलेगी और न ही फल ।

किंतु ऐसा नहीं है कि अगर जड़ हो तो निश्चित रूप से अच्छे फल व शाखाएं भी हों बल्कि कभी कभी , मौसम व वातावरण अनुकूल न होने के कारण सही तौर पर शाखाएं व फल नही निकल पाते और न केवल यह कि इन कारकों के चलते अच्छे फल व शाखाएं नहीं होंगी बल्कि कभी कभी तो पेड़ भी सूख जाता है।

इसी प्रकार संभव है कि पेड़ के तने व डालियों बल्कि जड़ों से कुछ ऐसे पौधों को जोड़ दिया जाए जिस से उस पेड़ के फल में भी परिवर्तन हो जाए । यह वही ईमान का कुफ्र में बदलना है।

---

[1] रोम– 10

[2] इब्राहीद– 14–27

निष्कर्ष यह निकला कि वर्णित विषयों पर ईमान व विश्वास , मनुष्य की सफलता का मुख्य कारक होता है किंतु इस कारक का पूर्ण प्रभाव , उसी समय संभव है जब अच्छे कर्मों द्वारा उस में खाद व आवश्यक तत्व डाले जाएं और बुरे कर्मों से बच कर उसे रोगों से बचाया जाए

और कर्तव्यों का पालन न करने तथा पापों से ईमान की जड़ कमज़ोर हो जाती है और कभी कभी तो यह ईमान के पेड़ को सुखा भी देते हैं । इसी प्रकार ईमान के साथ विभिन्न प्रकार के अंधविश्वास व धारणाएं , उस में बदलाव ला सकती हैं ।

## प्रश्न :

1. अच्छे कर्मों में ईमान के प्रभावों का वर्णन करें ।

2. ईमान की शक्ति व कमज़ोरी में भले बुरे कर्मों के प्रभाव को स्पष्ट करें।

3. ईमान व कर्म के परस्पर संबधं तथा परलोक में मनुष्य की सफलता से उस के संबधं को स्पष्ट करें।

छप्पनवाँ पाठ

# कुछ महत्वपूर्ण बातें

- भूमिका
- मनुष्य की वास्तविक परिपूर्णता
- बौद्धिक व्याख्या
- भावना व इरादे की भूमिका

## भूमिका

बहुत से ऐसे लोग जिन्हें इस्लामी सभ्यता का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता और मनुष्य के कामों को निम्नस्तरीय व विदित रूप से दिखाई देने वाले मापदंडों पर तौलते हैं और कर्ता की नीयत,भावना व इरादे के महत्व पर ध्यान नहीं देते और किसी भी काम के महत्व को दूसरों के सांसारिक जीवन में उस के प्रभाव पर आंकते हैं, वे बहुत से इस्लामी विषयों के विश्लेषण व समीक्षा में गलत राह पर लग जाते हैं या फिर उस के वर्णन में विफल हो जाते हैं तथा ईमान की भूमिका व अच्छे कर्मों से उस के संबधं , कुफ्र व अनेकेश्वर वाद की विनाशकारी भूमिका तथा कुछ छोटे व अल्पकालिक कार्यों की बहुत से बड़े व दीर्घकालिक कार्यों पर श्रेष्ठता के वर्णन में पथभ्रष्टता का शिकार हो जाते हैं और उदाहरण स्वरूप वे यह समझने लगते हैं कि बड़े बड़े अविष्कारकों , जिन्हों ने मानव जीवन में सुविधा लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है या स्वतंत्रता प्रेमियों को , जिन्हों ने अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया है , परलोक में भी उच्च्य स्थान वाला होना चाहिए भले ही वे ईश्वर में विश्वास तथा परलोक व कयामत आदि जैसे विषयों को स्वीकार न करते हों। और कभी कभी तो ऐसा भी होता है कि कल्याण के लिए आवश्यक ईमान को , मानवीय मूल्यों में विश्वास तथा इसी संसार में मज़दूरों व परिश्रमी लोगों की अंतिम सफलता बताते हैं और यहॉ तक कि ईश्वर के अर्थ को भी नैतिक मान्यताओं के समान एक अर्थ समझते हैं!!

हॉलाकि पिछले पाठों में की जाने वाली चर्चाओं द्वारा इस प्रकार की विचार धाराओं की कमज़ोरियों को समझा जा सकता है किंतु वर्तमान युग में इस प्रकार की विचार धारा के आम होने के कारण आगामी पीढ़ियों को जो खतरा है उस के दृष्टिगत हम इस संदर्भ में अधिक चर्चा कर रहे हैं ।

यद्यपि यह भी स्पष्ट है कि इस प्रकार के विषयों के बारे में विस्तार पूर्वक चर्चा के लिए अधिक अवसर की आवश्यकता है । इसी लिए हम ने यहॉ पर किताब की शैली के दृष्टिगत मूल रूप से आवश्यक कुछ बातों का उल्लेख किया है।

## मनुष्य की वास्तविक परिपूर्णता

अगर हम सेब के पेड़ की तुलना किसी ऐसे पेड़ से करें जिस में फल न निकलता हो तो हम सेब के पेड़ को उस बिना फल के पेड़ से अधिक मूल्यवान व महत्वपूर्ण समझेंगे । और यह निर्णय केवल इस लिए नहीं होगा कि सेब का पेड़ मनुष्य को अधिक लाभ पहुॅचाता है बल्कि यह निर्णय इस लिए लेंगे क्योंकि सेब का पेड़ , बिना फल वाले पेड़ की तुलना में अधिक परिपूर्ण है और उस के अस्तित्व के चिन्ह बिना फल वाले पेड़ से अधिक हैं किंतु अगर इसी सेब के पेड़ में रोग लग जाए तो उस का महत्व समाप्त हो जाता है बल्कि संभव है कि वह दूसरों के लिए हानिकारक भी हो जाए।

मनुष्य भी अन्य प्राणियों की तुलना में यही महत्व रखता है और अगर वह अपनी योग्यता के अनुसार परिपूर्णता तक पहुॅच जाए तथा उस की प्रवृत्ति के अनुसार उस के चिन्ह सामने आएं तो वह अन्य प्राणियों से अधिक महत्वपूर्ण होगा किंतु यदि उस की आत्मा रोगी हो जाए तो संभव है कि कुछ लोग पशुओं से भी बुरे व हानिकारक हो जाएं जैसा कि कुरआन में बहुत से लोगों को समस्त प्राणियों से अधिक बुरा कहा गया है तथा पथभ्रष्ट लोगों को पशुओं से अधिक भटका हुआ बताया गया है।

दूसरी ओर , अगर कुछ लोगों ने सेब के पेड़ को उस में फूल लगते समय ही देखा हो तो वह समझेंगे कि सेब के पेड़ की परिपूर्णता यही है और इस से अधिक उस में कोई गुण नहीं है । इसी प्रकार जो लोग मनुष्य के साधारण गुणों से ही अवगत होते हैं वह किसी भी दशा में मनुष्य की वास्तविक परिपूर्णता का अनुमान नहीं लगा सकते और मनुष्य के वास्तविक महत्व की पहचान वहीं लोग प्राप्त कर सकते हैं जो उस की वास्तविक परिपूर्णता से अवगत हों।

किंतु मनुष्य की वास्तविक परिपूर्णता , भौतिक परिपूर्णताओं के समान नहीं होती क्योंकि जैसा कि पहले बताया जा चुका है मनुष्य की मनुष्यता , उस की आत्मा पर निर्भर होती है और मनुष्य की परिपूर्णता भी वस्तुतः , उसी आत्मा की परिपूर्णता है कि जो मनुष्य के स्वेच्छिक कामों से प्राप्त होती है चाहे वह काम आंतरिक हों या बाहरी या शरीर के माध्यम से किए गये हों और इस प्रकार की परिपूर्णता को ज्ञानेद्रियों की सहायता से समझा तथा भौतिक मापदंडों से तौला नहीं जा सकता और स्वाभाविक रूप से उस तक पहुँचने के मार्ग को भी प्रयोग शाला में प्रयोगों द्वारा पहचानना संभव नहीं होगा। तो फिर जो स्वयतः इस प्रकार की परिपूर्णता तक न पहुँचा हो और उसे साक्षात ज्ञान व मन की आवाज़ के सहारे न पहचाने तो उसे बौद्धिक तर्कों या ईश्वरीय संदेशों की सहायता से उस का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

किंतु ईश्वरीय संदेशों, आयतों और पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के परिजनों के कथनों के आधार पर तो इस बात में कोई शंका नहीं है कि मनुष्य की परिपूर्णता , उस के अस्तित्व का वह स्थान है जिसे ईश्वर से निकटता की संज्ञा दी जाती है और उस का परिणाम व चिन्ह , अनन्त पुरस्कार और ईश्वर की प्रसन्नता है जो परलोक में प्राप्त होगी और उस का सामूहिक मार्ग , ईश्वर में विश्वास तथा उस के आदेशों का पालन है ।

किंतु बौद्धिक दृष्टि से परिपूर्णता को सिद्ध करने के लिए जटिल दार्शनिक तर्कों की आवश्यकता होती है जिस का यहॉ इस किताब में वर्णन

संभव नहीं है इसी लिए हम ने साधारण शैली में उन के वर्णन का यहाँ प्रयास किया है।

## बौद्धिक व्याख्या

मनुष्य स्वाभाविक रूप से अनन्त परिपूर्णता का इच्छुक है कि जिस का प्रदर्शन ज्ञान व शक्ति में होता है और इस प्रकार की परिपूर्णता तक पहुँचने के बाद उसे अनन्त सुख व स्थाई सफलता प्राप्त होती है । और इस प्रकार की परिपूर्णता मनुष्य के लिए तब संभव होगी कि जब वह ज्ञान व शक्ति के असीम स्रोत अर्थात ईश्वर से जुड़ जाए और इसी जुड़ने व संबधं को ईश्वर से निकटता का नाम दिया गया है।

तो इस प्रकार से मनुष्य की वास्तविक परिपूर्णता कि जो उस की रचना का उद्देश्य है , ईश्वर से निकटता में निहित है और जिस के पास इस परिपूर्णता की निम्नतम् श्रेणी अर्थात ईमान का सब से कमज़ोर चरण भी न हो वह उस सेब के पेड़ की भाँति होगा जिस में अभी फल न लगा हो और कोंपले भी न निकली हों और अगर ऐसा पेड़ रोगों के कारण फल देने की अपनी क्षमता खो दे तो वह उन पेड़ों से भी अधिक महत्वहीन होगा जिन में फल देने की क्षमता ही नहीं होती ।

इस आधार पर, मनुष्य की परिपूर्णता व सफलता में ईमान की भूमिका का महत्व इस आधार पर है कि मनुष्य की आत्मा की मुख्य विशेषता , ईश्वर से स्वेच्छा के साथ चेतनापूर्ण संबधं है और उस के बिना वह अपने लिए योग्य परिपूर्णता तथा उस के परिणामों से वंचित रहेगा और दूसरे शब्दों में उस की मानवता व्यवहारिक नहीं होगी । और अगर वह अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते हुए इस क्षमता को नष्ट करदे तो इस प्रकार से वह स्वंय पर सब से बड़ा अत्याचार करेगा जिस का दंड परलोक में अनन्त होगा । कुरआने मजीद ऐसे लोगों के बारे में कहता है:

**निश्चित रूप से धरती पर रेंगने वाले सब से बुरे वह लोग हैं जिन्हों ने इन्कार किया, तो वह ईमान नहीं लाएंगे।** [1]

निष्कर्ष यह निकला कि ईमान व कुफ्र सफलता व परिपूर्णता अथवा पतन व दुर्भाग्य की ओर मनुष्य के अग्रसर होने की दिशा को निर्धारित करता है और स्वाभाविक रूप से जो गतिविधि बाद में होगी वही निर्णायक भूमिका निभाएगी ।

## इरादे व नीयत की भूमिका

इस सिद्धान्त के दृष्टिगत यह स्पष्ट हुआ कि मनुष्य के स्वेच्छिक कामों का वास्तविक महत्व , परिपूर्णता अर्थात ईश्वर की निकटता तक पहुँचने में उन के प्रभावों पर निर्भर होता है । और जितने भी उस के काम किसी न किसी प्रकार से दूसरों की परिपूर्णता में प्रभावी सिद्ध होते हों वह अच्छे व सराहनीय कहें जाएंगे कितुं इन कामों का कर्ता की परलोक में सफलता पर प्रभाव , उस प्रभाव पर निर्भर है जो इन कामों के परिणाम में उस की आत्मा पर पड़ेंगे ।

दूसरी ओर , बाहरी कामों का , कर्ता की आत्मा से संबधं , इरादे द्वारा संभव होता है कि जो उस का अपरोक्ष काम होता है और किसी काम का इरादा, लक्ष्य से प्रेम व निष्ठा व परिणाम से प्रभावित होता है और यही भावना , उस की आत्मा में लक्ष्य की ओर गतिशीलता को जन्म देती है और काम के इरादे के रूप में प्रकट होती है। तो इरादे वाले हर काम का महत्व , कर्ता की नीयत व भावना के अनुसार होता है और काम की अच्छाई , कर्ता की अच्छाई के बिना , कर्ता की आत्मा की परिपूर्णता में प्रभावित नहीं हो सकती । और इसी लिए वह काम जो भौतिक व सांसारिक भावनाओं के अंतर्गत किए जाते हैं , परलोक में उन का कोई प्रभाव नहीं होता और बड़े बड़े सामाजिक काम भी अगर दिखावे के लिए

---

[1] अन्फाल– 55

हों तो उन का कर्ता को कोई लाभ नहीं होता[1] बल्कि संभव है कि इस से उस के पतन की प्रक्रिया तीव्र ही हो जाए।[2]

निष्कर्ष यह निकला कि पहली बात तो यह कि अच्छा कर्म, दूसरों की सेवा करने तक ही सीमित नहीं है। और दूसरी बात यह कि दूसरों की सेवा भी अन्य व्यक्तिगत कर्मों की भाँति मनुष्य के अनन्त कल्याण में उसी समय प्रभावी सिद्ध होगी जब उस का प्रेरणा स्रोत ईश्वरीय हो।

## प्रश्न

1. प्रत्येक अस्तित्व का वास्तविक महत्व क्या है?

2. मनुष्य के अंतिम कल्याण व परिपूर्णता को किस प्रकार पहचाना जा सकता है?

3. सिद्ध करें कि मनुष्य की अंतिम परिपूर्णता, केवल ईश्वर से निकटता के माध्यम से ही प्राप्त हो सकती है।

4. सिद्ध करें कि अच्छे कर्म, परलोक में मनुष्य को उसी समय लाभ पहुँचा सकते हैं जब उन का प्रेरणा स्रोत ईश्वरीय हो।

---

[1] बक़रह– 246, नेसाअ– 38, 142 व अन्य

[2] नेसाअ – 124, नेह्ल– 97

सत्तावनवाँ पाठ

# विनाश व क्षति पूर्ति

- भूमिका
- ईमान व कुफ्र का संबधं
- अच्छे व बुरे कर्मो के मध्य संबधं

## भूमिका

ईमान और अच्छे कर्मों तथा कुफ्र और बुरे कर्मों और परलोक के मध्य संबधं के बारे में एक महत्वपूर्ण विषय यह है कि क्या ईमान अथवा कुफ्र के हर क्षण का संबंध उस के परलोक के परिणाम से , और इसी प्रकार प्रत्येक अच्छे व बुरे काम का , उस के प्रतिफल से संबधं निश्चित व स्थाई है तथा उस में किसी प्रकार से बदलाव नहीं आ सकता या उस में परिवर्तन हो सकता है उदाहरण स्वरूप किसी पाप के परिणाम को किसी अच्छे काम से समाप्त किया जा सकता है या फिर कोई अच्छा काम किसी पाप द्वारा नष्ट हो सकता है ? और क्या जिन लोगों ने अपने जीवन का कुछ भाग कुफ्र व अवज्ञा में और कुछ भाग ईमान व कर्तव्य पालन की दशा में व्यतीत किया है वह लोग कुछ दिनों तक दंडित होंगे और फिर उन्हें उन के अच्छे कर्मों के बदले सुख व इनाम प्रदान किया जाएगा ? या फिर यह कि उन के अच्छे बुरे कर्मों को एक साथ जमा करके उस के परिणाम में सामने आने वाली स्थिति के अनुसार उन के बारे में फैसला किया जाएगा या फिर कोई और दशा है ?

यह विषय वास्तव में अच्छे कर्मों के व्यर्थ होने और क्षतिपूर्ति के विषय के समान है कि जिस पर बहुत पहले से चर्चा की जाती रही है । हम इस पाठ में इमामिया गुट अर्थात पैगम्बरे इस्लाम के परिजनों की शिक्षाओं पर चलने वालों के मत से आप को अवगत कराएंगे ।

## ईमान और कुफ्र के मध्य संबधं

पिछले पाठों में हमें यह ज्ञात हुआ कि मूल विश्वासों की पुष्टि के बिना कोई भी अच्छा काम , परलोक में अनन्त कल्याण का कारण नहीं बन सकता । दूसरे शब्दों में : कुफ्र अर्थात ईश्वर का इन्कार अच्छे कामों को प्रभावहीन बना देता है और इसी प्रकार मार्गदर्शन व ईमान का प्रकाश , अतीत के अंधकारों को हटा देता है । इसी प्रकार इस के विपरीत , अंतिम काल में कुफ्र , पहले के ईमान के प्रभाव व परिणामों को नष्ट कर देता है और मनुष्य के भविष्य को अंधकार मय बना देता है । ईमान के बाद कुफ्र व ईश्वर का इन्कार , उस आग की भॉति होता है जो पूरे खलिहान को जला देती है। उदाहरण स्वरूप यह कहा जा सकता है कि ईमान उस प्रकाशमय दीप की भॉति होता है जो मन व आत्मा में प्रकाश भरता है और वहॉ से अंधकारों को छॉट देता है तथा कुफ्र उसी दीप के बुझ जाने की भॉति होता है जिस के बाद प्रकाश समाप्त हो जाते हैं और चारो ओर अंधकार फैल जाता है । और जब तक मनुष्य की आत्मा इस नश्वर व भौतिक संसार से संबधं रखेगी सदैव ही उस में प्रकाश व अंधकार की संभावना बनी रहेगी यहॉ तक कि इस संसार से ईमान या फिर कुफ्र की अवस्था में वह चली न जाए और फिर उस के बाद वह इस संसार में लौटने का चाहे जितना प्रयास करेगी , पुनः अंधकार छॉटने के लिए इस संसार में आना उस के लिए संभव नहीं होगा[1] ।

ईमान और कुफ्र के मध्य यह संबधं कुरआन की दृष्टि में किसी भी प्रकार के संदेह योग्य नहीं है और कुरआन की बहुत सी आयतें इस विषय की पुष्टि करती हैं । उदाहरण स्वरूप सूरए तग़ाबुन की आयत 9 में आया है :

---

[1] पाठ 49 देखें ।

**और जो भी ईश्वर पर ईमान रखता है और अच्छे काम करता है तो ईश्वर उस के बुरे कर्मो का प्रभाव समाप्त कर देता है।**

इसी प्रकार सूरए बक़रह की आयत 217 में कहा जाता है:

**और तुम में से जो अपने धर्म से पलट जाए और कुफ्र की अवस्था में मर जाए तो वह उन लोगों में से है जिन के कर्म संसार और परलोक में नष्ट हो गये और वह लोग नर्क वासी हैं जहाँ सदैव रहने वाले हैं ।**

## अच्छे व बुरे कर्मो में संबधं

ईमान और कुफ्र के मध्य संबधं की भाँति ही अच्छे व बुरे कर्मो के मध्य भी उसी प्रकार के संबंध की कल्पना की जा सकती है किंतु न इस आशय में कि मनुष्य के कर्म पत्र में अच्छे काम सदैव लिखे हुए रहें और बुरे कर्म सदैव के लिए मिटा दिए जाएं जैसा कि कुछ लोगों ने ऐसा सोचा है या यह कि कर्म पत्र में सदैव अच्छे बुरे कर्मो को जोड़ घटा कर मात्रा के अनुपात जो परिणाम निकले केवल उसी को लिखा जाए बल्कि कर्मो के संदर्भ में एक प्रकार की विभिन्नता को स्वीकार करना पड़ेगा अर्थात कुछ ऐसे अच्छे कर्म हैं कि अगर उन का सही रूप से पालन किया जाए तो वह पहले के पापों को मिटा देते हैं जैसा कि प्रायश्चित है । अगर सही रूप से प्रायश्चित किया जाए तो मनुष्य के पिछले सारे पाप क्षमा कर दिए जाते हैं ।

इस का उदाहरण उस प्रकाश मय किरण की भाँति है जो उसी काले बिन्दु पर पड़े और उसे प्रकाश मय कर दे किंतु यह स्पष्ट है कि हर अच्छा काम सभी पापों के प्रभावों को समाप्त करने की क्षमता नहीं रखता इस लिए संभव है कि ईश्वर पर ईमान रखने वाला व्यक्ति भी कुछ दिनों तक ईश्वरीय प्रकोप व दंड का शिकार रहे और अन्त में स्वर्ग में भेजा जाए । इस प्रकार से कि मनुष्य की आत्मा के विभिन्न प्रकार के पहलू हैं और मनुष्य का हर अच्छा व बुरा कर्म ,

उस के एक भाग से संबंधित होता है। उदाहरण स्वरूप, आत्मा के एक विशेष पहलू से संबधं रखने वाला अच्छा कर्म, आत्मा के दूसरे किसी पहलू से संबधं रखने वाले पापों को मिटाने में सफल नही हो सकता। अलबत्ता यह अलग बात है कि किसी मनुष्य का कोई अच्छा काम इतना बड़ा हो कि उस से आत्मा के सारे आयाम और पहलू, प्रकाश मय हो जाएं। या यह कि कोई पाप इतना भयानक हो कि जिस से पूरे मन व आत्मा पर अंधकार छा जाए। जैसा कि हदीसों में आया है कि स्वीकारीय नमाज़, पापों को धो देती है। कुरआन मजीद में आया है:

और दिन के दोनों छोर पर नमाज़ पढ़ो और रातों को क्योंकि अच्छाईयां, बुराईयों को समाप्त कर देती हैं।

और इसी प्रकार कुछ पाप, उदाहरण स्वरूप माता– पिता द्वारा तिरस्कार या शराब पीने से कुछ दिनों तक दुआएं स्वीकार नहीं की जाती या फिर सहायता के बाद उसे जताना, सहायता के पुण्य को समाप्त कर देता है जैसा कि कुरआन में आया है:

**अपना दान जता कर व दुख पहुँचाकर उसे नष्ट न करो।** [1]

किंतु अच्छे व बुरे कर्मो के एक दूसरे पर प्रभाव के प्रकार तथा मात्रा को स्पष्ट करने के लिए ईश्वरीय संदेशों और इमामों के कथनों से लाभ उठाया जा सकता है क्योंकि सारे कर्मो के लिए मूल सिद्धान्त व कानून मौजूद नहीं है।

इस पाठ के अंत में, हम इस ओर संकेत करना उचित समझ रहे हैं कि अच्छे व बुरे काम, इसी संसार में कभी खुशियों व कठिनाईयों का कारण बनते हैं जैसा कि दूसरों के साथ अच्छाई विशेष कर माता पिता और परिजनों के साथ अच्छाई लंबी आयु और विपदाओं को टाल देती है या वरिष्ठ लोगों की अवमानना विशेष कर शिक्षक के अपमान से ईश्वर की कृपा दृष्टि अवमानना करने वाले पर से हट जाती है किंतु इस प्रकार के परिणामों का अर्थ, अपने

---

[1] सूरए बक़रह– आयत 264

कर्मों का प्रतिफल पूर्ण रूप से प्राप्त करना नहीं है बल्कि अच्छे व बुरे कर्मों के प्रतिफल की मुख्य जगह, परलोक है ।

## प्रश्न

1. नष्ट होने और क्षतिपूर्ति का अर्थ बताओ

2. ईमान और कुफ्र के मध्य संबंध को कितनी दशाओं में सोचा जा सकता है ?

3. अच्छे व बुरे कर्मों के मध्य किस प्रकार के संबंध हैं और उन में कौन की दशा सही है?

4. क्या अच्छे व बुरे कामों का प्रभाव , परलोक में प्रतिफल का स्थान ले लेगा या नहीं ?

अट्ठावनवाँ पाठ

# ईश्वर पर ईमान रखने वालों की विशिष्टताएं

- भूमिका
- पुण्य में वृद्धि
- छोटे पापों की माफी
- दूसरों के कर्मों से लाभ उठाना ।

# भूमिका

ईश्वर के बारे में चर्चा के अवसर पर हम ने यह जाना कि ईश्वर का इरादा मूल रूप से भलाईयों व परिपूर्णता से संबंधित होता है और बुराईयां व कमियॉ उस के परिणाम में ईश्वर के इरादे से संबंधित होती हैं । स्वाभिक रूप से मनुष्य के संदर्भ में भी ईश्वर का इरादा उस की परिपूर्णता तथा अनन्त सफलता से संबंधित होता है तथा पापियों का दुर्भाग्य और प्रकोप उन के द्वारा अपने अधिकारों के गलत प्रयोग का परिणाम होता है जिस के परिणाम में ईश्वर के इरादे में उन पर प्रकोप व उन्हें दंड देना भी शामिल होता है । और अगर प्रकोप व परलोक में दंड स्वंय मनुष्य के अपने कर्मों का प्रतिफल न होता तो ईश्वर की असीम कृपा के लिए यह आवश्यक था कि किसी भी मनुष्य को दंडित न किया जाए।

किंतु ईश्वर की इसी कृपा के लिए आवश्यक था कि ईश्वर मनुष्य को इच्छा व इरादे से स्वतंत्रता के साथ काम करने की शक्ति के साथ पैदा करे और भले बुरे मार्ग के चयन का अनिवार्य परिणाम , परलोक में विफलता व सफलता होता है इस अंतर के साथ कि अच्छे प्रतिफल की प्राप्ति , ईश्वर के मुख्य इरादे का भाग होती है जब कि प्रकोप व दंड उस परिणाम के रूप में ईश्वरीय इरादे में शामिल होता है और इसी अंतर के दृष्टिगत यह आवश्यक है कि हर क्षेत्र में भलाई के आयाम को प्राथमिकता दी जाए अर्थात मनुष्य को कुछ इस प्रकार से पैदा किया गया है कि अच्छे कर्म उस के व्यक्तित्व की रचना में अधिक प्रभाव शाली भूमिका निभाते हैं और उस पर ऐसे कर्तव्यों का पालन

अनिवार्य किया गया है जिस का पालन उस के लिए सरल होता है और अनन्त सफलता व परलोक में कल्याण के लिए उस पर ऐसे कर्तव्य नहीं लादे गये हैं जिन का पालन उस के अत्याधिक कठिन या असंभव हो और प्रतिफल के अवसर पर भी इनाम का पल्ला भारी रखा गया है क्योंकि ईश्वर की कृपा उस से प्रकोप से अधिक व्यापक है।

और कृपा का यह रूप कुछ विषयों में दिखाई देता है जिन में से कुछ का हम वर्णन कर रहे हैं ।

## पुण्य में वृद्धि

सच्चे मार्ग पर चलने वालों के लिए ईश्वर ने पहला जो इनाम रखा है वह यह है कि ईश्वर मनुष्य को उस के कर्म की मात्रा में ही इनाम व पुण्य नहीं देता बल्कि उसे बढ़ा कर देता है । जैसा कि कुरआन मजीद के सूरए मरयम की आयत 89 में साफ तौर पर कहा गया है :

**जो अच्छा काम करता है उस के लिए उस से अच्छा प्रतिफल होगा ।**

इसी प्रकार सूरए शूरा की आयत 23 में आया है :

**और जो अच्छा काम करता है हम उस की अच्छाई बढ़ा देते हैं।**

इसी प्रकार सूरए युनुस की आयत 26 में आया है ।

**जिन लोगों ने अच्छे कर्म किए हैं उन के लिए सब से अच्छी अच्छाई है वृद्धि के साथ ।**

इसी प्रकार सूरए नेसा की आयत 40 में कहा जाता है :

**निश्चित रूप से ईश्वर राई के दाने के बराबर भी अत्याचार नहीं करता और अगर कोई अच्छाई होती है तो उसे दो गुना कर देता है और अपने पास से भारी प्रतिफल देता है ।**

इसी प्रकार सूरए अनआम की आयत 160 में आया है:

**जो एक अच्छाई लेकर आता है उसे उस का दस गुना अधिक मिलता है और जो बुराई करता है उसे उसी के समान मिलता है और उन पर अन्याय नहीं होता ।**

## छोटे पापों की क्षमा

दूसरा इनाम यह है कि अगर ईश्वर पर ईमान रखने वाले बड़े गुनाहों व पापों से बचते हैं तो कृपालु ईश्वर उन के छोटे पापों को माफ कर देता है और उन्हें मिटा देता है जैसा कि सूरए नेसा की आयत 31 में आया है :

**और अगर तुम बड़ी वर्जनाओं से बचो तो हम तुम्हारी बुराईयों को मिटा देंगे और तुम्हें अच्छे स्थान में प्रवेश दिलाएगें।**

स्पष्ट है कि इन लोगों के छोटे पापों की क्षमा के लिए प्रायश्चित आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रायश्चित द्वारा तो बड़े पाप भी माफ किए जा सकते हैं।

## दूसरों के कर्मो का लाभ

ईश्वर पर ईमान रखने वालों के लिए एक विशिष्टता यह भी होगी कि ईश्वर फरिश्तों और अपने विशेष दासों द्वारा उन के लिए क्षमा याचना को स्वीकार करेगा [1] और इसी प्रकार इन लोगों के लिए अन्य ईमान रखने वालों की दुआओं को भी स्वीकार करेगा बल्कि दूसरों के द्वारा , ईश्वर पर विश्वास रखने वालों के लिए भेजे गये पुण्यों को भी उन तक पहुँचाएगा ।

इस बात का वर्णन बहुत सी आयतों और हदीसों में हुआ है किंतु इस बात के दृष्टिगत कि यह विषय सीधे रूप से शिफाअत अर्थात सिफारिश से

---

[1] ग़ाफ़िर– 7 , आले इमरान – 159 , नेसाअ 64 व अन्य ।

संबधं रखता है तथा उस के बारे में अपेक्षाकृत विस्तृत चर्चा की आवश्यकता है , इस लिए यहॉ पर हम इसे ही पर्याप्त समझते हैं ।

## प्रश्न

1. ईश्वर की कृपा के अधिक व्यापक होने का रहस्य क्या है ?
2. रचना व आदेशों में इस कृपा के प्रदर्शनों का वर्णन करें।
3. मनुष्य को प्राप्त प्रतिफल में उस का उदाहरण दें ।

उन्सठवाँ पाठ

# शफ़ाअत या सिफ़ारिश

- भूमिका
- सिफारिश का अर्थ
- सिफारिश के नियम

# भूमिका

ईश्वर ने मोमिनों अर्थात ईश्वर पर ईमान रखने वालों को जो एक विशिष्टता प्रदान की है वह यह है कि अगर किसी मोमिन ने अपने ईमान की मृत्यु तक सुरक्षा की तथा ऐसे पाप नहीं किए जो ईश्वरीय कृपा से दूरी तथा शंका का कारण बनते हों या एक वाक्य में कहें कि अगर वह इस संसार से ईमान के साथ गया हो तो, परलोक में अनन्त दंड का पात्र नहीं बनेगा । छोटे पाप, बड़े पापों से बचने के कारण माफ कर दिए जाएंगे और बड़े गुनाह, पूर्ण प्रायश्चित द्वारा माफ कर दिए जाएंगे और अगर वह इस प्रकार के प्रायश्चित में सफल नहीं हो पाया तो सांसारिक दुख व कठिनाईयॉ उस के पापों के बोझ को हल्का कर देंगी और मध्यकाल या बरज़ख की कठिनाईयॉ तथा क़यामत के आंरभ के दुख उस का शुद्धिकरण कर देंगी और अगर इस के बावजूद वह पापों से पूर्ण रूप से पवित्र नहीं हो पाया तो सिफारिश द्वारा नर्क के दंड से बच जाएगा ।[1]और बहुत सी हदीसों के अनुसार कुरआने मजीद में पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के लिए जिस ष्सराहनीय स्थानष का वचन दिया गया है , उस से आशय यही सिफारिश है और कुरआन की यह आयत कि ...

---

[1] पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम का कथन है: मैंने अपनी सिफारिश , अपने अनुयाईयों में से बड़े पाप करने वालों के लिए रखी है।

**और तुम्हें ; हे पैगम्बरद्ध तुम्हारा पालनहार प्रदान करेगा तो तुम प्रसन्न हो जाओगे।** [1] ...

उस ईश्वरीय क्षमा की ओर संकेत है जो योग्यता रखने वालों को सिफारिश द्वारा प्राप्त होती है।

इस आधार पर , पाप करने वाले मोमिनों की सब से बड़ी आशा शफाअत या सिफारिश है किंतु इस के साथ ही ईश्वरीय प्रकोप की ओर से निश्चिंत नहीं रहना चाहिए बल्कि सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कहीं कोई ऐसा पाप न हो जाए जो मृत्यु के समय ईमान से हाथ धोने और बुरे परिणाम का कारण बन जाए और कहीं ऐसा न हो कि दिल में सांसारिक मोह इतना अधिक हो जाए कि मनुष्य ईश्वर की शत्रुता के साथ इस संसार से जाएं।

## शफाअत का अर्थ

अरबी भाषा में शफाअत के शब्द को आम तौर पर इस अर्थ में प्रयोग किया जाता है कि कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति , किसी सम्मानीय व बड़े आदमी से किसी अपराधी को क्षमा कर देने की अपील करे या किसी सेवक के इनाम को बढ़ा दे ।

आम परिस्थितियों में अगर कोई किसी की सिफारिश स्वीकार करता है तो इस भावना के कारण कि अगर उस ने सिफारिश करने वाले की सिफारिश स्वीकार नहीं की तो सिफारिश करने वाले को दुख होगा जिस से उस सिफारिश करने वाले प्रिय मित्र की मित्रता से वचिंत होना पड़ेगा या फिर , नुकसान भी उठाना पड़ सकता है। अनेकेश्वरवादी जो ईश्वर के लिए मानवीय गुणों में विश्वास रखते थे और समझते थे कि उसे भी पत्नी व साथियों तथा सहयोगियों की आवश्यकता है तथा वह अन्य देवताओं से डरता है , ईश्वर को

---

[1] अज़्ज़ोहा–5

प्रसन्न करने के लिए या उस के प्रकोप से बचने के लिए अन्य देवताओं की पूजा करते थे तथा फरिश्तों व जिन्न व परियों के सामने शीश नवाते थे तथा कहते थेः

**यह लोग ईश्वर के समक्ष हमारी सिफारिश करेंगे।**[1]

इसी प्रकार उन का कहना था :

**हम तो इन की पूजा केवल इस लिए करते हैं ताकि यह हमें ईश्वर से निकट कर दें।**[2]

कुरआन इस प्रकार की बातों के उत्तर में कहता हैः

**उन लोगों के लिए ईश्वर के अतिरिक्त कोई भी अभिभावक है न कोई सिफारिश करने वाला।**[3]

किंतु इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार के सिफारिश करने वालों और उन की सिफारिशों को नकारने का अर्थ यह नहीं है कि पूर्ण रूप सिफारिश को ही नकारा जा रहा है क्योंकि स्वंय कुरआने मजीद में भी ईश्वर की अनुमति से सिफारिश व शफाअत की बात कही गयी है । तथा इस के साथ ही कुरआन ने सिफारिश करने वालों और जिन लोगों के बारे में सिफारिश की जाएगी , उन की विशेषताओं का भी वर्णन किया है । इस प्रकार से ईश्वर की अनुमित के बाद कुछ लोगों की सिफारिश का स्वीकार किया जाना इस लिए नहीं है कि ईश्वर सिफारिश करने वालों से डरता है अथवा उसे उन की आवश्यकता होती है बल्कि यह तो वह मार्ग है जो स्वंय ईश्वर ने उन लोगों के लिए रखा है जो अनन्त ईश्वरीय कृपा की प्राप्ति की न्यूनतम क्षमता रखते हैं और उस ने इस के लिए कुछ नियम बनाए हैं और वास्तव में, सही प्रकार की सिफारिश तथा अनेकेश्वरवादियों के दृष्टिगत सिफारिश के मध्य अंतर उसी

---

[1] युनुस– 18 व अन्य ।

[2] ज़ोमर– 3

[3] अनआम– 70 व 51 तथा अन्य ।

प्रकार का है जैसा अंतर , ईश्वर की अनुमति से विश्व के संचालन तथा स्वाधीन रूप से कुछ लोगों द्वारा संसार के संचालन में विश्वासों के मध्य है और इस पर विस्तार पूर्वक चर्चा किताब के आंरभ में हो चुकी है।

शफाअत के शब्द को कभी कभी अधिक व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता है तो उस स्थिति में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किसी भी प्रकार की भलाई को शफाअत कहा जाता है । इस अर्थ के अंतर्गत माता पिता अपने संतान या फिर संतान अपनी माता पिता के लिए , शिक्षक अपने छात्रों के लिए बल्कि अज़ान देकर नमाज़ पढ़ने हेतु मस्जिद में बुलाने वाला व्यक्ति भी दूसरों के लिए सिफारिश करने वाला हो सकता है । अर्थात जो भी अपने प्रयास से किसी अन्य की भलाई चाहे वह सिफारिश करने वाला होता है।

दूसरी बात यह कि इसी संसार में पापियों की ओर से क्षमा व प्रायश्चित भी एक प्रकार की सिफारिश है बल्कि दूसरों के लिए दुआ करना और उन की मनोकामनाएं पूरी होने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करना भी सिफारिश के अर्थ के दायरे में आता है क्योंकि यह सब कुछ ईश्वर से किसी अन्य के लिए भलाई चाहना है ।

## शफाअत के नियम

जैसा कि संकेत किया गया शफाअत करने या शफाअत पाने के लिए मूल शर्त ईश्वर की अनुमति है जैसा कि सूरए बक़रह की आयत 255 में कहा गया है:

**और कौन है जो उस की अनुमति के बिना उस के पास सिफारिश करता है।**

इसी प्रकार सुरए युनुस की आयत 3 में कहा जाता है:

**कोई भी सिफारिश करने वाला नहीं है सिवाए उस की अनुमति के बाद।**

इसी प्रकार सूरए ताहा की आयत 109 में आया है:

**और उस दिन किसी की सिफारिश को लाभ नहीं होगा सिवाए उस की जिसे कृपालु ईश्वर ने अनुमति दी होगी और जिस की बातों को पसन्द करता होगा ।**

सूरए सबा ही आयत है:

**उस के निकट सिफारिश का लाभ नहीं होगा सिवाए उस की जिसे उस ने अनुमति दी है।**

इन आयतों से सामूहिक रूप से ईश्वर की अनुमति की शर्त सिद्ध होती है किंतु जिन लोगों को अनुमति प्राप्त होगी उन की विशेषताओं का पता नहीं चलता ।

किंतु दूसरी ऐसी बहुत सी आयतें हैं जिन की सहायता से सिफारिश पाने और करने वालों की कुछ विशेषताओं का पता लगाया जा सकता है। जैसा कि सूरए ज़ोखरूफ की आयत 86 में आया है:

**और वे ईश्वर को छोड़ कर जिन लोगों को बुलाते हैं वे सिफारिश के स्वामी नहीं है सिवाए उस के जिस ने सत्य की गवाही दी और वे लोग जानकारों में से हैं ।**

शायद सत्य की गवाही देने वाले से यहाँ आशय , कर्मों की गवाही देने वाले वह लोग हों जिन्हें मनुष्य के दिल की बातों का ज्ञान होता है और वे मनुष्य के व्यवहार और उस के महत्व व सत्यता के बारे में गवाही दे सकते हों । जैसा कि इस से यह भी समझा जा सकता है कि सिफारिश करने वालों के पास ऐसा ज्ञान होना चाहिए कि जिस के बल पर वे सिफारिश पाने की योग्यता रखने वाले लोगों को जान सकें और इस प्रकार की विशेषता रखने वालों में निश्चित रूप से जिन लोगों का नाम लिया जा सकता है वह ईश्वर के वह विशेष दास हैं जिन्हें उस ने पापों से पवित्र बताया है।

दूसरी ओर, बहुत सी आयतों से यह भी समझा जा सकता है कि जिन लोगों को सिफारिश प्राप्त होनी होगी, उन से ईश्वर का प्रसन्न होना भी आवश्यक है। जैसा कि सूरए अंबिया की आयत 28 में कहा गया है:

**और वे किसी की सिफारिश नहीं करेंगे सिवाए उस की जिस से ईश्वर प्रसन्न होगा।**

इसी प्रकार सूरए अन्नज्म में आया है :

**और आकाशों में कितने ऐसे फरिश्ते हैं जिन की सिफारिश का कोई लाभ नहीं होगा सिवाए इस के कि ईश्वर ने उन्हें जिस के लिए चाहा अनुमति दी हो और जिस से प्रसन्न हुआ हो।**

स्पष्ट है कि सिफारिश पाने वालों से ईश्वर के प्रसन्न होने का अर्थ यह नहीं है कि उन लोगों के सारे काम अच्छे होंगे क्योंकि अगर ऐसा होता तो फिर उन्हें सिफारिश की आवश्यकता ही न होती बल्कि इस का आशय यह है कि ईश्वर धर्म व ईमान की दृष्टि से उन से प्रसन्न हो जैसा कि हदीसों में भी इस विचार की पुष्टि की गयी है।

इस के साथ ही कुछ आयतों में उन लोगों की विशेषताओं का भी वर्णन किया गया है जिन्हें सिफारिश नहीं मिल सकती जैसा कि सूरए शोअरा की आयत 100 में अनेकेश्वरवादियों की इस बात का वर्णन है कि **हमारी सिफारिश करने वाला कोई नहीं है।** इसी प्रकार सूरए मुद्दस्सिर की आयत 40 से लेकर 48 तक में वर्णन किया गया है कि पापियों से नर्क में जाने का कारण पूछा जाएगा और वे उत्तर में नमाज़ छोड़ने, निर्धनों की सहायता न करने तथा क़यामत जैसे विश्वासों के इन्कार का नाम लेंगे और फिर कुरआन में कहा गया है कि **उन्हें सिफारिश करने वालों की सिफारिशों से भी कोई लाभ नहीं होगा।** इस आयत से यह समझा जा सकता है कि अनेकेश्वरवादी और प्रलय व क़यामत का इन्कार करने वाले कि जो ईश्वर की उपासना नहीं करते और आवश्यकता रखने वालों की सहायता नहीं करते तथा सही सिद्धान्तों का पालन नही करते, वे किसी भी स्थिति में सिफारिश के

पात्र नहीं बनेंगे । और इस बात के दृष्टिगत कि संसार में पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम द्वारा अपने अनुयाईयों के पापों को माफ करने की ईश्वर से प्रार्थना भी एक प्रकार की शफाअत व सिफारिश है तो फिर पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम की शिफाअत व सिफारिश में विश्वास न रखने वाले के लिए उन की सिफारिश का कोई प्रभाव नहीं होगा, [1] यह समझा जा सकता है कि शफाअत का इन्कार करने वाला भी सिफारिश का पात्र नहीं बन सकता और इस बात की पुष्टि हदीसों से भी होती है।

निष्कर्ष यह निकला कि मुख्स सिफारिश करने वाले के लिए ईश्वर की अनुमति के साथ ही साथ स्वंय पवित्र होना भी आवश्यक है तथा इसी प्रकार उस में इस बात की योग्यता हो कि वह लोगों की वास्तविकता तथा अवज्ञा व कर्तव्य पालन की भावना का ज्ञान प्राप्त कर सके और इस प्रकार के लोग ही ईश्वर की अनुमति से लोगों की सिफारिश कर सकते हैं जो निश्चित रूप से ईश्वर के योग्य व चयनित दास ही होंगें दूसरी ओर यह सिफारिश उन्हीं लोगों को प्राप्त होगी जो सिफारिश की योग्यता रखते होंगे जिस के लिए ईश्वर की अनुमति के साथ , इस्लाम के आवश्यक व मूल सिद्धान्तों में मृत्यु तक विश्वास व आस्था आवश्यक है।

---

[1] पैगम्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम ने फरमाया है: जिसे मेरी सिफारिश पर विश्वास नहीं है , उसे मेरी सिफारिश प्राप्त नहीं होगी।

## प्रश्न :

1. शफाअत का अर्थ और उस का प्रयोग बताएं ।
2. सही व गलत शफाअत व सिफारिश में क्या अंतर है?
3. सिफारिश करने वाले की क्या शर्त है?
4. जिस की सिफारिश की जाएगी उसे कैसा होना चाहिए?

साठवाँ पाठ

# कुछ शंकाओं का निवारण

- शफाअत को नकारने वाली आयतों की समीक्षा।
- ईश्वर सिफारिशों से प्रभावित नहीं होता।
- सिफारिश करने वाले ईश्वर से अधिक कृपालु नहीं हैं।
- सिफारिश ईश्वरीय न्याय के विपरीत नहीं है।
- सिफारिश ईश्वरीय पंरपरा में परिवर्तन का कारण नहीं है।
- सिफारिश का वचन लोगों को दुस्साहसी नहीं बनाएगा।
- शफाअत की योग्यता पैदा करने का प्रयास, कल्याण तक पहुँचने का प्रयास है।

शफाअत या सिफारिश के बारे में बहुत सी शंकाएं और संदेह प्रकट किए जाते हैं किंतु इस पाठ में हम कुछ महत्वपूर्ण शंकाओं और उन के उत्तरों का वर्णन करेंगे।

पहली शंका यह है कि कुरआन मजीद की बहुत सी आयतों से पता चलता है कि क़यामत के दिन किसी के बारे में किसी की भी सिफारिश को स्वीकार नहीं किया जाएगा । जैसा कि सूरए बक़रह की आयत 48 में कहा जाता है :

**उस दिन से डरो जब कोई किसी के काम न आएगा और न ही किसी की सिफारिश स्वीकार की जाएगी और न किसी से विकल्प स्वीकार किया जाएगा और न ही उन की सहायता की जाएगी।**

इस शंका का उत्तर यह है कि इस प्रकार की आयतें , स्वाधीन रूप से और बिना किसी नियम के की जाने वाली शफाअत को नकारती हैं । इस के अलावा यह आयतें सामूहिक आदेश बताती हैं जिन से अपवाद विषयों को अन्य आयतों से रेखांकित किया गया है। ईश्वर की अनुमति के साथ शफाअत के लिए कुछ विशेष नियम हैं जैसा कि पिछले पाठ में बताया गया ।

एक अन्य शंका यह की जाती है कि शफाअत के सही होने के लिए यह आवश्यक है कि ईश्वर , सिफारिश करने वाले से प्रभावित हो अर्थात कुछ लोगों की सिफारिश , पापों को क्षमा करने का कारण बने कि जो ईश्वर का काम है।

इस का उत्तर यह है कि सिफारिश स्वीकार करने का अर्थ प्रभावित होना नहीं है जैसा कि प्रायश्चित अथवा दुआ को स्वीकार करना प्रभावित होना

नहीं है बल्कि इस प्रकार के सभी अवसरों पर मनुष्य के कार्य , ईश्वर द्वारा स्वीकृति का कारण बनते हैं जिसे दूसरे शब्दों में यूँ कहा जा सकता है कि कर्ता का काम शर्त नहीं है बल्कि जिस की सिफारिश स्वीकार की जा रही है उस में योग्यता होना शर्त है।

एक अन्य शंका यह है कि शफाअत के लिए यह आवश्यक है कि सिफारिश करने वाला , ईश्वर से अधिक कृपालु हो ! क्योंकि यह माना जा रहा है कि अगर उन की सिफारिश न होती तो कुछ लोग दंडित होते ।

इस का उत्तर यह है कि सिफारिश करने वालों की कृपा व दया वास्तव में ईश्वर की असीम कृपा का ही एक प्रदर्शन है। दूसरे शब्दों में शफाअत वह साधन व मार्ग है जो स्वयं ईश्वर ने अपने दासों को दिखाया है और यह वह अधिकार है जिसे स्वंय ईश्वर ने अपने विशेष दासों को प्रदान किया है जैसा कि दुआ व प्रायश्चित वह अन्य साधन हैं जो ईश्वर ने अपने पापी दासों को क्षमा करने के लिए बनाए हैं ।

इसी प्रकार यह शंका भी की जाती है कि अगर कुछ लोगों को दंडित करना ईश्वरीय न्याय के अनुसार हो तो फिर उन्हीं के लिए सिफारिश को स्वीकार करना न्याय के विपरीत होगा और अगर सिफारिश स्वीकार करके प्रकोप से कुछ लोगों को बचा देना , न्यायपूर्ण होगा तो फिर सिफारिश से पूर्व उन्हें दंडित करने का आदेश अन्याय पूर्ण होगा।

इस शंका का उत्तर यह है कि ईश्वर के सभी आदेश – चाहे वह सिफारिश से पूर्व दंड के लिए हों चाहे सिफारिश के बाद दंड से बचाव के लिए हों – न्याय व तत्वदर्शिता के आधार पर होते हैं और दोनों दशाओं में न्याय की सुरक्षा की बात में कोई विरोधाभास नहीं है क्योंकि दोनों में बहुत अंतर है इस स्पष्टीकरण के साथ कि दंड का आदेश , पाप के कारण है , उन कारकों से हट कर जो सिफारिश व उसे स्वीकार करने का आधार बनते हैं और सिफारिश को स्वीकार करना , उस के कारकों के दृष्टिगत होता है और दंड के आदेश में परिवर्तन वास्तव में एक अन्य कारक के अंतर्गत होता है जिस का उदाहरण

और बहुत से स्थानों पर मिलता है उदाहरण स्वरूप किसी विशेष काल में विशेष कर्तव्यों को, उस काल के बीत जाने के बाद अगर समाप्त कर दिया जाए और उस के स्थान पर दूसरे कर्तव्य अनिवार्य कर दिए जांए तो अपने अपने काल में दोनों प्रकार के कर्तव्यों का पालन करने वाले, पुरस्कृत होंगे और दोनों को एक ही प्रकार के प्रतिफल देने में विरोधाभास नहीं होगा। इसी प्रकार से संकट के समाधान के लिए दुआ से पूर्व ईश्वर के इरादे में किसी के लिए संकट होने तथा दुआ के बाद उस संकट के टल जाने के मध्य किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं है। इसी प्रकार शफाअत के बाद , पापों को क्षमा करने के आदेश और सिफारिश से पूर्व दंड के आदेश के मध्य किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं है ।

एक अन्य शंका यह की जाती है कि ईश्वर ने शैतान के अनुसरण को परलोक में दंड का कारण बताया है जैसा कि सूरए हिज्र की आयत 42व 43 में कहा गया है :

**निश्चित रूप से मेरे दासों पर ;हे शैतान!द्ध तेरा कोई अधिकार नहीं है सिवाए उन पथभ्रष्टों के जिन्हों ने तेरा अनुसरण किया और निश्चित रूप से स्वर्ग उन सब का ठिकाना है।**

और वास्तव में, परलोक में पापियों को दंडित करना , एक ईश्वरीय पंरपरा है और हमें ज्ञात है कि ईश्वरीय परंपराओं में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता जैसा कि सूरए फातिर की आयत 43 में कहा गया है कि **तो तुम कदापि ईश्वर की परपंराओं में परिवर्तन नहीं पाओगे** । तो फिर किस प्रकार से संभव है कि सिफारिश द्वारा ईश्वर की इस पंरपरा में परिवर्तन आ जाए?

इस का उत्तर यह है कि योग्यता रखने वाले पापियों के लिए सिफारिश स्वीकार करना , ईश्वर की ऐसी पंरपरा है जिस में परिवर्तन नहीं हो सकता । इस स्पष्टीकरण के साथ कि ईश्वरीय परंपरा , वास्तविक मापदंडों के अनुसार है और कोई भी परंपरा, उस की समस्त आवश्यकताओं व

अनिवार्यताओं के होते हुए बदल नहीं सकती किंतु इन परंपराओं के बारे में जिस प्रकार से बात की गयी है , उस के अंतर्गत वहॉ उन की सभी शर्तों के उल्लेख का अवसर नहीं था यही कारण है कि संबंधित आयत कई पंरपराओं से जुड़ी हुई लगती हैं किंतु वास्तव में आयत में एक विशेष पंरपरा की ओर संकेत किया गया होता है । इस आधार पर हर पंरपरा , उस के विषय की वास्तविक शर्तों को ध्यान में रखते हुए सिद्ध होती है ; न केवल उन शर्तो को ध्यान में रखते हुए जिन का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया होद्ध और उस में परिवर्तन संभव नहीं होता और इस प्रकार की परंपराओं में शफाअत की पंरपरा भी है कि जो विशष प्रकार के लोगों के लिए अपने विशेष नियमों के साथ सिद्ध होती है और उस में किसी प्रकार का परिवर्तन भी नहीं होता ।

एक अन्य शंका यह की जाती है कि शफाअत व सिफारिश का वचन लोगों को पाप करने में दुस्साहसी बनाता है ।

इस शंका का उत्तर, कि जो प्रायश्चित व पापों की क्षतिपूर्ति के बारे में की जा सकती है , यह है कि सिफारिश व पापों की माफी के लिए कुछ ऐसी शर्ते हैं जिन्हें पूरा करने का पापी को पूर्ण विश्वास नहीं हो सकता जैसा कि शफाअत पाने की एक शर्त यह है कि मनुष्य मृत्यु के अंतिम क्षणों तक ईश्वर पर अपने ईमान को सुरक्षित रखे और हमें ज्ञात है कि कोई भी इस शर्त को पूरा करने का विश्वास नहीं रख सकता , दूसरी ओर जो पाप करता है अगर उस के पापों की माफी की कोई आशा न रहे तो वह निराशा में ग्रस्त हो हो जाएगा और यह निराशा पापों को छोड़ देने की भावना को क्षीण कर देगी जिस के बाद वह पाप के मार्ग पर आगे बढ़ता जाएगा । इसी लिए ईश्वरीय दूतों की शैली रही है कि उन्हों ने सदा ही लोगों को भय व आशा के मध्य रखा है । न उन्हों ने लोगों को ईश्वर की कृपा की ओर से बहुत अधिक आशावान किया कि उन्हें ईश्वरीय प्रकोप से भी डर न लगे और न ही उन्हें ईश्वरीय प्रकोप से इतना अधिक डराया ही कि जिस से वे ईश्वर की कृपा से निराश हो जाएं और हमें यह तो पता ही है कि निराशा बड़े पापों में से है।

एक अन्य शंका यह है कि दंड से बचाव में सिफारिश का प्रभाव , सिफारिश करने वालों अर्थात दूसरों के कामों का किसी व्यक्ति के कल्याण अथवा दंड में भूमिका निभाना समझा जा सकता है जब कि कुरआन में कहा गया है कि मनुष्य को केवल वही मिलेगा जिस के लिए उस ने प्रयास किए होंगे।

इस शंका का उत्तर यह है कि लक्ष्य तक पहुँचने के लिए किसी के प्रयास , कभी अपरोक्ष रूप से होते हैं और अंत तक ऐसा ही रहता है और कभी परोक्ष रूप से और उस के साधन किसी अन्य द्वारा जुटाने से होते हैं । जिस व्यक्ति की सिफारिश की जाती है वह भी कल्याण तक पहुँचने के लिए अपना प्रयास करता है और सिफारिश की योग्यता प्राप्त करना भी कल्याण तक पहुँचने के मार्ग में प्रयास ही है भले ही उस के प्रयास अधूरे व विफल हों और इसी लिए वह क़यामत से पूर्व मध्यकाल व बरज़ख में दंड व प्रकोप का पात्र बनाया जाता है किंतु प्रत्येक दशा में चूँकि उस के दिल में कल्याण का पौधा अर्थात ईमान होता है और कभी कभी उस ने उसे अच्छे कर्मो से सींचा भी होता है कुछ इस प्रकार से कि मृत्यु तक वह सूखता नहीं । तो इस प्रकार से उस का अंतिम कल्याण वास्तव में स्वंय उस के प्रयासों का परिणाम होता है भले ही सिफारिश करने वाले भी किसी सीमा तक इस पौधे में फल लगने की प्रक्रिया में भूमिका निभाते हैं ठीक उसी प्रकार से जैसे इस संसार में सही मार्ग पर चलने में भी मनुष्य की बहुत से अन्य लोग सहायता करते हैं किंतु उन की सहायता का यह अर्थ नहीं होता कि मार्गदर्शन पाने वाले और सही मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति की कोई भी भूमिका अथवा प्रयास नहीं होता ।

## प्रश्न

1. शफाअत को नकारने वाली आयतों के होते हुए भी किस प्रकार से शफाअत व सिफारिश में विश्वास रखा जा सकता है ?

2. क्या शफाअत का अर्थ , ईश्वर के कार्यों में अन्य लोगों का प्रभाव नहीं है ?

3. क्या शफाअत का अर्थ यह नहीं है कि शफाअत व सिफारिश करने वाले ईश्वर से अधिक कृपालु हैं ?

4. शफाअत और ईश्वर के न्याय के मध्य संबधं को स्पष्ट करें।

5. क्या शफाअत , ईश्वरीय पंरपरा में परिवर्तन का कारण है ?

6. क्या शफाअत का वचन , पापियों को दुस्साहसी नहीं बनाता ?

7. स्पष्ट करें कि शफाअत , अपने कल्याण में मनुष्य की भूमिका को नकारना नहीं है।

समाप्त